ॐ श्रीपरमात्मने नमः

श्रीमहाभारतान्तर्गत

श्रीविष्णुसहस्रनाम

श्रीआद्यशंकराचार्यकृत

भाष्य

हिंदी-अनुवादसहित



अनुवादक

'भोला'

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

श्रीमन्महाभारतान्तर्गत

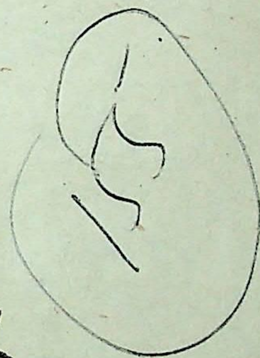
विष्णुसहस्रनाम

मदाद्यशंकराचार्यकृत भाष्य

और

हिन्दी-अनुवादसहित





अनुवादक—

'भोला'

१ –

प्रकाशक—गोविन्दभवन-कार्यालय, गीताप्रेस, गोरखपुर

सं०	१९९० से २०४१	तक	५९,२५०
सं०	२०४५	ग्यारहवाँ संस्करण	१०,०००
		कुल	६९,२५०

मूल्य पाँच रुपये पचास पैसे

मुद्रक—गीताप्रेस, गोरखपुर

*

श्रीहरिः

प्रार्थना

महाभारतमें भगवान्के अनन्य भक्त पितामह भीष्मद्वारा भगवान्के जिन परम पवित्र सहस्र नामोंका उपदेश किया गया, उसीको श्रीविष्णु-सहस्रनाम कहते हैं। भगवान्के नामोंकी महिमा अनन्त है। हीरा, लाल, पन्ना सभी बहुमूल्य रत्न हैं, पर यदि वे किसी निपुण जड़ियेके द्वारा, सम्राट्के किरीटमें यथास्थान जड़ दिये जायँ तो उनकी शोभा बहुत बढ़ जाती है और अलग-अलग एक-एक दानेकी अपेक्षा उस जड़े हुए किरीटका मूल्य भी बहुत बढ़ जाता है। यद्यपि भगवान्के नामके साथ किसी उदाहरणकी समता नहीं हो सकती, तथापि समझनेके लिये इस उदाहरणके अनुसार भगवान्के एक सहस्र नामोंको शास्त्रकी रीतिसे यथास्थान आगे-पीछे जो जहाँ आना चाहिये था—वहीं जड़कर भीष्म-सदृश निपुण जड़ियेने यह एक परम सुन्दर, परम आनन्दप्रद अमूल्य वस्तु तैयार कर दी है। एक बात समझ रखनी चाहिये कि जितने भी ऐसे प्राचीन नामसंग्रह, कवच या स्तवन हैं वे कविकी तुकबन्दी नहीं हैं। सुगमता और सुन्दरताके लिये आगे-पीछे जहाँ-तहाँ शब्द नहीं जोड़ दिये गये हैं। परन्तु इस जगत् और अन्तर्जगत्का रहस्य जाननेवाले, भक्ति, ज्ञान, योग और तन्त्रके साधनमें सिद्ध, अनुभवी पुरुषोंद्वारा बड़ी ही निपुणता और कुशलताके साथ ऐसे जोड़े गये हैं कि जिससे वे विशेष शक्तिशाली मन्त्र बन गये हैं और जिनके यथा-रीति पठनसे इहलौकिक और पारलौकिक कामना-सिद्धिके साथ ही यथाधिकार भगवान्की अनन्यभक्ति या सायुज्य मुक्तितककी प्राप्ति सुगमतासे हो सकती है। इसीलिये इनके पाठका इतना माहात्म्य है और इसीलिये सर्वशास्त्रनिष्णात परम योगी और परम ज्ञानी सिद्ध महापुरुष प्रातःस्मरणीय आचार्यवर श्रीआद्यशंकराचार्य महाराजने लोककल्याणार्थ इस श्रीविष्णुसहस्रनामका भाष्य किया है। आचार्यका यह भाष्य ज्ञानियों और भक्तों दोनोंके लिये ही परम आदरकी वस्तु है।

पूज्यपाद स्वामीजी श्रीभोलेबाबाजीने भाष्यका हिन्दी भाषान्तर कर पाठकोंपर बड़ा उपकार किया है। मेरी प्रार्थना है कि पाठक इसका अध्ययन और मनन करके विशेष लाभ उठावें।

गङ्गा दशहरा १९९० } हनुमानप्रसाद पोद्दार
कल्याण-सम्पादक

प्रकाशकका निवेदन

बहुत दिन हुए पूज्यपाद स्वामीजी महाराजने कृपापूर्वक भाष्यका हिन्दी-अनुवाद करके भेज दिया था। कई कारणोंसे प्रकाशनमें विलम्ब हो गया। प्रेमी सज्जनोंने बार-बार पत्र लिखकर ताकीद की। हर्षकी बात है कि अब यह पाठकोंके सम्मुख रक्खा जा रहा है। इसके संशोधन आदिमें पं० श्रीचण्डीप्रसादजी शुक्ल, प्रि० गोयन्दका संस्कृत-विद्यालय काशी एवं श्रीमुनिलालजी आदि सज्जनोंने विशेष सहायता दी है, इसके लिये गीताप्रेस उनका कृतज्ञ है।

प्रकाशक

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

विष्णुसहस्रनाम

पदच्छेद, शाङ्करभाष्य तथा हिन्दी-अनुवादसहित

सच्चिदानन्दरूपाय
कृष्णायाक्लिष्टकारिणे ।
नमो वेदान्तवेद्याय
गुरवे बुद्धिसाक्षिणे ॥ १ ॥

सच्चिदानन्दस्वरूप, अनायास ही सब कर्म करनेवाले, वेदान्तवेद्य, बुद्धि-साक्षी गुरुवर श्रीकृष्णचन्द्रको नमस्कार है ॥ १ ॥

कृष्णद्वैपायनं व्यासं
सर्वलोकहिते रतम् ।
वेदाब्जभास्करं वन्दे
शमादिनिलयं मुनिम् ॥ २ ॥

वेदरूपी कमलके लिये सूर्यरूप, शमादिके आश्रय, सम्पूर्ण लोकके हितमें तत्पर मुनिवर कृष्णद्वैपायन व्यासकी मैं वन्दना करता हूँ ॥ २ ॥

सहस्रमूर्तेः पुरुषोत्तमस्य
सहस्रनेत्राननपादबाहोः ।
सहस्रनाम्नां स्तवनं प्रशस्तं
निरुच्यते जन्मजरादिशान्त्यै ॥३॥

सहस्र नेत्र, मुख, पाद और भुजाओं-वाले सहस्रमूर्ति श्रीपुरुषोत्तम भगवान्‌के सहस्र नामोंके इस परम उत्तम स्तवनकी, जन्म-जरा आदिकी शान्तिके लिये व्याख्या की जाती है ॥ ३ ॥

वैशम्पायनो जनमेजयमुवाच— । श्रीवैशम्पायनजी जनमेजयसे बोले—

श्रुत्वा धर्मानशेषेण पावनानि च सर्वशः ।
युधिष्ठिरः शान्तनवं पुनरेवाभ्यभाषत ॥ १ ॥

श्रुत्वा, धर्मान्, अशेषेण, पावनानि, च, सर्वशः ।
युधिष्ठिरः, शान्तनवम्, पुनः, एव, अभ्यभाषत ॥

धर्मान् **अभ्युदयनिःश्रेयसोत्पत्तिहेतुभूतान् चोदनालक्षणान्** अशेषेण **कात्स्न्र्येन** पावनानि **पापक्षयकराणि धर्मरहस्यानि** च सर्वशः **सर्वप्रकारैः** श्रुत्वा युधिष्ठिरः **धर्मपुत्रः** शान्तनवम् **शान्तनुसुतं भीष्मं सकलपुरुषार्थसाधनं सुखसम्पाद्यम् अल्पप्रयासम् अनल्पफलम् अनुक्तमिति कृत्वा** पुनः **भूय** एव अभ्यभाषत **प्रश्नं कृतवान्** ॥ १ ॥

धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरने अभ्युदय और निःश्रेयसकी प्राप्तिके हेतुभूत सम्पूर्णविधिरूप धर्म तथा पवित्र अर्थात् पापोंका क्षय करनेवाले धर्मरहस्योंको सर्वशः—सब प्रकार सुनकर और यह समझकर कि अभीतक ऐसा कोई धर्म नहीं कहा गया जो सकल पुरुषार्थका साधक और सुखसम्पाद्य अर्थात् अल्प प्रयाससे ही सिद्ध होनेवाला होकर भी महान् फलवाला हो; शान्तनुके पुत्र भीष्मसे फिर पूछा ॥ १ ॥

युधिष्ठिर उवाच— । युधिष्ठिर बोले—

किमेकं दैवतं लोके किं वाप्येकं परायणम् ।
स्तुवन्तः कं कमर्चन्तः प्राप्नुयुर्मानवाः शुभम् ॥ २ ॥

किम्, एकम्, दैवतम्, लोके, किम्, वा, अपि, एकम्, परायणम् ।
स्तुवन्तः, कम्, कम्, अर्चन्तः, प्राप्नुयुः, मानवाः, शुभम् ॥

किमेकम् दैवतम् देव इत्यर्थः, स्वार्थे तद्धितप्रत्ययविधानात्, लोके लोकनहेतुभूते समस्तविद्यास्थाने उक्तम् 'यदाज्ञया प्रवर्तन्ते सर्वे' इति प्रथमः प्रश्नः।

समस्त विद्याओंके स्थान प्रकाशके हेतुभूत लोकमें एक ही देव कौन है ? जिसके विषयमें कहा है कि 'जिसकी आज्ञासे सब प्राणी प्रवृत्त होते हैं,' यह प्रथम प्रश्न है। यहाँ 'देवता' शब्दसे स्वार्थमें [किसी विशेष अर्थको बतलानेके लिये नहीं] तद्धित प्रत्यय हुआ है, अतः 'दैवतम्' शब्दका अर्थ देव ही है।

किम् वा अपि एकम् परायणम् अस्मिँल्लोके एकं परायणं च किम् ? परम् अयनं प्राप्तव्यं स्थानं यस्मिन्निरीक्षिते—

'भिद्यते हृदयग्रन्थि-
श्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि
तस्मिन् दृष्टे परावरे ॥'
(मु० उ० २। २। ८)

इति श्रुतेः हृदयग्रन्थिर्भिद्यते। यस्य विज्ञानमात्रेणानन्दलक्षणो मोक्षः प्राप्यते; यद्विद्वान्न बिभेति कुतश्चन; यत्प्रविष्टस्य न विद्यते पुनर्भवः; यस्य च वेदनात्तदेव भवति, 'ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति' (मु० उ० ३। २। ९) इति श्रुतेः। यद्विद्वा-

तथा एक ही परायण कौन है ? अर्थात् इस लोकमें एक ही परायण—एक ही पर अयन यानी प्राप्तव्य स्थान कौन है ? जिसका साक्षात्कार कर लेनेपर 'उस परावर (कार्य-कारणरूप परमात्मा) को ज्ञानदृष्टिसे देख लेनेपर जीवकी [अविद्यारूप] हृदयग्रन्थि टूट जाती है, सब संशय नष्ट हो जाते हैं तथा सम्पूर्ण कर्म क्षीण हो जाते हैं।' इस श्रुतिके अनुसार हृदयग्रन्थि टूट जाती है।

जिसके ज्ञानमात्रसे ही आनन्दस्वरूप मोक्ष प्राप्त होता है, जिसका जाननेवाला किसीसे भय नहीं करता, जिसमें प्रवेश करनेवालेका फिर जन्म नहीं होता, जिसके जान लेनेपर 'जो ब्रह्मको जानता है, वह ब्रह्म ही हो जाता है', इस श्रुतिके अनुसार मनुष्य वही हो जाता है,

यापरः पन्था नृणां नास्ति, 'नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय' (श्वे० उ० ६। १५) इति श्रुतेः।

तदुक्तमेकं परायणं लोके यत्तत् किमिति द्वितीयः प्रश्नः।

कम् कतमं देवं स्तुवन्तः गुण-सङ्कीर्तनं कुर्वन्तः कम् कतमं देवम् अर्चन्तः बाह्यमाभ्यन्तरं चार्चनं बहुविधं कुर्वन्तः मानवाः मनुसुताः शुभम् कल्याणं स्वर्गादिफलं प्राप्नुयुः लभेरन्निति पुनः प्रश्नद्वयम् ॥ २ ॥

तथा जिसे छोड़कर मनुष्योंके लिये कोई दूसरा मार्ग नहीं है, जैसा कि श्रुति कहती है--'मोक्षके लिये और कोई मार्ग नहीं है।'

इस प्रकार जो लोकमें एक ही परायण बतलाया गया है, वह कौन है? यह दूसरा प्रश्न है।

और कौनसे देवकी स्तुति—गुण-कीर्तन करनेसे तथा किस देवका नाना प्रकारसे अर्चन अर्थात् बाह्य और आन्तरिक पूजा करनेसे मनुष्य शुभ यानी स्वर्गादि फलरूप कल्याणकी प्राप्ति कर सकते हैं? ये दो प्रश्न और हैं ॥ २ ॥

को धर्मः सर्वधर्माणां भवतः परमो मतः।
किं जपन्मुच्यते जन्तुर्जन्मसंसारबन्धनात् ॥ ३ ॥

कः, धर्मः, सर्वधर्माणाम्, भवतः, परमः, मतः।
किम्, जपन्, मुच्यते, जन्तुः, जन्मसंसारबन्धनात् ॥

कः धर्मः पूर्वोक्तलक्षणः सर्व-धर्माणाम् सर्वेषां धर्माणां मध्ये भवतः परमः प्रकृष्टो मतः अभिप्रेत इति पञ्चमः प्रश्नः।

किं जपन् किं जप्यं जपन् उच्चोपांशुमानसलक्षणं जपं कुर्वन् जन्तुः जननधर्मा। अनेन जन्तु-

आप सर्वधर्मों—समस्त धर्मोंमें पूर्वोक्त लक्षणोंसे युक्त किस धर्मको परम—श्रेष्ठ मानते हैं, यह पाँचवाँ प्रश्न है।

तथा किस जपनीयका उच्च, उपांशु और मानस जप करनेसे जनन-धर्मा जीव जन्म-संसार-बन्धनसे

शब्देन जपार्चनस्तवनादिषु यथायोग्यं सर्वप्राणिनामधिकारं सूचयति जन्मसंसारबन्धनात् जन्म अज्ञानविजृम्भितानामविद्याकार्याणामुपलक्षणम्, संसारोऽविद्या ताभ्यां जन्मसंसाराभ्यां यद्बन्धनं तस्मात् मुच्यते मुक्तो भवतीति षष्ठः प्रश्नः ।

मुक्त हो जाता है ? इस 'जन्तु' शब्दसे जप, अर्चन और स्तवन आदिमें समस्त प्राणियोंका यथायोग्य अधिकार सूचित करते हैं । 'जन्म' शब्द अज्ञानसे प्रतीत होनेवाले अविद्याके कार्योंको लक्षित करता है, तथा 'संसार' अविद्याहीका नाम है । उन जन्म और संसारका जो बन्धन है, उससे कैसे छूटता है ? यह छठा प्रश्न है ।

मुच्यते जन्मसंसारबन्धनादितीदमुपलक्षणम् इतरेषां फलानामपि एतद्ग्रहणं मोक्षस्य प्राधान्यख्यापनार्थम् ॥ ३ ॥

'जन्म-संसाररूप बन्धनसे कैसे छूटता है ?' यह कहना मोक्षकी प्रधानता बतलानेके लिये है; अतः इस वाक्यसे अन्य फलोंका भी ग्रहण होता है ॥ ३ ॥

किमेकमिति षट्प्रश्नाः कथिताः । तेषु पाश्चात्त्योऽनन्तरो जप्यविषयः षष्ठः प्रश्नोऽनेन श्लोकेन परिहियते ।

यहाँ 'वह एक देव कौन है' इत्यादि छः प्रश्न कहे गये हैं, उनमेंसे पाश्चात्त्य—अन्तिम यानी जपनीयविषयक छठे प्रश्नका इस श्लोकसे समाधान किया जाता है ।

श्रीभीष्म उत्तरमुवाच—

भीष्मजीने उत्तर दिया—

जगत्प्रभुं देवदेवमनन्तं पुरुषोत्तमम् ।
स्तुवन्नामसहस्रेण पुरुषः सततोत्थितः ॥ ४ ॥

जगत्प्रभुम्, देवदेवम्, अनन्तम्, पुरुषोत्तमम् ।
स्तुवन्, नामसहस्रेण, पुरुषः, सततोत्थितः ॥

सर्वेषां बहिरन्तः शत्रूणां भयहेतुर्भीष्मः मोक्षधर्मादीनां प्रवक्ता सर्वज्ञः ।

जगत् स्थावरजङ्गमात्मकं तस्य प्रभुम् स्वामिनम्, देवदेवम् देवानां ब्रह्मादीनां देवम्, अनन्तम् देशतः कालतो वस्तुतश्चापरिच्छिन्नम्, पुरुषोत्तमम् क्षराक्षराभ्यां कार्यकारणाभ्यामुत्कृष्टम्, नामसहस्रेण नाम्नां सहस्रेण स्तुवन् गुणान् सङ्कीर्तयन् सततोत्थितः निरन्तरमुद्युक्तः । पुरुषः पूर्णत्वात् पुरि शयनाद्वा पुरुषः—'सर्वदुःखातिगो भवेत्' इति सर्वत्र सम्बध्यते ॥ ४ ॥

मोक्षधर्म आदिका कथन करनेवाले सर्वज्ञ [देवव्रत] ही बाह्य और आन्तरिक समस्त शत्रुओंके भयके कारण होनेसे 'भीष्म' कहे जाते हैं ।

स्थावर-जंगमरूप जो संसार है, उसके प्रभु—स्वामी, देवदेव-ब्रह्मादि देवोंके देव, अनन्त अर्थात् देश, काल और वस्तुसे अपरिच्छिन्न, कार्य-कारणरूप क्षर और अक्षरसे श्रेष्ठ पुरुषोत्तमका सहस्रनामके द्वारा निरन्तर तत्पर रहकर स्तवन—गुणसंकीर्तन करनेसे पुरुष सब दुःखोंसे पार हो जाता है । पूर्ण होनेसे अथवा शरीररूप पुरमें शयन करनेसे जीवका नाम 'पुरुष' है । यहाँसे [छठे श्लोकके] सर्वदुःखातिगो भवेत्' (सब दुःखोंसे पार हो जाता है) इस वाक्यका प्रत्येक श्लोकके साथ सम्बन्ध है ॥ ४ ॥

उत्तरेण श्लोकेन चतुर्थः प्रश्नः समाधीयते—

अगले श्लोकसे चौथे प्रश्नका समाधान किया जाता है—

तमेव चार्चयन्नित्यं भक्त्या पुरुषमव्ययम् ।
ध्यायंस्तुवन्नमस्यंश्च यजमानस्तमेव च ॥ ५ ॥

तम्, एव, च, अर्चयन्, नित्यम्, भक्त्या, पुरुषम्, अव्ययम् ।
ध्यायन्, स्तुवन्, नमस्यन्, च, यजमानः, तम्, एव, च ॥

तमेव चार्चयन् बाह्यार्चनं कुर्वन् नित्यं सर्वेषु कालेषु भक्तिर्भजनं

तथा उसी अव्यय विनाशक्रिया-रहित पुरुषका नित्य अर्थात् सब

तात्पर्यं तया भक्त्या पुरुषमव्ययम् विनाशक्रियारहितम्, तमेव च ध्यायन् आभ्यन्तरार्चनं कुर्वन्, स्तुवन् पूर्वोक्तेन नमस्यन् नमस्कारं कुर्वन्, पूजाशेषभूतमुभयंस्तुतिनमस्कारलक्षणं यजमानः पूजकः फलभोक्ता।

समय भजन अर्थात् तत्परताका नाम भक्ति है, उस भक्तिसे युक्त होकर अर्चन अर्थात् बाह्य पूजन करनेसे और उसीका ध्यान यानी आन्तरिक पूजन तथा पूर्वोक्त प्रकारसे [सहस्रनामद्वारा] स्तवन एवं नमस्कार करनेसे अर्थात् पूजाके शेषभूत स्तुति और नमस्कार करनेसे यजमान--पूजा करनेवाला फल-भोक्ता [सब दुःखोंसे छूट जाता है]।

अथवा, अर्चयन्नित्यनेनोभयविधमर्चनमुच्यते । ध्यायंस्तुवन्नमस्यंश्चेत्यनेन मानसं वाचिकं कायिकं चोच्यते ॥ ५ ॥

अथवा यों समझो कि 'अर्चयन्' शब्दसे बाह्य और आन्तरिक दो प्रकारका अर्चन कहा है तथा ध्यान, स्तवन और नमन करते हुए--इससे मानसिक, वाचिक और कायिक पूजन बताया गया है ॥ ५ ॥

तृतीयं प्रश्नं परिहरति उत्तरैस्त्रिभिः पादैः-

अब अगले तीन पादोंसे तीसरे प्रश्नका उत्तर देते हैं--

अनादिनिधनं विष्णुं सर्वलोकमहेश्वरम् ।
लोकाध्यक्षं स्तुवन्नित्यं सर्वदुःखातिगो भवेत् ॥ ६ ॥

अनादिनिधनम्, विष्णुम्, सर्वलोकमहेश्वरम् ।
लोकाध्यक्षम्, स्तुवन्, नित्यम्, सर्वदुःखातिगः, भवेत् ॥

अनादिनिधनम् षड्भावविकारवर्जितम्, विष्णुं व्यापनशीलम्,

अनादिनिधन अर्थात् [होना, जन्म लेना, बढ़ना, बदलना, क्षीण होना और नष्ट होना--इन] छः भावविकारोंसे रहित, विष्णु अर्थात् व्यापक

सर्वं लोक्यते इति लोको दृश्यवर्गो लोकस्तस्य नियन्तॄणां ब्रह्मादीनामपीश्वरत्वात् सर्वलोकमहेश्वरः तम्; लोकं दृश्यवर्गं स्वाभाविकेन बोधेन साक्षात्पश्यतीति लोकाध्यक्षः तं नित्यं निरन्तरं स्तुवन् सर्वदुःखातिगः भवेत् इति त्रयाणां स्तवनार्चनजपानां साधारणं फलवचनम्। सर्वाण्याध्यात्मिकादीनि दुःखान्यतीत्य गच्छतीति सर्वदुःखातिगो भवेत् स्यात् ॥ ६ ॥

तथा सम्पूर्ण लोकोंके महेश्वर—जो दिखलायी दे उस दृश्यवर्गका नाम लोक है, उसके नियन्ता ब्रह्मादिके भी स्वामी होनेसे जो सर्वलोकमहेश्वर और सारे दृश्यवर्गको अपने स्वाभाविक ज्ञानसे साक्षात् देखनेके कारण लोकाध्यक्ष है, उस (देव) की निरन्तर स्तुति करनेसे मनुष्य सब दुःखोंके पार हो जाता है। इस प्रकार यहाँ स्तवन, अर्चन और जप इन तीनोंका एक ही फल बतलाया गया है। सम्पूर्ण अर्थात् आध्यात्मिक आदि तीनों प्रकारके दुःखोंको पार कर जाता है, यानी सर्वदुःखातीत हो जाता है ॥ ६ ॥

पुनरपि तमेव स्तुत्यं विशिनष्टि—

उस स्तुति करनेयोग्य देवके ही विशेषण फिर भी बतलाते हैं—

ब्रह्मण्यं सर्वधर्मज्ञं लोकानां कीर्तिवर्धनम्।
लोकनाथं महद्भूतं सर्वभूतभवोद्भवम् ॥ ७ ॥

ब्रह्मण्यम्, सर्वधर्मज्ञम्, लोकानाम्, कीर्तिवर्धनम्।
लोकनाथम्, महद्भूतम्, सर्वभूतभवोद्भवम् ॥

ब्रह्मण्यम् ब्रह्मणे स्रष्ट्रे ब्राह्मणाय तपसे श्रुतये हितम्, सर्वान् धर्मान् जानातीति सर्वधर्मज्ञः तम्

जो ब्रह्मण्य अर्थात् जगत्की रचना करनेवाले ब्रह्माके तथा ब्राह्मण, तप और श्रुतिके हितकारी हैं, सब धर्मोंको जानते हैं, लोकोंकी अर्थात् प्राणियोंकी कीर्ति

लोकानाम्, प्राणिनां कीर्तयः यशांसि स्वशक्त्यानुप्रवेशेन वर्धयतीति तम् लोकैर्नाथ्यते लोकानुपतापयते शास्ते लोकानामीष्ट इति वा लोकनाथः तम्, महद् ब्रह्म—विश्वोत्कर्षेण वर्तमानत्वात्—महद्भूतम् परमार्थसत्यम् सर्वभूतानां भवः संसारो यत्सकाशादुद्भवतीति सर्वभूतभवोद्भवः तम् ॥ ७ ॥

यानी यशको उनमें अपनी शक्तिसे प्रविष्ट होकर बढ़ाते हैं, जो लोकनाथ अर्थात् लोकोंसे प्रार्थित अथवा लोकोंको अनुतप्त या शासित करनेवाले अथवा उनपर प्रभुत्व रखनेवाले हैं, जो अपने समस्त उत्कर्षसे वर्तमान होनेके कारण महद् अर्थात् ब्रह्म तथा महद्भूत यानी परमार्थ सत्य हैं और जिनकी सन्निधिमात्रसे समस्त भूतोंका उत्पत्ति-स्थान संसार उत्पन्न होता है, इसलिए जो समस्त भूतोंके उद्भवस्थान हैं, उन परमेश्वरका [स्तवन करनेसे मनुष्य सब दुःखोंसे छूट जाता है] ॥ ७ ॥



पञ्चमं प्रश्नं परिहरति—

अब पाँचवें प्रश्नका उत्तर देते हैं—

एष मे सर्वधर्माणां धर्मोऽधिकतमो मतः ।
यद्भक्त्या पुण्डरीकाक्षं स्तवैरर्चेन्नरः सदा ॥ ८ ॥

एषः, मे, सर्वधर्माणाम्, धर्मः, अधिकतमः, मतः ।
यत्, भक्त्या, पुण्डरीकाक्षम्, स्तवैः, अर्चेत्, नरः, सदा ॥

सर्वेषां चोदनालक्षणानां धर्माणामेव वक्ष्यमाणो धर्मोऽधिकतमः इति मे मम मतः अभिप्रेतः, यद्भक्त्या तात्पर्येण पुण्डरीकाक्षम् हृदयपुण्डरीके प्रकाशमानं वासु-

सम्पूर्ण विधिरूप धर्मोंमें मैं आगे बतलाये जानेवाले इसी धर्मको सबसे बड़ा मानता हूँ कि मनुष्य श्रीपुण्डरीकाक्षका अर्थात् अपने हृदय-कमलमें विराजमान भगवान् वासुदेवका भक्तिपूर्वक तत्परतासहित गुण-

देवं स्तवैर्गुणसंकीर्तनलक्षणैः स्तुतिभिः सदार्चेत् सत्कारपूर्वकमर्चनं करोति नरः मनुष्यः इति यद् एष धर्म इति सम्बन्धः।

अस्य स्तुतिलक्षणस्यार्चनस्याधिक्ये किं कारणम्? उच्यते—

हिंसादिपुरुषान्तरद्रव्यान्तरदेशकालादिनियमानपेक्षत्वम् आधिक्ये कारणम्।

'ध्यायन् कृते यजन् यज्ञै-
स्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन्।
यदाप्नोति तदाप्नोति
कलौ संकीर्त्य केशवम्॥'

इति विष्णुपुराणे (६ । २ । १७)।

'जप्येनैव तु संसिध्येद्
ब्राह्मणो नात्र संशयः।
कुर्यादन्यन्न वा कुर्या-
न्मैत्रो ब्राह्मण उच्यते॥'

इति मानवं वचनम् (मनु० २ । ८७)।

'जपस्तु सर्वधर्मेभ्यः
परमो धर्म उच्यते।
अहिंसया च भूतानां
जपयज्ञः प्रवर्तते॥'

इति महाभारते। 'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि' (गीता १० । २५) **इति भगवद्वचनम्। एतत्सर्वमभिप्रेत्य**

संकीर्तनरूप स्तुतियोंसे सदा अर्चन करे यानी मनुष्य आदरपूर्वक पूजन करे—इस प्रकार जो यह धर्म है [यही मुझे सबसे अधिक मान्य है] इस तरह इसका पूर्वसे सम्बन्ध है।

इस स्तुतिरूप अर्चनकी अधिक मान्यताका कारण क्या है? सो बतलाते हैं—

हिंसादि पाप-कर्मका अभाव तथा अन्य पुरुष एवं द्रव्य, देश और कालादिके नियमकी अनावश्यकता ही इसकी अधिक मान्यताका कारण है।

विष्णुपुराणमें कहा है—'सत्युगमें ध्यानसे; त्रेतामें यज्ञानुष्ठानसे और द्वापरमें पूजा करनेसे मनुष्य जो कुछ पाता है, वह कलियुगमें भगवान् कृष्णका नाम संकीर्तन करनेसे ही पा लेता है।'

मनुजीका वचन है—'इसमें सन्देह नहीं कि ब्राह्मण अन्य कर्म करे या न करे, वह केवल जपसे ही पूर्ण सिद्धि प्राप्त कर लेता है। अतः ब्राह्मण 'मैत्र' [सबका मित्र] कहा जाता है।'

महाभारतमें कहा है—'सम्पूर्ण धर्मोंमें जप सर्वश्रेष्ठ धर्म कहा जाता है। क्योंकि जपयज्ञ प्राणियोंकी हिंसा किये बिना ही सम्पन्न हो जाता है।' भगवान्का भी वचन है कि 'यज्ञोंमें मैं जपयज्ञ हूँ।'

'एष मे सर्वधर्माणां धर्मोऽधिकतमो मतः ।' (वि० स० ८) इत्युक्तम् ॥८॥

इन सब बातोंको सोचकर ही भीष्मजीने यह कहा है कि 'मुझे समस्त धर्मोंमें यही धर्म सबसे अधिक मान्य है' ॥ ८ ॥

द्वितीयं प्रश्नं समाधत्ते—

दूसरे प्रश्नका समाधान करते हैं—

परमं यो महत्तेजः परमं यो महत्तपः ।
परमं यो महद्ब्रह्म परमं यः परायणम् ॥ ९ ॥

परमम्, यः, महत्, तेजः, परमम्, यः, महत्, तपः ।
परमम्, यः, महत्, ब्रह्म, परमम्, यः, परायणम् ॥

परमम् प्रकृष्टं महत् बृहत् तेजः 'चैतन्यलक्षणं सर्वावभासकम्' 'येन सूर्यस्तपति तेजसेद्धः ।' (तै० ब्रा० ३ । १२ । ९७) 'तद्देवो ज्योतिषां ज्योतिः' (बृ० उ० ४ । ४ । १६) 'न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकम्' (मु० उ० २ । २ । १०) इत्यादिश्रुतेः, यदादित्यगतं तेजः' (गीता १५ । १२) इत्यादिस्मृतेश्च ।

जो सबका प्रकाशक, परम अर्थात् उत्तम और महान्—बृहत् चिन्मय प्रकाशक है, जिसके विषयोंमें 'जिस तेजसे प्रकाशित होकर सूर्य तपता है' 'उसे देवगण ज्योतियोंकी ज्योति [कहते हैं]' 'वहाँ न सूर्यका प्रकाश पहुँचता है और न चन्द्रमा या तारोंका' इत्यादि श्रुतियोंसे तथा 'सूर्यके अन्तर्गत जो तेज है' इत्यादि स्मृतियोंसे भी यही प्रमाणित होता है ।

परमम् तपः तपत आज्ञापयतीति तपः, 'य इमं च लोकं परमं च लोकं सर्वाणि च भूतानि योऽन्तरो यमयति' (बृ० उ० ३ । ७ । १) इत्यन्तर्यामिब्राह्मणैः सर्वनियन्तृत्वं श्रूयते ।

जो परम तप अर्थात् तपनेवाला यानी आज्ञा देनेवाला है, जैसा कि 'जो इस लोकको, परलोकको तथा समस्त प्राणियोंको उनके भीतर स्थित होकर शासित करता है' इस श्रुतिद्वारा अन्तर्यामी ब्राह्मणमें उसको सबका नियामक कहा गया है ।

'भीषास्माद्वातः पवते भीषोदेति सूर्यः । भीषास्मादग्निश्चेन्द्रश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः' (तै० उ० २।८।१)

इत्यादि तैत्तिरीयके ।

तपतीष्टे इति वा तपः तस्यैश्वर्यमनवच्छिन्नमिति महत्त्वम्

'एष सर्वेश्वरः' (मा० उ० ६)

इत्यादि श्रुतेः ।

परमम् **सत्यादिलक्षणं** ब्रह्म **महनीयतया** महत् । परमम् **प्रकृष्टं पुनरावृत्तिशङ्कारहितम्** । परायणम् **परम् अयनं परायणम् ।**

परमग्रहणात् सर्वत्र अपरं तेजः आदित्यादिकं व्यावर्त्यते । सर्वत्र यो देव इति विशेष्यते च—

यो देवः परमं तेजः परमं तपः परमं ब्रह्म परमं परायणं स एकं सर्वभूतानां परायणमिति वाक्यार्थः ॥ ९ ॥

तैत्तिरीय श्रुतिमें भी कहा गया है— **'इसीके भयसे वायु चलता है, इसीके भयसे सूर्य उदित होता है तथा इसीके भयसे अग्नि, इन्द्र और पाँचवाँ मृत्यु दौड़ता है ।'** इत्यादि—

'तपता है' अथवा 'शासन करता है । इसलिए वह तप है । उसका ऐश्वर्य अपरिमित है, इस कारण वह महान् है । श्रुति भी कहती है कि **'वह सर्वेश्वर है ।'**

जो सत्यादि लक्षणोंवाला परब्रह्म तथा महत्तायुक्त होनेके कारण महान् है और जो पुनरावृत्तिकी शङ्कासे रहित परम—श्रेष्ठ परायण है । परम अयन (आश्रय) का नाम परायण है ।

यहाँ सर्वत्र 'परम' शब्दका ग्रहण होनेसे सूर्यादि अन्य तेजोंका व्यावर्तन (पृथक्करण) किया गया है 'जो देव' इस पदकी विशेषता बतायी गयी है—

'जो देव परम तेज, परम तप, परम ब्रह्म और परम परायण है, वही समस्त प्राणियोंकी परम गति है'— यह इस वाक्यका अर्थ है ॥ ९ ॥

इदानीं प्रथमप्रश्नस्योत्तरमाह—

अब पहले प्रश्नका उत्तर देते हैं—

पवित्राणां पवित्रं यो मङ्गलानां च मङ्गलम् ।
दैवतं देवतानां च भूतानां योऽव्ययः पिता ॥ १० ॥

पवित्राणाम्, पवित्रम्, यः, मङ्गलानाम्, च, मङ्गलम् ।
दैवतम्, देवतानाम्, च, भूतानाम्, यः, अव्ययः, पिता ॥

पवित्राणांम् पवित्रम् पावनानां तीर्थादीनां पवित्रम् । परमस्तु पुमान् ध्यातो दृष्टः कीर्तितः स्तुतः सम्पूजितः स्मृतः प्रणतः पाप्मनः सर्वानुन्मूलयतीति परमं पवित्रम् ।

जो पवित्रोंमें पवित्र अर्थात् पवित्र करनेवाले तीर्थादिकोंमें पवित्र हैं । परमपुरुष परमात्मा ध्यान, दर्शन, कीर्तन, स्तुति, पूजा, स्मरण तथा प्रणाम किये जानेपर समस्त पापोंको जड़से उखाड़ डालते हैं, इसलिये वे परम पवित्र हैं ।

संसारबन्धहेतुभूतं पुण्यापुण्यात्मकं कर्म तत्कारणं चाज्ञानं सर्वं नाशयति स्वयाथात्म्यज्ञानेनेति वा पवित्राणां पवित्रम् ।

अथवा यों समझो कि परमात्मा अपने स्वरूपके यथार्थ ज्ञानसे संसार-बन्धनके हेतुभूत पुण्य-पापरूप कर्म और उसके कारणरूप अज्ञान सबको नष्ट कर देते हैं । इसलिये वे पवित्रोंमें पवित्र हैं ।

'रूपमारोग्यमर्थांश्च
भोगांश्चैवानुषङ्गिकान् ।
ददाति ध्यायतो नित्य-
मपवर्गप्रदो हरिः ॥'

'मोक्षदाता श्रीहरि ध्यान करनेवालेको सर्वदा रूप, आरोग्य, सम्पूर्ण पदार्थ और प्रासङ्गिक भोग भी दे देते हैं ।'

'चिन्त्यमानः समस्तानां
क्लेशानां हानिदो हि यः ।
समुत्सृज्याखिलं चिन्त्यं
सोऽच्युतः किं न चिन्त्यते ॥'

'जो अपना स्मरण किये जानेपर समस्त क्लेशोंको दूर कर देते हैं, और सब चिन्तनीयोंको छोड़कर उन अच्युतका ही चिन्तन क्यों नहीं किया जाता है ?'

'ध्यायेन्नारायणं देवं
स्नानादिषु च कर्मसु ।
प्रायश्चित्तं हि सर्वस्य
दुष्कृतस्येति वै श्रुतिः ॥'
(गरुड० १ । २३० । २८)

'स्नानादि समस्त कर्मोंको करते हुए श्रीनारायणदेवका ध्यान करना चाहिये । यह (भगवत्स्मरण) ही सम्पूर्ण दुष्कर्मोंका प्रायश्चित्त है; इस विषयमें श्रुति भी सहमत है ।'

'संसारसर्पसन्दष्ट-
नष्टचेष्टैकभेषजम् ।
कृष्णेति वैष्णवं मन्त्रं
श्रुत्वा मुक्तो भवेन्नरः ॥'

'संसाररूप सर्पद्वारा डँसे जानेसे निश्चेष्ट हुए पुरुषके लिये एकमात्र औषधरूप 'कृष्ण' इस मन्त्रको सुनकर मनुष्य मुक्त हो जाता है ।'

'अतिपातकयुक्तोऽपि
ध्यायन्निमिषमच्युतम् ।
भूयस्तपस्वी भवति
पङ्क्तिपावनपावनः ॥'

'अत्यन्त पापी पुरुष भी एक पलके लिये भी अच्युतका ध्यान करनेसे बड़ा भारी तपस्वी और पंक्तिपावनोंको* भी पवित्र करनेवाला हो जाता है ।'

'आलोड्य सर्वशास्त्राणि
विचार्य च पुनः पुनः ।
इदमेकं सुनिष्पन्नं
ध्येयो नारायणः सदा ॥'
(लिङ्ग० २ । ७ । ११)

'समस्त शास्त्रोंका मन्थन करनेपर और उनका पुनः-पुनः विचार करनेपर यही निश्चित होता है कि सर्वदा श्रीनारायणका ध्यान करना चाहिये ।'

'हरिरेकः सदा ध्येयो
भवद्भिः सत्त्वसंस्थितैः ।
ओमित्येवं सदा विप्राः
पठत ध्यात केशवम् ॥'
(हरि० ३ । ८९ । ९)

'हे विप्रगण ! आपलोगोंको सर्वदा सत्त्वगुणसम्पन्न होकर एक मात्र श्रीहरिका ही ध्यान करना चाहिये । आप सदा ओ३म्‌का जप और श्रीकेशवका ध्यान करें ।'

* जो ब्राह्मण श्रोत्रिय और सम्पूर्ण ब्राह्मणोचित लक्षणोंसे युक्त होता है, 'पंक्तिपावन' कहलाता है ।

'भिद्यते हृदयग्रन्थि-
श्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि
तस्मिन् दृष्टे परावरे ॥'
(मु० उ० २ । २ । ८)

'उस परावर परमात्माका दर्शन कर लेनेपर जीवकी (अविद्यारूप) हृदय-ग्रन्थि टूट जाती है, उसके सम्पूर्ण संशय नष्ट हो जाते हैं और सारे कर्म क्षीण हो जाते हैं ।'

'यन्नामकीर्तनं भक्त्या
विलापनमनुत्तमम् ।
मैत्रेयाशेषपापानां
धातूनामिव पावकः ॥'
(विष्णु० ६ । ८ । २०)

'हे मैत्रेय ! सुवर्ण आदि धातुओंको जिस प्रकार अग्नि पिघला देता है, उसी प्रकार जिसका भक्तियुक्त नाम-संकीर्तन सम्पूर्ण पापोंका अत्युत्तम विलापन (लीन करनेवाला) है ।'

'अवशेनापि यन्नाम्नि
कीर्तिते सर्वपातकैः ।
पुमान् विमुच्यते सद्यः
सिंहत्रस्तैर्वृकैरिव ॥'
(विष्णु० ६ । ८ । १९)

'जिसके नामका विवश होकर कीर्तन करनेसे भी मनुष्य तुरंत ही समस्त पापोंसे इस प्रकार छूट जाता है, जैसे सिंहसे डरे हुए भेड़ियोंसे उसका शिकार ।'

'ध्यायन् कृते यजन् यज्ञै-
स्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन् ।
यदाप्नोति तदाप्नोति
कलौ सङ्कीर्त्य केशवम् ॥'
(विष्णु० ६ । २ । १७)

'सत्ययुगमें ध्यानसे, त्रेतामें यज्ञानुष्ठानसे और द्वापरमें भगवान्के पूजनसे मनुष्य जो कुछ प्राप्त करता है, वह कलियुगमें श्रीकेशवका नाम-संकीर्तन करनेसे ही पा लेता है ।'

'हरिर्हरति पापानि
दुष्टचित्तैरपि स्मृतः ।
अनिच्छयापि संस्पृष्टो
दहत्येव हि पावकः ॥'
(बृ० नारद० १ । ११ । १००)

'श्रीहरिका यदि दुष्टचित्तपुरुषोंसे भी स्मरण किया जाय तो वे उनके समस्त पापोंको हर लेते हैं; जैसे अनिच्छासे स्पर्श करनेपर भी अग्नि जला ही डालती है ।'

'ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि
वासुदेवस्य कीर्तनात् ।
तत् सर्वं विलयं याति
तोयस्थं लवणं यथा ॥'

'जानकर अथवा बिना जाने, किसी प्रकार भी किये हुए श्रीवासुदेवके कीर्तनसे जलमें पड़े हुए नमकके समान समस्त पाप गल जाते हैं।'

'यस्मिन्न्यस्तमतिर्न याति नरकं
स्वर्गोऽपि यच्चिन्तने
विघ्नो यत्र निवेशितात्ममनसो
ब्राह्मोऽपि लोकोऽल्पकः ।
मुक्तिं चेतसि यः स्थितोऽमलधियां
पुंसां ददात्यव्ययः
किं चित्रं यदघं प्रयाति विलयं
तत्राच्युते कीर्तिते ॥'
(विष्णु० ६ । ८ । ५७)

'जिसमें चित्त लगानेवाला नरकगामी नहीं होता, जिसके चिन्तनमें स्वर्गलोक भी विघ्नरूप है, जिसमें चित्त लग जानेपर ब्रह्मलोक भी तुच्छ प्रतीत होता है तथा जो अविनाशी प्रभु शुद्ध बुद्धिवाले पुरुषोंके हृदयमें स्थित होकर उन्हें मुक्ति प्रदान करता है, उस अच्युतका चिन्तन करनेसे यदि पाप विलीन हो जाते हैं, तो इसमें आश्चर्य क्या है ?'

'शमायालं जलं वह्ने-
स्तमसो भास्करोदयः ।
शान्तिः कलौ ह्यघौघस्य
नामसंकीर्तनं हरेः ॥'

'अग्निको शान्त करनेमें जल और अन्धकारको दूर करनेमें सूर्य समर्थ है, तथा कलियुगमें पाप-समूहकी शान्तिका उपाय श्रीहरिका नाम-संकीर्तन है।'

'हरेर्नामैव नामैव
नामैव मम जीवनम् ।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव
नास्त्येव गतिरन्यथा ॥'
(बृ० नारद० १ । ४१ । १५)

'श्रीहरिका नाम ही, नाम ही, नाम ही मेरा जीवन है; इसके अतिरिक्त कलियुगमें और कोई सहारा है ही नहीं, है ही नहीं, है ही नहीं।'

'स्तुत्वा विष्णुं वासुदेवं
विपापो जायते नरः ।

'सर्वव्यापक विष्णुभगवान्का स्तवन करनेसे मनुष्य निष्पाप हो

विष्णोः सम्पूजनान्नित्यं
सर्वपापं प्रणश्यति ॥'

'सर्वदा सर्वकार्येषु
नास्ति तेषाममङ्गलम् ।
येषां हृदिस्थो भगवान्
मङ्गलायतनो हरिः ॥
(स्कन्द० ५ । ३ । १५७ । ७)

'नित्यं सञ्चिन्तयेद्देवं
योगयुक्तो जनार्दनम् ।
सास्य मन्ये परा रक्षा
को हिनस्त्यच्युताश्रयम् ॥'

'गङ्गास्नानसहस्रेषु
पुष्करस्नानकोटिषु ।
यत् पापं विलयं याति
स्मृते नश्यति तद्धरौ ॥'
(गरुड० १ । २३० । १८)

'मुहूर्त्तमपि यो ध्याये-
न्नारायणमनामयम् ।
सोऽपि सिद्धिमवाप्नोति
किंपुनस्तत्परायणः ॥'

'प्रायश्चित्तान्यशेषाणि
तपः कर्मात्मकानि वै ।
यानि तेषामशेषाणां
कृष्णानुस्मरणं परम् ॥'
(विष्णु० २ । ६ । ३९)

जाता है । विष्णुभगवान्‌का नित्यप्रति पूजन करनेसे समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं ।'

'जिनके हृदयमें समस्त मङ्गलोंके स्थान भगवान् श्रीहरि विराजते हैं, उन्हें कभी किसी कार्यमें कोई अमङ्गल प्राप्त नहीं होता ।'

'श्रीजनार्दन भगवान्‌का सदा समाहित होकर चिन्तन करना चाहिये; यही इस (जीव) की परम रक्षा है । भला, जो भगवान्‌के आश्रित है, उसे कौन कष्ट पहुँचा सकता है ?'

'हजार बार गङ्गास्नान करनेसे और करोड़ बार पुष्करक्षेत्रमें नहाने-से जो पाप नष्ट होते हैं, वे श्रीहरिका स्मरण करनेसे ही नष्ट हो जाते हैं ।'

'जो पुरुष अविनाशी नारायण-देवका एक मुहूर्त्त भी चिन्तन करता है, वह भी सिद्धि प्राप्त कर लेता है; फिर जो भगवत्परायण है, उसकी तो बात ही क्या है !'

जितने भी तप और कर्मरूप प्रायश्चित्त हैं, उन सबमें श्रीकृष्णका स्मरण करना ही सर्वश्रेष्ठ है ।'

'कलिकल्मषमत्युग्रं
नरकार्तिप्रदं नृणाम् ।
प्रयाति विलयं सद्य:
सकृद्यत्रापि संस्मृते ॥'
(विष्णु० ६ । ८ । २१)

'मनुष्योंको नरककी यातनाएँ प्राप्त करानेवाले कलियुगके अति उग्र दोष जिनका एक बार स्मरण करनेसे भी तुरंत लीन हो जाते हैं ।'

'सकृत्स्मृतोऽपि गोविन्दो
नृणां जन्मशतैः कृतम् ।
पापराशिं दहत्याशु
तूलराशिमिवानल: ॥'

'श्रीगोविन्द एक बार स्मरण किये जानेपर भी मनुष्योंके सैकड़ों जन्मोंमें किये हुए पाप-पुञ्जको इस प्रकार तुरंत ही भस्म कर देते हैं, जैसे अग्नि रूईके ढेरको जला डालता है ।'

'यथाग्निरुद्धतशिख:
कक्षं दहति सानिलः ।
तथा चित्तस्थितो विष्णु-
र्योगिनां सर्वकिल्बिषम् ॥'
(विष्णु० ६ । ७ । ७४)

'जिस प्रकार ऊँची-ऊँची लपटोंवाला अग्नि वायुके साथ मिलकर सूखी घासके ढेरको जला डालता है, उसी प्रकार चित्तमें स्थित विष्णुभगवान् योगियोंके समस्त दोषोंको नष्ट कर देते हैं ।'

'एकस्मिन्नप्यतिक्रान्ते
मुहूर्ते ध्यानवर्जिते ।
दस्युभिर्मुषितेनेव
युक्तमाक्रन्दितुं भृशम् ॥'

'बिना ध्यानके एक मुहूर्त्त निकल जानेपर भी लुटेरोंसे लूटे हुए व्यक्तिके समान अत्यन्त विलाप करना चाहिये ।'

'जनार्दनं भूतपतिं जगद्गुरुं
स्मरन् मनुष्य: सततं महामुने ।
दुःखानि सर्वाण्यपहन्ति साधय-
त्यशेषकार्याणि च यान्यभीप्सते ॥'

'हे महामुने ! समस्त प्राणियोंके प्रभु जगद्गुरु जनार्दनका निरन्तर स्मरण करनेसे मनुष्य समस्त दुःखोंको दूर कर देता है और जिन-जिनकी इच्छा करता है, उन सभी कार्योंको सिद्ध कर लेता है ।'

'एवमेकाग्रचित्तः सन्
संस्मरन् मधुसूदनम् ।
जन्ममृत्युजराग्राहं
संसाराब्धिं तरिष्यति ॥'

'इस प्रकार एकाग्रचित्त होकर श्रीमधुसूदनका स्मरण करते रहनेसे मनुष्य जन्म, मृत्यु और जरारूप ग्राहोंसे पूर्ण संसारसागरको पार कर लेगा।'

'कलावत्रापि दोषाढ्ये
विषयासक्तमानसः ।
कृत्वापि सकलं पापं
गोविन्दं संस्मरञ्छुचिः ॥'

'इस दोषपूर्ण कलियुगमें भी विषयासक्त मनुष्य समस्त पापोंको करके भी श्रीगोविन्दका चिन्तन करनेसे पवित्र हो जाता है।'

'वासुदेवे मनो यस्य
जपहोमार्चनादिषु ।
तस्यान्तरायो मैत्रेय
देवेन्द्रत्वादिकं फलम् ॥'
(विष्णु० २ । ६ । ४१)

'हे मैत्रेय ! जप, होम तथा अर्चनादिमें जिसका चित्त भगवान् वासुदेवमें लगा हुआ है, उसके लिये इन्द्रत्वादि फल विघ्नरूप ही हैं।

'लोकत्रयाधिपतिमप्रतिमप्रभाव-
मीषत्प्रणम्य शिरसा प्रभविष्णुमीशम् ।
जन्मान्तरप्रलयकल्पसहस्रजात-
माशु प्रणाशमुपयाति नरस्य पापम् ।'

'तीनों लोकोंके स्वामी, अनुपम प्रभावशाली तथा अनेक रूपसे प्रकट होनेवाले भगवान्‌को सिर झुकाकर थोड़ा-सा प्रणाम करनेसे मनुष्यके हजारों महाकल्पोंमें, जन्म-जन्मान्तरोंमें किये हुए सम्पूर्ण पाप तुरंत नष्ट हो जाते हैं।'

'एकोऽपि कृष्णस्य कृतः प्रणामो
दशाश्वमेधावभृथेन तुल्यः ।
दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म
कृष्णप्रणामी न पुनर्भवाय ॥'
(महा० शान्ति० ४७ । ९१)

श्रीकृष्णचन्द्रको किया हुआ एक प्रणाम भी दस अश्वमेध-यज्ञोंके [यज्ञान्त] स्नानके समान [पवित्र करनेवाला] है। उनमें भी दस अश्वमेध करनेवालेका तो पुनर्जन्म होता है, किन्तु कृष्णको प्रणाम करनेवालेका नहीं होता।'

'अतसीपुष्पसङ्काशं
पीतवाससमच्युतम् ।
ये नमस्यन्ति गोविन्दं
न तेषां विद्यते भयम् ॥'
(महा० शान्ति० ४७ । ९०)

'जिनका वर्ण अलसीके फूलके समान है, उन पीताम्बरधारी श्रीअच्युत भगवान् गोविन्दको जो प्रणाम करेंगे, उन्हें किसी प्रकारका भय नहीं है।'

'शाठ्येनापि नमस्कारः
प्रयुक्तश्चक्रपाणये ।
संसारस्थूलबन्धाना-
मुद्वेजनकरो हि सः ॥'

'भगवान् चक्रपाणिको जो शठता (दम्भ) से भी किया हुआ नमस्कार है, वह भी निस्सन्देह संसारके स्थूल बन्धनोंको काटनेवाला होता है।'

इत्यादिश्रुतिस्मृतीतिहासपुराणवचनेभ्यः ।

इत्यादि श्रुति, स्मृति, इतिहास और पुराणोंके वचनोंसे [यही बात सिद्ध होती है कि वह देव पवित्रोंमें पवित्र है]।

मङ्गलानाम् च मङ्गलम् मङ्गलं सुखं तत्साधनं तज्ज्ञापकं च, तेषामपि परमानन्दलक्षणं परं मङ्गलमिति मङ्गलानां च मङ्गलम् ।

मङ्गलोंका मङ्गल—मङ्गल सुखको कहते हैं; जो उसके साधन और ज्ञापक हैं, उनका भी परमानन्दरूप परम मङ्गल होनेसे वह मङ्गलोंका मङ्गल है।

दैवतम् देवतानाम् च देवानां देवः, द्योतनादिभिः समुत्कर्षेण वर्तमानत्वात् ।

'दैवतं देवतानाम्' अर्थात् देवोंका देव है; क्योंकि वह प्रकाशन आदिमें सबसे बढ़कर है।

भूतानाम् यः अव्ययः व्ययरहितः पिता जनको यो देवः, स एकं दैवतं लोक इति वाक्यार्थः ।

तथा भूत-प्राणियोंका जो अव्यय-नाशरहित पिता अर्थात् उत्पन्न करनेवाला है। ऐसा जो देव है, लोकमें वही एकमात्र देव है । यह इस वाक्यका अर्थ है।

'एको देवः सर्वभूतेषु गूढः
सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ।

'एक देव है, जो सब प्राणियोंमें छिपा हुआ है, सर्वत्र व्याप्त है, सब

कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः
साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥'
(६ । ११)

'यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं
यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै ।
तꣳह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं
मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये ॥'
(६ । १८)

इति श्वेताश्वतराणां मंत्रोपनिषदि ।

'सेयं देवतैक्षत' (६ । ३ । २)
'एकमेवाद्वितीयम्' (६ । २ । १)
इति छान्दोग्ये ।

ननु कथम् एको देवः जीवपरयोर्भेदात् ?

न; 'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्' (तै० उ० २ । ६) 'स एष इह प्रविष्ट आनखाग्रेभ्यः' (बृ० उ० १ । ४ । ७) **इत्यादिश्रुतिभ्योऽविकृतस्य परस्य बुद्धितद्वृत्तिसाक्षित्वेन प्रवेशश्रवणादभेदः ।**

प्रविष्टानामितरेतरभेदात्

जीवोंका अन्तरात्मा है, कर्मोंका अध्यक्ष (कर्म-फलका विभाग करनेवाला) है, सब भूतोंका अधिष्ठान है तथा सबका साक्षी, सबको चेतना देनेवाला, एकमात्र और निर्गुण है ।'

'जो सबसे पहले ब्रह्माको रचता है और फिर उसे वेद प्रदान करता है, आत्मबुद्धि (आत्मज्ञान) को प्रकाशित करनेवाले उस देवकी मैं मुमुक्षु शरण लेता हूँ ।' ऐसा श्वेताश्वतर-शाखाके मन्त्रोपनिषद्में कहा है ।

छान्दोग्योपनिषद्में कहा है— **'इस पूर्वोक्त देवताने ईक्षण किया ।' 'वह एक ही अद्वितीय था ।'**

पूर्व०—जीवात्मा और परमात्मामें तो भेद है, फिर एक ही देव कैसे हो सकता है ?

उ०—ऐसा मत कहो; क्योंकि **'उसे रचकर उसीमें प्रविष्ट हो गया ।' 'वह इस [शरीर] में नखसे लेकर [शिखापर्यन्त] अनुप्रविष्ट है'** इत्यादि श्रुतियोंसे अविकारी परमात्माका ही बुद्धि तथा उसकी वृत्तियोंके साक्षीरूपसे प्रवेश कहे जानेके कारण उनमें अभेद है ।

यदि कहो कि प्रविष्ट हुओंका तो परस्पर भेद होता है, फिर जीव और

परात्मैकत्वं कथमिति चेत्, न; 'एको देवः बहुधा सन्निविष्टः' (तै० आ० ३ । १४) 'एकः सन् बहुधा विचारः' (तै० आ० ३ । ११) 'त्वमेकोऽसि बहूननुप्रविष्टः' (तै० आ० ३ । १४) **इत्येकस्यैव बहुधा प्रवेशश्रवणात् प्रविष्टानां च न भेदः ।**

परमात्माकी एकता कैसे हो सकती है, तो ऐसा कहना ठीक नहीं, क्योंकि **'एक ही देव अनेक प्रकारसे स्थित है', 'एक होनेपर भी अनेक प्रकारसे विचार किया जाता है', 'तुम एकही अनेकोंमें अनुप्रविष्ट हो'** इत्यादि श्रुतियोंसे एकका ही अनेक प्रकार प्रवेश कहा जाता है । इसलिये प्रविष्ट हुओंमें भेद नहीं है ।

'हिरण्यगर्भः; (ऋ० वे० १० । १२१ । १) **इत्यष्टौ मन्त्राः ।** 'कस्मै देवाय' **इत्यत्र एकारलोपेनैकदैवतप्रतिपादकस्तैत्तिरीयके ।**

इसी विषयमें **'हिरण्यगर्भः'** आदि आठ मन्त्र हैं । **'कस्मै देवाय'** इस तैत्तिरीयक श्रुतिमें भी आदिमें एकारका लोप हुआ है;* अतः यह मन्त्र भी एक ही देवका प्रतिपादक है ।

'अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो
रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव ।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा
रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ॥'
'वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो
रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव ॥
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा
रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ॥'

कठोपनिषद्में कहा है—**'जिस प्रकार संसारमें व्याप्त हुआ एक ही अग्नि पृथक्-पृथक् आकारोंके संयोगसे भिन्न-भिन्न रूपवाला होता है, उसी प्रकार समस्त प्राणियोंका एक ही अन्तरात्मा भिन्न-भिन्न रूपोंके अनुरूप और उनके बाहर भी स्थित है ।' 'जैसे एक ही विश्वव्यापी वायु भिन्न-भिन्न रूपोंके अनुसार तद्रूप हो गया है, उसी प्रकार समस्त प्राणियोंका एक ही अन्तरात्मा भिन्न-भिन्न रूपोंके संयोगसे उनके अनुरूप है और उनसे बाहर भी सर्वत्र**

* अर्थात् यहाँ 'कस्मै' के स्थानमें 'एकस्मै' समझना चाहिये ।

'सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षु-
र्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः ।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा
न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः ॥'
'एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा
एकं रूपं बहुधा यः करोति ।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरा-
स्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥'
'नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनाना-
मेको बहूनां यो विदधाति कामान् ।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरा-
स्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम् ॥'

इति काठके (२ । २ । ९-१३)

'ब्रह्म वा इदमग्र आसीदेकमेव तदेकं सन्न व्यभवत्' (१ । ४ । ११) 'नान्यदतोऽस्ति द्रष्टा' (३ । ७ । २३) **इत्यादि बृहदारण्यके ।**

'अनेजदेकं मनसो जवीयः' (ई० उ० ४) 'तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः' (ई० उ० ७) **इति ईशावास्ये ।**

व्याप्त है ।' 'जिस प्रकार सम्पूर्ण जगत्‌का नेत्र सूर्य दर्शनजन्य बाह्य दोषोंसे लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार समस्त प्राणियोंका एक अन्तरात्मा परमेश्वर उन सबके दुःखोंसे लिप्त नहीं होता; क्योंकि वास्तवमें वह शरीरसे भिन्न है ।' 'समस्त भूतोंका एक ही अन्तरात्मा है, जो सबको वशमें करनेवाला है और अपने एक ही रूपको नाना प्रकारका कर लेता है, अपने अन्तःकरणमें स्थित उस देवको जो धीर पुरुष देखते हैं, उन्हींको नित्य-सुख प्राप्त होता है औरोंको नहीं ।' 'जो नित्योंका नित्य और चेतनोंका चेतन है तथा जो अकेला ही अनेकोंकी कामनाओंको पूर्ण करता है; उसे जो धीर पुरुष अपने अन्तःकरणमें स्थित देखते हैं, उन्हें ही नित्यशान्ति प्राप्त होती है औरोंको नहीं ।

बृहदारण्यकोपनिषद्‌में कहा है— 'आरम्भमें यह एकमात्र ब्रह्म ही था, अकेला होनेसे वह भूतियुक्त कर्म करनेमें समर्थ नहीं हुआ', 'इसके अतिरिक्त और कोई द्रष्टा नहीं है' इत्यादि ।

ईशावास्यमें कहा है—'वह एक है, चलता नहीं है [तथापि] मनसे भी अधिक वेगवाला है ।' 'एकत्व देखनेवालेको फिर क्या शोक और क्या मोह ?'

'आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीन्नान्यत्किञ्चन मिषत ।' (ऐ० उ० १ । १) 'सर्वेषां भूतानामन्तरः पुरुषः स म आत्मेति विद्यात् ।' (ऐ० आ० ३ । ४ । १०) 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति ।' (ऋ० सं० १ । २२ । १६४ । ४६) 'एकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति ।' 'द्यावाभूमी जनयन्देव एकः ।' 'एको दाधार भुवनानि विश्वा', 'एक एवाग्निर्बहुधा समिद्धः' **इति ऋग्वेदे ।** 'सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्' **इति छान्दोग्ये ।** (६ । २ । १) ।

'सर्वभूतस्थितं यो मां
भजत्येकत्वमास्थितः ।
सर्वथा वर्तमानोऽपि
स योगी मयि वर्तते ॥'
(६ । ३१)

'विद्याविनयसम्पन्ने
ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च
पण्डिताः समदर्शिनः ॥'
(५ । १८)

'अहमात्मा गुडाकेश
सर्वभूताशयस्थितः ।
अहमादिश्च मध्यं च
भूतानामन्त एव च ॥'
(१० । २०)

[श्रुति कहती है—] 'पहले यह एकमात्र आत्मा ही था और कोई चेष्टा करनेवाली वस्तु नहीं थी ।' 'समस्त प्राणियोंके भीतर जो पुरुष है, वह मेरा आत्मा है-ऐसा जाने ।' ऋग्वेदका भी कथन है—'उस एकको ही ब्राह्मणलोग नाना प्रकारसे कहते हैं ।' 'उस एककी ही नाना प्रकारसे कल्पना करते हैं ।' 'वह एक ही देव पृथ्वी और स्वर्गको रचता हुआ', 'वह अकेला ही सम्पूर्ण लोकोंको धारण किये हुए है ।' अनेक प्रकारसे बढ़ाया हुआ अग्नि एक ही है,' छान्दोग्यमेंभी कहा है—'हे सोम्य ! पहले एकमात्र यह अद्वितीय सत् ही था ।'

श्रीगीतोपनिषद्में कहा है—'जो पुरुष एकत्वमें स्थित होकर सम्पूर्ण भूतोंमें स्थित मुझ परमात्माको भजता है, वह योगी सब प्रकारसे बर्तता हुआ भी मुझहीमें बर्तता है ।' 'पण्डितजन विद्याविनयसम्पन्न ब्राह्मणमें, गौमें, हाथीमें, कुत्तेमें और चाण्डालमें भी समान दृष्टि रखनेवाले होते हैं ।' 'हे अर्जुन ! मैं सम्पूर्ण भूतोंके अन्तःकरणोंमें स्थित उनका आत्मा हूँ तथा मैं ही समस्त प्राणियोंका आदि, मध्य और अन्त भी हूँ ।'

'यदा भूतपृथग्भाव-
मेकस्थमनुपश्यति ।
तत एव च विस्तारं
ब्रह्मसम्पद्यते तदा ॥'
(१३ । ३०)
'यथा प्रकाशयत्येकः
कृत्स्नं लोकमिमं रविः ।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं
प्रकाशयति भारत ॥'
(१३ । ३३)
'सर्वधर्मान्परित्यज्य
मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो
मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥'
(१८ । ६६)

इति गीतोपनिषत्सु ।

'हरिरेकः सदा ध्येयो
भवद्भिः सत्त्वसंस्थितैः ।
ओमित्येवं सदा विप्राः
पठत ध्यात केशवम् ॥'
(हरि० ३ । ८९ । ९)
'आश्चर्यं खलु देवाना-
मेकस्त्वं पुरुषोत्तम ।
धन्यश्चासि महाबाहो
लोके नान्योऽस्ति कश्चन ॥'

इति हरिवंशे ।

भवति मनोर्माहात्म्यख्यापिनी श्रुतिः 'यद्वै किञ्च मनुरवत्तद्-

'जिस समय भूतोंके पृथक्-पृथक् भावको एक [परमात्माके संकल्प] में ही स्थित देखता है और उसीसे सब भूतोंका विस्तार हुआ जानता है, उस समय ब्रह्मको प्राप्त हो जाता है ।' 'हे अर्जुन! जिस प्रकार एक ही सूर्य इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको प्रकाशित करता है, उसी प्रकार एक ही आत्मा सम्पूर्ण क्षेत्रको प्रकाशित करता है' 'इसलिये सर्व धर्मोंको त्यागकर केवल एक मेरी ही शरणको प्राप्त हो, मैं तुमको सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर दूँगा, तू शोक मत कर ।'

'हे विप्रगण ! आप लोगोंको सत्त्वगुणमें स्थित होकर सर्वदा एकमात्र श्रीहरिका ही ध्यान करना चाहिये; आप सदा ओंकारका जप और श्रीकेशवका ध्यान करें ।' 'हे पुरुषोत्तम ! निश्चय ही सम्पूर्ण देवताओंमें एक आप ही आश्चर्यरूप और धन्य हैं । हे महाबाहो ! संसारमें [आपके समान] और कोई भी नहीं है ।' इस प्रकार हरिवंशमें कहा है ।

'जो कुछ मनुने कहा है वह ओषधिरूप है' यह श्रुति मनुका माहात्म्य

मेषजम्' (तै० सं० २ । १० । २) इति ।

मनुना चोक्तम्—

'सर्वभूतस्थमात्मानं
सर्वभूतानि चात्मनि ।
सम्पश्यन्नात्मयाजी वै
स्वाराज्यमधिगच्छति ॥'

इति (मनु० १२ । ९१)

'सृष्टिस्थित्यन्तकरणीं
ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाम् ।
स संज्ञां याति भगवा-
नेक एव जनार्दनः ॥'
(विष्णु० १ । २ । ६६)

'तस्मान्न विज्ञानमृतेऽस्ति किञ्चित्
क्वचित् कदाचिद् द्विज वस्तुजातम् ।
विज्ञानमेकं निजकर्मभेदाद्
विभिन्नचित्तैर्बहुधाभ्युपेतम् ॥'

'ज्ञानं विशुद्धं विमलं विशोक-
मशेषलोभादिनिरस्तसङ्गम् ।
एकः सदैकः परमः परेशः
स वासुदेवो न यतोऽस्ति किञ्चित् ॥'
(विष्णु० २ । १२ । ४३-४४)

'यदा समस्तदेहेषु
पुमानेको व्यवस्थितः ।
तदा हि को भवान् सोऽह-
मित्येतद्विफलं वचः ॥'
(विष्णु० २ । १३ । ९१)

बतलानेवाली है । और मनुजी कहते हैं—

'समस्त भूतोंमें स्थित अपने आत्माको और समस्त भूतोंको अपने आत्मामें देखता हुआ आत्मयज्ञ करनेवाला पुरुष स्वाराज्य लाभ करता है ।'

'वह एक ही जनार्दन भगवान् संसारकी रचना, स्थिति और संहार करनेवाली ब्रह्मा, विष्णु, और शिवरूप तीन संज्ञाओंको प्राप्त होता है ।'

'इसलिये हे द्विज ! विज्ञानके सिवा और कोई वस्तु कभी कुछ भी नहीं है । यह एक विज्ञान ही अपने-अपने कर्मोंके भेदसे विभिन्न चित्तवालोंको भिन्न-भिन्न प्रकारका प्रतीत हो रहा है ।' वह ज्ञान शुद्ध, निर्मल, शोकहीन और लोभादि सम्पूर्ण सङ्गोंसे रहित है । वही एकमात्र सत् श्रेष्ठ परमेश्वर है तथा वही वासुदेव हैं—उससे पृथक् और कुछ नहीं है ।'

'जबकि समस्त देहमें एक ही पुरुष व्याप्त है, तब आप कौन हैं ? मैं अमुक हूँ ?; यह कहना व्यर्थ है ।'

'सितनीलादिभेदेन
यथैकं दृश्यते नभः ।
भ्रान्तदृष्टिभिरात्मापि
तथैकः सन्पृथक् पृथक् ॥
एकः समस्तं यदिहास्ति किञ्चि-
त्तदच्युतो नास्ति परं ततोऽन्यत् ।
सोऽहं स च त्वं स च सर्वमेत-
दात्मस्वरूपं त्यज भेदमोहम् ॥'
इतीरितस्तेन स राजवर्य-
स्तत्याज भेदं परमार्थदृष्टिः ।
(विष्णु० २ । १६ । २२-२४)

'जिस प्रकार [दृष्टि-दोषसे] एक ही आकाश श्वेत, नील आदि अनेकों भेदवाला दीख पड़ता है, उसी प्रकार भ्रान्त-दृष्टि पुरुषोंको एक ही आत्मा अलग-अलग दिखायी देता है । 'यहाँ जो कुछ है, वह सब एक अच्युत भगवान् ही है; उससे अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है । वही मैं हूँ, वही तू है और वह आत्मस्वरूप ही यह सब कुछ है, भेद-दृष्टिरूप मोहको छोड़ । उन (जडभरत) के इस प्रकार कहनेपर उस परमार्थ-दृष्टिवाले नृपश्रेष्ठ (रहूगण) भेद-भावको त्याग दिया ।'

यमेनोक्तम्—

यमराजने [अपने दूतोंसे] कहा था—

'सकलमिदमहं च वासुदेवः
परमपुमान् परमेश्वरः स एकः ।
इति मतिरचला भवत्यनन्ते
हृदयगते व्रज तान् विहाय दूरात् ॥'
(विष्णु० ३ । ७ । ३२)

'यह सम्पूर्ण संसार और मैं एकमात्र परमपुरुष परमेश्वर वासुदेव ही हैं—जिनकी हृदयस्थ अनन्त भगवान्में ऐसी दृढ़ भावना हो गयी है, उन्हें तुम दूरसे ही छोड़कर निकल जाया करो ।'

'यदाह वसुधा सर्वं
सत्यमेव दिवौकसः ।
अहं भवो भवन्तश्च
सर्वं नारायणात्मकम् ॥'
'विभूतयस्तु यास्तस्य
तासामेवं परस्परम् ।
आधिक्यं न्यूनता बाध्य-
बाधकत्वेन वर्तते ॥'
(विष्णु० ५ । १ । ३०-३१)

'हे देवगण ! पृथ्वीने जो कुछ कहा है, वह ठीक ही है; मैं महादेवजी और आप सब भी नारायणस्वरूप ही हैं । जो उसकी विभूतियाँ हैं, उन्हींकी न्यूनता तथा अधिकता परस्पर बाध्य-बाधकरूपसे रहती है ।'

'भवानहं च विश्वात्म-
न्नेक एव हि कारणम् ।
जगतोऽस्य जगत्यर्थे
भेदेनावां व्यवस्थितौ ॥'
(विष्णु० ५ । ९ । ३२)

[भगवान् कृष्ण बलरामसे कहते हैं-] 'हे विश्वात्मन् ! आप और मैं दोनों इस संसारके एक ही कारण हैं । इस संसारके लिये ही हम दोनों भिन्नरूपसे स्थित हैं ।'

'त्वया यदभयं दत्तं
तद्दत्तमखिलं मया ।
मत्तो विभिन्नमात्मानं
द्रष्टुं नार्हसि शङ्कर ॥'
'योऽहं स त्वं जगच्चेदं
सदेवासुरमानुषम् ।
अविद्यामोहितात्मानः
पुरुषा भिन्नदर्शिनः ॥'
(विष्णु० ५ । ३३ । ४७-४९)

[श्रीकृष्णचन्द्र महादेवजीसे कहते हैं--] जो अभय आपने दिया है, वह सब मैंने भी दे ही दिया; हे शंकर ! आप अपनेको मुझसे पृथक् न देखें । 'जो मैं हूँ वही आप और देवता, असुर तथा मनुष्योंके सहित यह सारा संसार है ।' 'जिन पुरुषोंका चित्त अविद्यासे मोहित हो रहा है, वे ही भेदभाव देखनेवाले होते हैं ।' --इस प्रकार विष्णुपुराणमें कहा है ।

इति श्रीविष्णुपुराणे ।

'विष्णोरन्यं तु पश्यन्ति
ये मां ब्रह्माणमेव वा ।
कुतर्कमतयो मूढाः
पच्यन्ते नरकेष्वधः ॥'
'ये च मूढा दुरात्मानो
भिन्नं पश्यन्ति मां हरेः ।
ब्रह्माणं च ततस्तस्माद्
ब्रह्महत्यासमं त्वघम् ॥'

इति भविष्योत्तरपुराणे महेश्वरवचनम् ।

भविष्योत्तरपुराणमें श्रीमहादेवजी-का वचन है-जो लोग मुझे अथवा ब्रह्माजीको विष्णुसे अलग देखते हैं, वे कुतर्कबुद्धि मूढ़जन नीचे नरक-में गिरकर दुःख भोगते हैं । 'तथा जो दुष्टबुद्धि मूढ़लोग मुझे और ब्रह्माजीको श्रीविष्णुसे पृथक् देखते हैं, उन्हें उससे ब्रह्महत्याके समान पाप लगता है ।'

तथा च हरिवंशे कैलासयात्रायां महेश्वरवचनम्—

इसी प्रकार हरिवंशमें कैलासयात्रा-के प्रसंगमें महेश्वरका कथन है--

'आदिस्त्वं सर्वभावानां
मध्यमन्तस्तथा भवान् ।
त्वत्तः सर्वमभूद् विश्वं
त्वयि सर्वं प्रलीयते ॥'
(हरि० ३ । ८८ । ५१)

'समस्त भावोंके आदि, मध्य और अन्त आप ही हैं । यह सम्पूर्ण विश्व आपहीसे हुआ है और आपहीमें लीन होता है ।'

'अहं त्वं सर्वगो देव
त्वमेवाहं जनार्दन ।
आवयोरन्तरं नास्ति
शब्दैरर्थैर्जगत्त्रये ॥'
'नामानि तव गोविन्द
यानि लोके महान्ति च ।
तान्येव मम नामानि
नात्र कार्या विचारणा ॥'
'त्वदुपासा जगन्नाथ
सैवास्तु मम गोपते ।
यश्च त्वां द्वेष्टि भो देव
स मां द्वेष्टि न संशयः ॥'
'त्वद्विस्तारो यतो देव
ह्यहं भूतपतिस्ततः ।
न तदस्ति विभो देव
यत्ते विरहितं क्वचित् ॥'
'यदासीद् वर्तते यच्च
यच्च भावि जगत्पते ।
सर्वं त्वमेव देवेश
विना किञ्चित् त्वया न हि ॥'
(हरि० ३ । ८८ । ६०–६४)

'हे जनार्दन ! हे सर्वव्यापक देव ! मैं ही तू है और तू ही मैं हूँ । सम्पूर्ण त्रिलोकीमें हम दोनोंका शब्दसे या अर्थसे किसी प्रकार भी भेद नहीं है ।' 'हे गोविन्द ! संसारमें जो-जो आपके महान् नाम हैं, वे ही मेरे भी हैं—इसमें कोई विचार करनेकी बात नहीं है ।' 'हे गोपते ! हे जगन्नाथ ! जो आपकी उपासना है, वही मेरी हो । हे देव ! जो आपसे द्वेष करता है, इसमें सन्देह नहीं वह मुझसे भी द्वेष करता है ।' 'हे देव ! क्योंकि मैं भूतपति भी आपहीका विस्तार हूँ, इसलिये हे सर्वव्यापक देव ! ऐसी कहीं कोई वस्तु नहीं है जो आपसे रहित हो ।' 'जो कुछ था, जो कुछ है और जो कुछ होगा, हे जगत्पते ! हे देवेश्वर ! वह सब आपही हैं, आपसे अतिरिक्त और कुछ नहीं है ।'

इत्यादिवाक्यान्येकत्वप्रतिपादकानि ।

अपि च—'आत्मेति तूपगच्छन्ति ग्राहयन्ति च' (ब्र० सू० ४ । १ । ३) आत्मेत्येवं शास्त्रोक्तलक्षणः परमात्मा प्रतिपत्तव्यः । तथा हि परमात्मप्रक्रियायां जाबाला आत्मत्वेनैवैनमभ्युपगच्छन्ति 'त्वं वा अहमस्मि भगवो देवते अहं वै त्वमसि' इति । तथान्येऽपि—'यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह' (क० उ० २ । १ । १०) 'स यश्चायं पुरुषे । यश्चासावादित्ये । स एकः' (तै० उ० २ । ८ । १२) 'तदात्मानमेवावेदहं ब्रह्मास्मीति' (बृ० उ० १ । ४ । १०) 'तदेतद्ब्रह्मापूर्वमनपरमनन्तरमबाह्यमयमात्मा ब्रह्म' (बृ० उ० २ । ५ । १९) 'स वा एष महानज आत्माजरोऽमरोऽमृतोऽभयो ब्रह्म' (बृ० उ० ४ । ४ । २५) इत्येवमाद्य आत्मत्वोपगमा द्रष्टव्याः । ग्राहयन्ति च बोधयन्ति चात्मत्वेनेश्वरं वेदान्तवाक्यानि—'एष त आत्मान्तर्याम्यमृतः (बृ० उ० ३ । ७ । ३—२३) 'यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो

ये सब वाक्य एकत्वका प्रतिपाद[न] करनेवाले हैं ।

और भी—'[परमात्माको] आत्म[स्वरूपसे] ही प्राप्त होते हैं और [आत्मस्वरूपसे ही] ग्रहण कराते हैं।' इस सूत्रमें 'आत्मा' ऐसा कहक[र] शास्त्रोक्त लक्षणविशिष्ट परमात्माक[ा] ही प्रतिपादन करना अभीष्ट है । तथा जाबालशाखावाले भी परमात्म[-]प्रक्रियामें 'हे भगवन् ! हे देव ! तू ह[ी] मैं हूँ और मैं ही तू है' ऐसा कहक[र] उसको आत्मस्वरूपसे स्वीकार कर[ते] है। तथा 'जो यहाँ है, वही अन्यत्र है', 'जो अन्यत्र है, वही यहाँ है,' 'ज[ो] यह इस पुरुषमें है और जो आदित्यमें है, वह एक ही है,' 'तब उसने अपने हीको जाना कि मैं ब्रह्म हूँ', 'वह यह ब्रह्म न कारण है, न कार्य है, 'न इसमें कोई विजातीय द्रव्य है और न इसके बाहर कुछ है,' 'य[ह] आत्मा ही ब्रह्म है,' 'वह यह महान् अजन्मा आत्मा जरा, मरण, मृत्यु और भयसे रहित ब्रह्म ही है,' इत्यादि ब्रह्मको आत्मस्वरूपसे स्वीका[र] करानेवाले और भी बहुत-से मन्त्र ध्यान में रखने योग्य हैं । इनके सिवा 'य[ह] तेरा अन्तर्यामी अमर आत्मा है,' 'ज[ो] मनसे मनन नहीं किया जाता बल्कि

मतम् । तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते' (के० उ० १ । ५) 'तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि' (छा० उ० ६ । ८ । १६) इत्येवमादीनि ।

जिसके कारण मनका मनन किया हुआ बतलाते हैं, तू उसीको ब्रह्म जान, ये लोग जिसकी उपासना करते हैं, वह ब्रह्म नहीं है,' 'वह सत्य है, वही आत्मा है और वही तू है' इत्यादि अन्य वेदान्तवाक्य भी ईश्वरका आत्मभावसे ग्रहण और बोध कराते हैं ।

ननु प्रतीकदर्शनमिदं विष्णुप्रतिमान्यायेन भविष्यति ।

पू०—प्रतिमामें विष्णुदृष्टि करनेके समान यह प्रतीक-दर्शन ही होगा ।

तदयुक्तम्, गौणत्वप्रसङ्गात्, वाक्यवैरूप्याच्च । यत्र हि प्रतीकदृष्टिरभिप्रेयते सकृदेव तत्र वचनं भवति । यथा—'मनो ब्रह्म, (छा० उ० ३ । १८ । १) 'आदित्यो ब्रह्म' (छा० उ० ३ । १९ । १) इति । इह पुनः 'त्वमहमस्मि अहं वै त्वमसि' इत्याह । अतः प्रतीकश्रुतिवैरूप्यादभेदप्रतिपत्तिः । भेददृष्ट्यपवादाच्च । तथा हि—'अथ योऽन्यां देवतामुपास्ते अन्योऽसावन्योऽहमस्मीति न स वेद यथा पशुः' (बृ० उ० १ । ४ । १०) 'मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति' (बृ० उ० ४ । ४ । १९) 'यथोदकं

उ०—ऐसा कहना ठीक नहीं; इससे [परमात्मामें] गौणता आ जायगी और वाक्यका रूप भी बिगड़ जायगा । जहाँ प्रतीक दृष्टि-अभीष्ट होती है, वहाँ केवल एक बार ही कहा जाता है; जैसे—'मन ब्रह्म है,' 'आदित्य ब्रह्म है' इत्यादि । किन्तु यहाँ 'तू मैं हूँ और मैं ही तू है' इस प्रकार [परस्पर अभेद करके] कहा है । अतः प्रतीकश्रुतिसे विरूपता होनेके कारण अभेदकी ही प्राप्ति होती है । इसके सिवा भेददृष्टिकी निन्दा करनेसे भी यही सिद्ध होता है, जैसा कि—जो अन्य देवताकी यह समझकर उपासना करता है कि यह अन्य है और मैं अन्य हूँ, वह नहीं जानता, अतः वह [देवताओंके] पशुके समान है,' 'जो इस लोकमें अनेकवत् देखता है, वह मृत्युसे मृत्यु-

दुर्गे वृष्टं पर्वतेषु विधावति । एवं धर्मान्पृथक्पश्यंस्तानेवानुविधावति' (क० उ० २ । १ । १४) 'द्वितीयाद्वै भयं भवति' (बृ० उ० १ । ४ । २) यदा ह्येवैष एतस्मिन्नुदरमन्तरं कुरुते । अथ तस्य भयं भवति । तत्त्वेव भयं विदुषो मन्वानस्य' (तै० उ० २ । ७) 'सर्वं तं परादाद्योऽन्यत्रात्मनः सर्वं वेद' (बृ० उ० २ । ४ । ६) इत्येवमाद्या भूयसी श्रुतिर्भेददृष्टिमपवदति ।

तथा 'आत्मैवेदं सर्वम्' (छा० उ० ७ । २५ । २) 'आत्मनि विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति,' 'इदं सर्वं यदयमात्मा' (बृ० उ० २ । ४ । ६) 'ब्रह्मैवेदं विश्वम्' (मु० उ० २ । २ । ११) इति श्रुतिः ।

तथा स्मृतिरपि

'यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोह-
मेवं यास्यसि पाण्डव ।
येन भूतान्यशेषेण
द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि ॥'
(गीता ४ । ३५)

क्षेत्रक्षेत्रज्ञेश्वरैकत्वं सर्वोपनिषत् प्रसिद्धं द्रक्ष्यसीत्यर्थः ।

को प्राप्त होता है,' 'जिस प्रका[र] पर्वत-शिखरपर बरसा हुआ ज[ल] पर्वतोंमें (पर्वतोंके निम्न भागोंमें) फैल जाता है, उसी प्रकार आत्म[-]धर्मों (देहधारी जीवों) को विभि[न्न] देखकर उन (उपाधियों) हीक[ा] अनुगमन करता है,' 'दूसरेसे निश्च[य] ही भय होता है,' 'जिस सम[य] यह इस (आत्मा) में थोड़ा-सा भी अन्तर करता है, तभी इसे भय होता है। ऐसा माननेवाले विद्वान्‌[-] को भी वह (भेदज्ञान) भयरूप ही है,' 'जो सबको आत्मासे भिन्न देखता है, उसका सब तिरस्कार कर देते हैं' इत्यादि । इसी प्रकारकी अनेकों श्रुतियाँ भेददृष्टिकी निन्दा करती हैं ।

तथा 'यह सब आत्मा ही है,' 'आत्माको जान लेनेपर यह सब जान लिया जाता है,' 'यह जो कुछ है, सब आत्मा ही है,' 'यह सब ब्रह्म ही है' इत्यादि श्रुतियाँ [अभेदका प्रतिपादन करती हैं]।

स्मृति भी कहती है—'हे पाण्डव ! जिसे जानकर फिर तू इस प्रकार मोहको प्राप्त नहीं होगा और जिसके द्वारा तू सम्पूर्ण भूतोंको अपने आत्मामें और मुझमें भी देखेगा' अर्थात् क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ[-] ईश्वरकी सम्पूर्ण उपनिषदोंमें प्रसिद्ध एकता देखेगा ।

'सर्वभूतेषु येनैकं
भावमव्ययमीक्षते ।
अविभक्तं विभक्तेषु
तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम् ॥'
(गीता १८ । २०)

'जिसके द्वारा सम्पूर्ण भूतोंमें एक अविनाशी भाव देखता है और [उस आत्मतत्त्वको] विभिन्न भूतोंमें अभिन्नरूपसे स्थित जानता है, उस ज्ञानको सात्त्विक जानो ।

इति अद्वैतात्मज्ञानं सम्यग्दर्शनमित्युक्तं भगवतापि । तस्मादात्मन्येवेश्वरे मनो दधीत ।

इस प्रकार भगवान्ने भी अद्वैत-आत्मदर्शन ही सम्यग्दर्शन है, ऐसा कहा है । अतः आत्मस्वरूप ईश्वरमें ही मनको स्थिर करना चाहिये ।

'भूतात्मा चेन्द्रियात्मा च
प्रधानात्मा तथा भवान् ।
आत्मा च परमात्मा च
त्वमेकः पञ्चधा स्थितः ॥'
(विष्णु० ५ । १८ । ५०)

इति च ।

'अथवा बहुनैतेन
किं ज्ञातेन तवार्जुन ।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्न-
मेकांशेन स्थितो जगत ॥'
(गीता १० । ४२)

इति च ।

इसके सिवा 'आप भूतात्मा, इन्द्रियात्मा, प्रधानात्मा, आत्मा और परमात्मा हैं; इस प्रकार आप अकेले ही पाँच प्रकारसे स्थित हैं ।
तथा 'अथवा हे अर्जुन ! इन सबको बहुत जाननेसे तुम्हें क्या प्रयोजन है ? मैं अपने एक अंशसे ही इस सम्पूर्ण जगत्में प्रविष्ट होकर स्थित हूँ ।' इत्यादि [स्मृतियाँ भी यही बतलाती हैं]

अविद्योपाधिपक्षेऽपि प्रमाणवादः समस्ति—
'एक एव महानात्मा
सोऽहङ्कारोऽभिधीयते ।

अविद्यारूप उपाधिके सम्बन्धमें भी यह प्रमाणवाद है—'एक ही महान् आत्मा है, वही अहंकार कहा जाता है और उसे ही तत्त्वज्ञानी-

स जीवः सोऽन्तरात्मेति
गीयते तत्त्वचिन्तकैः ॥

लोग जीव या अन्तरात्मा कहकर वर्णन करते हैं।

तथा विष्णुपुराणे—

‘विभेदजनकेऽज्ञाने
नाशमात्यन्तिकं गते।
आत्मनो ब्रह्मणो भेद-
मसन्तं कः करिष्यति ॥’
(६।७।९६)

‘परात्मनोर्मनुष्येन्द्र
विभागोऽज्ञानकल्पितः।
क्षये तस्यात्मपरयो-
र्विभागोऽभाग एव हि ॥’

इति।

तथा विष्णुपुराणमें कहा है—‘विभेदजनक अज्ञानके आत्यन्तिक नाशको प्राप्त हो जानेपर आत्मा और ब्रह्मका भेद, जो सर्वथा असत्य है, कौन करेगा ?’

‘हे राजन् ! आत्मा और परमात्माका विभाग अज्ञानकल्पित ही है। उस (अज्ञान) के नष्ट हो जानेपर जीव और ब्रह्मका विभाग अभागरूप ही है।’

विष्णुधर्मे—

‘यथैकस्मिन् घटाकाशे
रजोधूमादिभिर्युते।
नान्ये मलिनतां यान्ति
दूरस्थाः कुत्रचित् क्वचित् ॥’
‘तथा द्वन्द्वैरनेकैस्तु
जीवे च मलिने कृते।
एकस्मिन्नापरे जीवा
मलिनाः सन्ति कुत्रचित् ॥’

इति।

विष्णुधर्ममें कहा है—‘जिस प्रकार एक घटाकाशके धूलि या धुएँसे व्याप्त होनेपर उससे दूरवर्ती अन्य घटाकाश कहीं किसी समय मलिन नहीं होते, उसी प्रकार अनेकों द्वन्द्वोंसे एक जीवके मलिन हो जानेपर अन्य जीव कभी मलिन नहीं हो सकते।’

ब्रह्मयाज्ञवल्क्ये—

‘आकाशमेकं हि यथा
घटादिषु पृथग्भवेत्।
तथात्मैकोऽप्यनेकेषु
जलाधारेष्विवांशुमान् ॥’

ब्रह्म याज्ञवल्क्यमें कहा है—‘जिस प्रकार एक ही आकाश घट आदि उपाधियोंमें पृथक्-पृथक् प्रतीत होता है, उसी प्रकार जलके पात्रोंमें प्रतिबिम्बित सूर्यके समान एक ही आत्मा अनेक उपाधियोंमें अनेक-सा जान पड़ता है ॥’

'क्षरात्मानावीशते देव एकः' इति श्वेताश्वतरे* । छान्दोग्ये 'स एकधा भवति' (७ । २६ । २) इत्यादि । 'स तत्र पर्येति' 'स वा एष एतेन दैवेन चक्षुषा मनसैतान् कामान् पश्यन् रमते' 'परोऽविकृत एवात्मा स्वात्मायं जीवः' इति श्रुतेः । 'स एष इह प्रविष्टः' इति बृहदारण्यकश्रुतिः । 'आत्मेत्येवोपासीत' 'तदेतद्ब्रह्मापूर्वम्' (बृ० उ० २ । ५ । १९) 'नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टा नान्योऽतोऽस्ति विज्ञाता (बृ० उ० ३ । ७ । २३) 'स वा एष महानज आत्मा योऽयं विज्ञानमयः' (बृ० उ० ४ । ४ । २२) 'अथ योऽन्यां देवतामुपास्ते' (बृ० उ० १ । ४। १०) 'ऐतदात्म्यमिदꣳसर्वम्' (छा० उ० ६ । ८ । ७) इत्यादि ।

'निश्चरन्ति यथा लोह-

पिण्डात्तप्तात्स्फुलिङ्गकाः ।

श्वेताश्वतरमें कहा है—'क्षर (जडवर्ग) और आत्मा (चेतन) इन दोनोंका एक ही देव शासन करता है।' छान्दोग्योपनिषद्का कथन है—'वह एक ही प्रकार है' इत्यादि । श्रुति कहती है—'वह वहाँ सब ओर व्याप्त है', 'वह इन दिव्य नेत्रों-से मनहीके द्वारा इन भोगोंको देखता हुआ रमण करता है', 'अविकारी परमात्मा ही यह अपना आत्मारूप जीव है' तथा 'वही यह इसमें अनु-प्रविष्ट है' ऐसी बृहदारण्यक श्रुति भी है । इसके सिवा 'वह आत्मा है-इस प्रकार ही उपासना करे' 'वह यह ब्रह्म अपूर्व है' '[इस आत्माके सिवा] कोई अन्य द्रष्टा या अन्य विज्ञाता नहीं है', 'यह जो विज्ञानमय है, वही महान् अज आत्मा है' 'तथा जो अन्य देवताकी उपासना करता है', 'यह सब इसीका रूप है' इत्यादि और श्रुतियाँ भी हैं—

योगी याज्ञवल्क्यका वचन है—

'जिस प्रकार तपाये हुए लोहेसे

* हमें श्वेताश्वतर उपनिषद्में यह श्रुति नहीं मिली; इसी आशयकी एक और श्रुति मिलती है, जिसका पाठ इस प्रकार है—'विद्याविद्ये ईशते यस्तु सोऽन्यः' (श्वे० उ० ५ । १)

सकाशादात्मनस्तद्वत्
प्रभवन्ति जगन्ति हि ॥
इति योगियाज्ञवल्क्ये ।

'अजः शरीरग्रहणात्
स जात इति कीर्त्यते ।'
इति ब्राह्मे ।

'सर्पवद्रज्जुखण्डस्तु
निशायां वेश्ममध्यगः ।
एको हि चन्द्रो द्वौ व्योम्नि
तिमिराहतचक्षुषः ॥'
'आभाति परमात्मा च
सर्वोपाधिषु संस्थितः ।
नित्योदितः स्वयंज्योतिः
सर्वगः पुरुषः परः ॥
अहङ्काराविवेकेन
कर्ताहमिति मन्यते ।'
इति ।

'एवमेवायं पुरुषः प्राज्ञेनात्मना । संपरिष्वक्तः' (बृ० उ० ४ । ३ । २१) 'सता सोम्य तदा सम्पन्नो भवति' (छा० उ० ६ । ८ । १) इति ।

एवं—

'स्वमायया स्वमात्मानं
मोहयन् द्वैतमायया ।
गुणाहितं स्वमात्मानं
लभते च स्वयं हरिः ॥'

चिनगारियाँ निकलती हैं, उसी प्रकार आत्मासे अनेकों जगत् प्रकट होते हैं ।'

ब्रह्मपुराणमें कहा है—'वह अजन्मा ही शरीर ग्रहण करनेके कारण जात (जन्मा हुआ) कहा जाता है ।'

[इसके सिवा] 'जिस प्रकार रात्रिके समय घरमें पड़ा हुआ रस्सीका टुकड़ा सर्पके समान प्रतीत होता है यथा तिमिररोगसे पीड़ित नेत्रोंवालेको आकाशमें एक ही चन्द्रमा दो-जैसा जान पड़ता है' 'उसी प्रकार एक ही नित्योदित स्वयं ज्योति सर्वगामी परम पुरुष परमात्मा समस्त उपाधियोंमें स्थित होकर भास रहा है । वह अहंकाररूप अविवेकके कारण ही 'मैं कर्त्ता हूँ' ऐसा मानता है ।'

तथा 'इसी प्रकार यह पुरुष प्राज्ञात्माके साथ मिलकर' और 'हे सोम्य ! उस समय वह सत्‌से युक्त हो जाता है' इत्यादि ।

एवं 'श्रीहरि अपनी मायासे अपनेको मोहित कर द्वैतरूप मायाके कारण अपनेको गुणयुक्त अनुभव करते हैं ।'

तथा 'क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि' (गीता १३ । २) 'उत्क्रामन्तं स्थितं वापि' (गीता १५ । १०) 'अज्ञानेनावृतं ज्ञानम्' (गीता ५ । १५) 'अव्यक्तादिविशेषान्तमविद्यालक्षणं स्मृतम्' 'आसीदिदं तमोभूतम्' (मनु० १ । ५) 'वाचारम्भणम् (छा० उ० ६ । १ । ४) 'यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितर इतरं पश्यति । यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत् तत् केन कं पश्येत् तत् केन कं जिघ्रेत्' (बृ० उ० २ । ४ । १४)

'यस्मिन् सर्वाणि भूतान्या-
त्मैवाभूद् विजानतः ।
तत्र को मोहः कः शोक
एकत्वमनुपश्यतः ॥'
(ई० उ० ७)

'यत्र नान्यत् पश्यति नान्यद् विजानाति' (छा० उ० ७ । २४ । १) 'भेदोऽयमज्ञाननिबन्धनः' नेह नानास्ति किञ्चन' (क० उ० २ । १ । ११) 'मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति' (क० उ० २ । १ । १०) 'विश्वतश्चक्षुः' (श्वे० उ० ३ । ३) 'यो योनिमधितिष्ठत्येको विश्वानि रूपाणि योनीश्च सर्वाः'

तथा 'क्षेत्रज्ञ भी मुझे ही जान' 'ऊपरको जाते अथवा स्थित होते हुए' 'ज्ञान अज्ञानसे ढका हुआ है' 'अव्यक्तसे विशेष (पञ्चभूत) पर्यन्त सब अविद्यारूप ही माना गया है' 'यह सब अन्धकारमय था' '[विकार] वाणीका विलासमात्र है' 'जहाँ द्वैतके समान होता है, वहीं अन्य अन्यको देखता है, वहाँ इसके लिये सब आत्मस्वरूप ही हो गया, वहाँ किससे किसको देखे और किससे किसको सूँघे ? 'जिस अवस्थामें सब भूत आत्मस्वरूप ही हो जाते हैं, वहाँ एकत्व देखनेवाले उस ज्ञानीको क्या मोह और क्या शोक हो सकता है ?' जहाँ अन्य कुछ नहीं देखता और न अन्य कुछ जानता ही है' 'यह भेद अज्ञानके ही कारण है' 'यहाँ नाना कुछ भी नहीं है' 'इस लोकमें जो अनेकवत् देखता है, वह मृत्युसे मृत्युको प्राप्त होता है, 'सब ओर चक्षुवाला है' 'जो योनि (मूल) में स्थित है, वह एक ही सम्पूर्ण रूप और योनियाँ है' ।

'अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां
बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः ।
अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते
जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः ॥'
(श्वे० उ० ४ । ५)

'देवात्मशक्तिं विदधे' 'न तु तद्द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद् विभक्तं यत् पश्येत्' (बृ० उ० ४ । ३ । २३) 'एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुः' (श्वे० उ० ३ । २) इत्यादि ।

'मनोदृश्यमिदं द्वैतं
यत्किञ्चित् सचराचरम् ।
मनसो ह्यमनीभावे
द्वैतं नैवोपलभ्यते ॥'
(३ । ३१)

'प्रपञ्चो यदि विद्येत
निवर्तेत न संशयः ।
मायामात्रमिदं द्वैत-
मद्वैतं परमार्थतः ॥'
(१ । १७)

'यथा स्वप्ने द्वयाभासं
स्पन्दते मायया मनः ।
तथा जाग्रद्द्वयाभासं
स्पन्दते मायया मनः ॥'
(३ । २९)

इत्यादि गौडपादे ।

'अपने ही समान बहुत-सी प्रजा उत्पन्न करनेवाली एक लोहित, श्वेत और कृष्ण वर्ण अजाको सेवन करनेवाला एक अज उसका अनुगमन करता है और दूसरा उसे भोगकर त्याग देता है'* 'देवात्मशक्तिको धारण किया' '[सुषुप्तिमें] उससे दूसरा (बुद्धिरूप प्रमाता) अन्य (इन्द्रियरूप करण) अथवा पृथक् (विषय) कोई नहीं है, जिसे वह देखे' 'एक ही रुद्र था, दूसरा कोई नहीं' इत्यादि ।

तथा गौडपादकारिकामें भी कहा है—

'यह जो कुछ चराचर द्वैत है, सब मनका ही दृश्य है, मनका अमनीभाव हो जानेपर द्वैत उपलब्ध ही नहीं होता ।' 'इसमें सन्देह नहीं, प्रपञ्च यदि होता तो अवश्य निवृत्त हो सकता था; किन्तु द्वैत केवल मायामात्र है, परमार्थतः तो अद्वैत ही है ।' 'जिस प्रकार स्वप्नमें मन मायासे ही द्वैतका स्फुरण करता है, इसी प्रकार मायावश मन ही जागृतिमें द्वैतका स्फुरण करता है' इत्यादि ।

* यहाँ अजा (बकरी) के रूपकसे प्रकृति और पुरुषादिका वर्णन किया है। अजन्मा होनेके कारण मूल प्रकृतिका नाम 'अजा' है; रज, सत्त्व और तम यही क्रमशः उसके लोहित, शुक्ल और कृष्ण वर्ण हैं । बद्ध पुरुष ही उसे सेवन करनेवाला अज (बकरा) है और मुक्त पुरुष उसे भोगकर त्याग देनेवाला अज है ।

'तर्केणापि प्रपञ्चस्य
मनोमात्रत्वमिष्यताम् ।
दृश्यत्वात् सर्वभूतानां
स्वप्नादिविषयो यथा ॥'

'द्वितीयाद् वै भयं भवति ।' (बृ० उ० १ । ४ । २) 'ज्ञाते त्वात्मनि नास्त्येतत् कार्यकारणतात्मनः ।' 'एको देवः सर्वभूतेषु गूढः' (श्वे० ६ । ११) 'असङ्गो ह्ययं पुरुषः' (बृ० उ० ४ । ३ । १५) इति च ।

'विस्तारः सर्वभूतस्य
विष्णोः सर्वमिदं जगत् ।
द्रष्टव्यमात्मवत्तस्मा-
दभेदेन विचक्षणैः ॥'
(१ । १७ । ८४)

सर्वत्रदैत्याः समतामुपेत
समत्वमाराधनमच्युतस्य ॥'
(१ । १७ । ९०)

'सर्वभूतात्मके तात
जगन्नाथे जगन्मये ।
परमात्मनि गोविन्दे
मित्रामित्रकथा कुतः ॥'
(१ । १८ । ३७)

इति विष्णुपुराणे ।

'तत्त्वमसि' (छा० उ० ६ । ८) 'अहं ब्रह्मास्मि' (बृ० उ० १ । ४ । १०) 'इदं सर्वं यदयमात्मा' (बृ० उ० २ । ४ । ६) 'अयमात्मा ब्रह्म' (बृ० उ० २ । ५ । १९) 'तरति शोकमात्मवित्' (छा० उ० ७ । १ । ३) 'तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः' (ई० उ० ७)

तथा 'स्वप्नादि विषयोंके समान सम्पूर्ण भूत दृश्यरूप हैं; इसलिये तर्कसे भी प्रपञ्चकी मनोमात्रता ही जानो ।' 'दूसरेसे निश्चय ही भय होता है' 'आत्माको जान लेनेपर यह आत्माकी कार्य-कारणता नहीं रहती' 'एक ही देव सम्पूर्ण भूतोंमें छिपा हुआ है' 'यह पुरुष असङ्ग ही है' आदि ।

विष्णुपुराणमें भी कहा है—
'यह सम्पूर्ण जगत् सर्वभूत विष्णुका ही विस्तार है । अतः विचक्षण पुरुषोंको इसे आत्माके समान अभेदरूपसे देखना चाहिये ।...... हे दैत्यगण ! तुम सर्वत्र समताको प्राप्त हो, क्योंकि समता ही श्रीअच्युतकी आराधना है' 'हे तात ! सर्वभूतमय विश्वरूप परमात्मा जगदीश्वर श्रीगोविन्दमें शत्रु-मित्रकी बात कहाँसे हो सकती है ?'

तथा 'तू वह है' 'मैं ब्रह्म हूँ' 'यह जो कुछ है, सब आत्मा है' 'यह आत्मा ब्रह्म है' 'आत्मज्ञानी शोकको पार कर जाता है' एवं 'एकत्व देखनेवालेको क्या मोह और क्या शोक ?'

इत्यादि श्रुतिस्मृतीतिहासपुराणलौकिकेभ्यश्च ।

इत्यादि श्रुति, स्मृति, इतिहास और लोकोक्तियोंसे भी [यही बात सिद्ध होती है]।

सिद्धेऽर्थेऽपि वेदस्य प्रामाण्यमेष्टव्यम्—

'स्वपक्षसाधनैरकार्य-
मर्थजातमाह चेत् ।
तथा परोऽपि वेद चे-
च्छ्रुतिः परात्मदङ् न किम् ॥'

इत्यभियुक्तैरुक्तम् ।

सिद्ध अर्थ (ब्रह्म) में भी वेदका प्रमाण मानना चाहिये; यथा—

'यदि स्वपक्ष और साधनोंसे [प्रभाकरमतावलम्बी] अर्थसमूहको अकार्य (क्रियाके अयोग्य) बतलाता है तो दूसरे लोग भी यदि इसी तरह समझें, तो क्या श्रुति परमात्माका ज्ञान करानेवाली नहीं सिद्ध होती ?' ऐसा श्रेष्ठ पुरुषोंका कथन है ।

अन्यान्वितस्वार्थे पदानां सामर्थ्यं न कार्यान्वितस्वार्थे, तथा सत्यर्थवादानामनन्वयप्रसङ्गात् अन्वयबुद्धेः स्तुतित्वात् । न हि भवति 'वायव्यं श्वेतमालभेत भूतिकामो वायुर्वै क्षेपिष्ठा देवता' इति । रागस्यैव प्रवर्तकत्वम्, न नियोगस्य ।

पदोंका सामर्थ्य अन्यान्वितस्वार्थ (अन्य पदसे सम्बन्ध रखनेवाले अपने अर्थ) में है*, कार्यान्वितस्वार्थ (कार्यसे सम्बन्ध रखनेवाले अपने अर्थ) में नहीं† । यदि ऐसा हो तो अर्थवादों (प्रशंसावाक्यों) का अन्वय नहीं हो सकता‡, क्योंकि उनकी अन्वय-बुद्धि स्तुतिरूप ही है । जैसे—'धनकी इच्छावाला वायुसम्बन्धी श्वेत पशुका आलभन करे, वायु निश्चय ही अत्यन्त शीघ्र गतिसे चलनेवाला देवता है' इस वाक्यमें [कार्यताका बोध] नहीं होता । इस प्रकार [स्वर्गादिविषयक] राग ही [यागादिमें] प्रवर्तक होता है, कार्य नहीं ।

* जैसे 'गौ लाओ' इस वाक्यमें 'गौ' पदका 'लाना' क्रियासे सम्बन्ध पशुविशेषमें अभिप्राय है ।

† जैसे 'गोप' शब्दका अभिप्राय 'गोपालन' कार्यान्वित व्यक्तिमें नहीं बल्कि जातिविशेषमें है ।

‡ क्योंकि उनमें कार्यताबोधक लिङ्-लिट् आदिका अभाव होता है ।

तथा च श्रुतिः—अथो खल्वाहुः काममय एवायं पुरुष इति स यथाकामो भवति तत्क्रतुर्भवति यत्क्रतुर्भवति तत् कर्म कुरुते यत् कर्म तदभिसम्पद्यते।'

तथा च स्मृतिरपि—

'अकामस्य क्रिया काचिद्
दृश्यते नेह कस्यचित्।
यद् यद्धि कुरुते कर्म
तत्तत् कामस्य चेष्टितम्॥'

इति। 'काम एष क्रोध एषः' (गीता ३। ३७) इति। अन्यपराणामपि मन्त्रार्थवादानां प्रामाण्यमङ्गीकर्तव्यम्। तेषामप्रामाण्यकथनेन उरगत्वं गतवान्नहुषः। तत्कथम्?—

ऋषयस्तु परिश्रान्ता
वाह्यमाना दुरात्मना।
देवर्षयो महाभागा-
स्तथा ब्रह्मर्षयोऽमलाः॥८॥
पप्रच्छुः संशयं ते तु
नहुषं पापचेतसम्।
य इमे ब्रह्मणा प्रोक्ता
मन्त्रा वै प्रोक्षणे गवाम्॥९॥
एते प्रमाणं भवत
उताहो नेति वासव।
नहुषो नेति तानाह
सहसा मूढचेतनः॥१०॥

श्रुति भी कहती है—'कहा भी है—यह पुरुष कामनामय है। यह जैसी कामनावाला होता है, वैसा ही संकल्प करता है, जैसा संकल्प करता है वैसा ही कर्म करता है और जैसा कर्म करता है, उसीको प्राप्त हो जाता है।'

तथा स्मृति भी कहती है—'इस लोकमें बिना कामनाके किसीका कर्म नहीं देखा जाता; जो-जो भी कर्म किया जाता है, सब कामनाकी ही चेष्टा होती है।' तथा 'यह काम है, क्रोध है; इत्यादि। अतः अन्य विषयसम्बन्धी मन्त्र और अर्थवादोंकी भी प्रामाणिकता स्वीकार करनी चाहिये, क्योंकि उन्हें अप्रामाणिक कहनेसे नहुष सर्पयोनिको प्राप्त हुआ था। सो किस प्रकार? [सुनिये—]

दुरात्मा नहुषद्वारा शिबिका उठानेमें नियुक्त किये हुए निर्मल स्वभाव महाभाग ऋषि, ब्रह्मर्षि और देवर्षियोंने थक जानेपर पापी नहुषसे यह शङ्का की—'हे इन्द्र! वेदोंमें गौओंका प्रोक्षण करनेके लिये जो मन्त्र कहे हैं, आप उन्हें प्रामाणिक मानते हैं या नहीं?' मूढ़बुद्धि नहुष उनसे सहसा कह उठा नहीं।

ऋषय ऊचुः—

अधर्मे सम्प्रवृत्तस्त्वं
धर्मं च विजिघृक्षसि ।
प्रमाणमेतदस्माकं
पूर्वं प्रोक्तं महर्षिभिः ॥ ११ ॥

अगस्त्य उवाच—

ततो विवदमानः सन्
ऋषिभिः सह पार्थिवः ।
अथ मामस्पृशन्मूर्ध्नि
पादेनाधर्मपीडितः ॥ १२ ॥
तेनाभूद्धतचेताः स
निःश्रीकश्च शचीपते ।
ततस्तमहमुद्विग्न-
मवोचं भयपीडितम् ॥ १३ ॥
यस्मात् पूर्वैः कृतं मार्गं
महर्षिभिरनुष्ठितम् ।
अदुष्टं दूषयसि वै
यच्च मूर्ध्न्यस्पृशः पदा ॥ १४ ॥
यच्चापि त्वमृषीन्मूढ
ब्रह्मकल्पान् दुरासदान् ।
वाहान् कृत्वा वाहयसि
तेन स्वर्गाद्धतप्रभः ॥ १५ ॥
त्वं स्वपापपरिभ्रष्टः
क्षीणपुण्यो महीपते ।
दशवर्षसहस्राणि
सर्परूपधरो महीम् ॥ १६ ॥
विचरिष्यसि तीर्णश्च
पुनः स्वर्गमवाप्स्यसि ॥ १७ ॥

इति श्रीमहाभारते (उद्योग० १७)

ऋषियोंने कहा—तू अधर्ममें प्रवृत्त हो रहा है और धर्मको त्यागना चाहता है; पूर्वकालमें महर्षियोंने हमें वे मन्त्र प्रामाणिक बतलाये हैं ।

अगस्त्यजी बोले—तब राजा नहुषने ऋषियोंके साथ विवाद करते हुए अधर्मातुर हो मेरे सिरका पाँवसे स्पर्श किया । हे इन्द्र ! इससे वह नष्ट-बुद्धि और श्रीहीन हो गया । उस समय मैंने भयातुर और उद्विग्नचित्त नहुषसे कहा—'रे मूढ़ ! तूने पूर्वकाल-में महर्षियोंद्वारा बनाये और पालन किये निर्दोष मार्गको दूषित किया है, मेरे सिरपर पैर रखा है और जिनका मिलना अत्यन्त कठिन है उन ब्रह्मतुल्य महर्षियोंको वाहक बनाकर अपनी शिबिका वहन करायी है; इसलिये हे राजन् ! इस अपराधके कारण तू अपने पापसे पतित पुण्य-हीन और निस्तेज होकर सर्परूप धारणकर दस सहस्र वर्षतक पृथ्वीपर विचरेगा और फिर शापमुक्त होकर पुनः स्वर्ग प्राप्त करेगा । ऐसा महाभारतमें कहा है ।

अतः श्रद्धेयमात्मज्ञानम्—

'अश्रद्दधानाः पुरुषा
धर्मस्यास्य परंतप ।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते
मृत्युसंसारवर्त्मनि ॥'
(गीता ९ । ३)

इति श्रीभगवद्वचनात् ।

अतः आत्मज्ञानमें श्रद्धा करनी चाहिये । श्रीभगवान्‌का भी कथन है—हे शत्रुदमन ! इस धर्ममें अश्रद्धा करनेवाले पुरुष मुझे न पाकर मृत्युरूप संसार-मार्गमें लौट आते हैं ।'

ऐतरेयके च 'एष पन्था एतत्कर्मैतद्ब्रह्मैतत्सत्यं तस्मान्न प्रमाद्येत्तन्नातीयान्न ह्यत्यायन्पूर्वे येऽत्यायंस्ते पराबभूवुः ।
(ऐ० आ० २ । १ । १)

ऐतरेयक श्रुतिमें भी कहा है—'यही मार्ग है, यही कर्म है, यही ब्रह्म है और यही सत्य है; अतः इससे प्रमाद न करे, इसका त्याग न करे । जिन्होंने पहले इसका त्याग किया था, वे पराभवको प्राप्त हुए ।'

तदुक्तमृषिणा—'प्रजा ह तिस्रो अत्यायमीयुर्न्यन्या अर्कमभितो विविश्रे । बृहद्ध तस्थौ भुवनेष्वन्तः पवमानो हरित आविवेश' (ऐ० आ० २ । १ । ४) इति ।

वेदमन्त्र भी कहता है—'तीन प्रसिद्ध प्रजाओंने धर्मका त्याग किया था, अन्य प्रजा सब प्रकार अर्क (अर्चनीय अग्नि) की उपासनामें तत्पर हुई । कुछ सकल भुवनोंमें महान् सूर्यकी उपासना करने लगी । जगत्‌को पवित्र करनेवाला वायु सब दिशाओंमें प्रविष्ट हुआ [कुछ उसकी उपासना करने लगी] ।'

'प्रजा ह तिस्रो अत्यायमीयुरिति या वै ता इमाः प्रजाः तिस्रोऽत्यायमीयुस्तानीमानि वयांसि वङ्गा वगधाश्चेरपादाः' (ऐ० आ० २ । १ । ५) इति श्रुतम् । वङ्गा वनगाः वृक्षाः । वगधाः ओषधयश्च । इरपादा उरःपादाः सर्पादयः ।

'तीन प्रसिद्ध प्रजाओंने धर्मत्याग किया । जिन तीन प्रजाओंने धर्मका त्याग किया था, वे पक्षी, वङ्ग, वगध और इरपाद हैं' ऐसी श्रुति है । 'वङ्ग' वनके वृक्ष हैं, 'वगध' ओषधियाँ हैं और 'इरपाद' उर (हृदय) ही जिनके पाद हैं, वे सर्पादि हैं ।

तथा च ईशावास्ये अविद्वन्निन्दार्थो मन्त्रः—

'असुर्या नाम ते लोका
अन्धेन तमसावृताः ।
ताँस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति
ये के चात्महनो जनाः ॥'

इति (ई० उ० ३) ।

'असन्नेव स भवति असद्ब्रह्मेति वेद चेत्' इति तैत्तिरीये (२ । ६) । तथा शकुन्तलोपाख्याने—

'योऽन्यथा सन्तमात्मान-
मन्यथा प्रतिपद्यते ।
किं तेन न कृतं पापं
चोरेणात्मापहारिणा ॥'*

इत्यलमतिप्रसङ्गेन ।

सहस्रनामजपस्य अनुरूपं मानसस्नानमुच्यते—

'यस्मिन् देवाश्च वेदाश्च
पवित्रं कृत्स्नमेकताम् ।
व्रजेत्तन्मानसं तीर्थं
तत्र स्नात्वामृतो भवेत् ॥
'ज्ञानह्रदे ध्यानजले
रागद्वेषमलापहे ।
यः स्नाति मानसे तीर्थे
स याति परमां गतिम् ॥

तथा ईशावास्योपनिषद्में अविद्वान्की निन्दाविषयक यह मन्त्र है—

वे असुर्य 'नामक लोक घोर अन्धकारसे व्याप्त हैं; जो कोई आत्मघाती पुरुष होते हैं, वे मरनेपर उन्हींको प्राप्त होते हैं ।'

तैत्तिरीय उपनिषद्में कहा है—'ब्रह्म असत् है—यदि ऐसा जानता है तो वह (जाननेवाला) असत् ही हो जाता है' तथा शकुन्तलोपाख्यानका वचन है—'जो अन्य प्रकारसे स्थित अपने आत्माको अन्य प्रकार जानता है, उस आत्मघाती चोरने कौन पाप नहीं किया ?' अस्तु ! अब अधिक प्रसङ्ग बढ़ानेकी आवश्यकता नहीं ।

'अब सहस्रनाम-जपके अनुरूप मानस-स्नानका वर्णन किया जाता है—

'जिसमें देवता और वेद पूर्ण एकताको प्राप्त हो गये हैं, उस परम पवित्र मानस-तीर्थको जाय और उसमें स्नान कर अमर हो जाय । 'जो मनुष्य मानस-तीर्थमें ज्ञान-सरोवरके भीतर रागद्वेषरूप मलको दूर करनेवाले ध्यानरूप जलमें स्नान करता है, वह परमगति प्राप्त करता है । 'सरस्वती

* मनुस्मृति अध्याय ४ श्लोक २५५ भी इसी प्रकार है ।

'सरस्वती रजोरूपा
तमोरूपा कलिन्दजा ।
सत्त्वरूपा च गङ्गा च
न यान्ति ब्रह्म निर्गुणम् ॥'
'आत्मा नदी संयमतोयपूर्णा
सत्यह्रदा शीलतटा दयोर्मिः ।
तत्रावगाहं कुरु पाण्डुपुत्र
न वारिणा शुध्यति चान्तरात्मा ॥'

इति महाभारते ।

'मानसं स्नानं विष्णुचिन्तनम्' इति स्मृतौ ।

'जप्येनैव तु संसिध्येद्
ब्राह्मणो नात्र संशयः ।
कुर्यादन्यन्न वा कुर्या-
न्मैत्रो ब्राह्मण उच्यते ॥'

इति मानवं वचनम् (मनु० २ । ८७)

'जपस्तु सर्वधर्मेभ्यः
परमो धर्म उच्यते ।
अहिंसया च भूतानां
जपयज्ञः प्रवर्तते ॥

इति ।

'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि ।' इति श्रीगीतासु (१० । २५)

'अपवित्रः पवित्रो वा
सर्वावस्थां गतोऽपि वा ।
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं
स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥'

इत्यादि । (पद्म० ९ । ८० । १२) ॥ १० ॥

रजोमयी है; यमुना तमोमयी है और गङ्गाजी सत्त्वस्वरूपा हैं; अतः वे निर्गुण ब्रह्मतक नहीं जा सकतीं ।' 'आत्मा नदी है, वह संयमरूप जलसे भरी हुई है, सत्य उसका ह्रद (जलाशय) है, शील तट है और दया तरङ्ग है । हे पाण्डुपुत्र ! उसमें स्नान करो, जलसे अन्तःकरण शुद्ध नहीं हो सकता ।' ऐसा महाभारतमें कहा है ।

स्मृतिका कथन है—'श्रीविष्णु-भगवान्का चिंतन मानसिक स्नान है ।'

मनुजी कहते हैं—'इसमें सन्देह नहीं ब्राह्मण कोई और कर्म करे या न करे, केवल जपसे ही शुद्ध हो जाता है । अतः ब्राह्मण 'मैत्र' (सबका मित्र) कहा जाता है ।'

[इसके सिवा] 'जप सम्पूर्ण धर्मोंमें श्रेष्ठ कहा गया है, क्योंकि जप-यज्ञ प्राणियोंकी हिंसाके बिना सम्पन्न हो जाता है ।' इत्यादि तथा गीताके—यज्ञोंमें मैं जपयज्ञ हूँ' आदि एवं 'अपवित्र हो अथवा पवित्र, सभी अवस्थाओंमें स्थित हुआ भी जो श्री-कमलनयन भगवान्का स्मरण करता है, वह बाहर-भीतरसे पवित्र हो जाता है' इत्यादि [वचन भी जप-यज्ञका महत्त्व बतलाते हैं] ॥ १० ॥

यदेकं दैवतं प्रस्तुतं तस्योपलक्षणमुच्यते—

जिस एक देवकी प्रस्तावना की गयी है, उसीका लक्षण बतलाते हैं—

यतः सर्वाणि भूतानि भवन्त्यादियुगागमे ।
यस्मिंश्च प्रलयं यान्ति पुनरेव युगक्षये ॥ ११ ॥

यतः, सर्वाणि, भूतानि, भवन्ति, आदियुगागमे ।
यस्मिन्, च, प्रलयम्, यान्ति, पुनः, एव, युगक्षये ॥

यतः यस्मात् सर्वाणि भूतानि भवन्ति उद्भवन्ति आदियुगागमे कल्पादौ ।

यस्मिन् च प्रलयम् विलयं यान्ति विनाशं गच्छन्ति पुनः भूयः, एव इत्यवधारणार्थः; नान्यस्मिन्नित्यर्थः । युगक्षये महाप्रलये ।

चकारान्मध्येऽपि यस्मिंस्तिष्ठन्ति । 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति' (तै० उ० ३ । १) इति श्रुतेः ॥ ११ ॥

आदियुग (सत्ययुग) के लगनेपर कल्पके आदिमें जिससे सम्पूर्ण भूत उत्पन्न होते हैं ।

और फिर युगका क्षय-महाप्रलय होनेपर जिसमें विलीन अर्थात् नाशको प्राप्त होते हैं । 'एव' का प्रयोग अवधारणके लिये हुआ है, तात्पर्य यह कि [जिससे सब भूत उत्पन्न होते हैं, उसीमें लीन होते हैं] दूसरेमें नहीं ।

'च' कारका भाव यह है कि मध्यमें भी जिसमें स्थित रहते हैं, जैसा कि श्रुति कहती है—'जिससे ये भूत उत्पन्न होते हैं, जिससे उत्पन्न होनेपर जीवित रहते हैं और फिर मरकर जिसमें प्रवेश करते हैं' ॥ ११ ॥

तस्य लोकप्रधानस्य जगन्नाथस्य भूपते ।
विष्णोर्नामसहस्रं मे शृणु पापभयापहम् ॥ १२ ॥

तस्य, लोकप्रधानस्य, जगन्नाथस्य, भूपते।
विष्णोः, नामसहस्रम्, मे, शृणु, पापभयापहम् ॥

तस्य एवंलक्षणलक्षितस्यैकदैवतस्य लोकप्रधानस्य लोकनहेतुभिः विद्यास्थानैः प्रतिपाद्यमानस्य जगन्नाथस्य जगतां नाथः स्वामी मायाशबलः परमात्मा निर्लेपश्च तस्य भूपते महीपाल, विष्णोः व्यापनशीलस्य नामसहस्रम् नाम्नां सहस्रम् अशुभकर्मकृतं पापं संसारलक्षणभयं चापहन्तीति पापभयापहम् त्वं मे मत्तः शृणु एकाग्रमना भूत्वावधारयेत्यर्थः।

'एकस्यैव समस्तस्य
ब्रह्मणो द्विजसत्तम।
नाम्नां बहुत्वं लोकाना-
मुपकारकरं शृणु ॥'
'निमित्तशक्तयो नाम्नां
भेदिन्यस्तदुदीरणात्।
विभिन्नान्येव साध्यन्ते
फलानि द्विजसत्तम ॥'
'यच्छक्ति नाम यत्तस्य
तत्तस्मिन्नेव वस्तुनि।
साधकं पुरुषव्याघ्र
सौम्ये क्रूरेषु वस्तुषु ॥'

इति विष्णुधर्मवचनाद्यद्यपि परस्य ब्रह्मणः षष्ठीगुणक्रियाजातिरूढीनां शब्दप्रवृत्तिहेतुभूतानां

हे पृथ्वीपते! ऐसे लक्षणोंसे बतलाये हुए उस एक देवके, जो लोकप्रधान—लोकन (प्रतीति) के कारणरूप विद्यास्थानोंसे प्रतिपादित, जगन्नाथ—संसारके स्वामी अर्थात् मायाशबल और निर्लेप परमात्मा तथा विष्णु—व्यापनशील हैं उनके अशुभकर्मजनित पाप और संसाररूप भयको दूर करनेवाले सहस्र—हजार नाम मुझसे सुनो; अर्थात् मनको एकाग्र करके ग्रहण करो।

'हे द्विजश्रेष्ठ! एक ही समस्त ब्रह्मके नामोंका लोकोंका उपकार करनेवाला विस्तार सुनो।' 'हे द्विजराज! उन नामोंके अलग-अलग भेद करनेमें उनकी निमित्त-शक्तियाँ ही कारण हैं, और इसीलिये उनके उच्चारणसे फल भी भिन्न-भिन्न ही सिद्ध होते हैं।' 'हे पुरुषसिंह! परमात्माका जो नाम जिस शक्तिवाला है, वह उसी सौम्य या क्रूर वस्तुका साधक है।' इन विष्णुधर्मोत्तरपुराणके वचनोंसे, यद्यपि परब्रह्ममें शब्दप्रवृत्तिकी हेतुभूत षष्ठी, गुण, क्रिया, जाति और रूढि—इन निमित्त-शक्तियोंका होना असम्भव है;

निमित्तशक्तीनां चासम्भवः, तथापि सगुणे ब्रह्मणि सविकारे च सर्वात्मकत्वात्तेषां शब्द-प्रवृत्तिहेतूनां सम्भवात् सर्वे शब्दाः परस्मिन् पुंसि वर्तन्ते ॥

तथापि सर्वात्मक होनेके कारण सगुण और सविकार ब्रह्ममें उन शब्द-प्रवृत्तिके हेतुओंकी सम्भावना होनेसे सम्पूर्ण शब्द परमपुरुष परमात्मामें लग जाते हैं ॥ १२ ॥

तत्र—

उनमें—

यानि नामानि गौणानि विख्यातानि महात्मनः ।
ऋषिभिः परिगीतानि तानि वक्ष्यामि भूतये ॥ १३ ॥

यानि, नामानि, गौणानि, विख्यातानि, महात्मनः ।
ऋषिभिः, परिगीतानि, तानि, वक्ष्यामि, भूतये ॥

यानि नामानि गौणानि गुण-सम्बधीनि गुणयोगात् प्रवृत्तानि तेषु च यानि विख्यातानि प्रसिद्धानि ऋषिभिः मन्त्रैस्तद्दर्शिभिश्च परिगीतानि परितः समन्ततः परमेश्वराख्यानेषु यत्र तत्र गीतानि महांश्चासवात्मेति महात्मा—

'यच्चाप्नोति यदादत्ते
यच्चात्ति विषयानिह ।
यच्चास्ति सन्तो भाव-
स्तस्मादात्मेति कीर्त्यते ॥
(लिङ्ग० १ । ७० । ९६)

इति वचनादयमेव महानात्मा । तस्याचिन्त्यप्रभावस्य तानि

जो नाम गुण-गौण सम्बन्धी अर्थात् गुणके कारण प्रवृत्त हुए हैं, उनमेंसे जो विख्यात-प्रसिद्ध हैं, और मन्त्र तथा मन्त्रद्रष्टा मुनियोंद्वारा परिगीत अर्थात् सर्वत्र भगवत्कथाओंमें जहाँ-तहाँ गाये गये हैं, उस महात्मा—अचिन्त्यप्रभाव देवके उन समस्त नामोंको पुरुषार्थचतुष्टयके इच्छुकोंकी भूति—पुरुषार्थ-सिद्धिके लिये वर्णन करता हूँ । जो महान् आत्मा है, उसे महात्मा कहते हैं । 'क्योंकि यह पुरुष [सुषुप्तिमें ब्रह्मभावको] प्राप्त हो जाता है, [स्वप्नमें बिना इन्द्रियोंके विषयोंको] ग्रहण करता

वक्ष्यामि भूतये पुरुषार्थचतुष्टयसिद्ध्यै भूतये पुरुषार्थचतुष्टयार्थिनामिति ॥ १३ ॥

है और [जागृतिमें] यहाँ विषयोंको भोगता है तथा निरन्तर वर्तमान रहता है, इसीलिये 'आत्मा' कहलाता है।' इस वाक्यसे यह देव ही महात्मा है ॥ १३ ॥



अथ सहस्रनाम



अत्र नामसहस्रे आदित्यादिशब्दानामर्थान्तरे प्रसिद्धानामादित्याद्यर्थानां तद्विभूतित्वेन तद्भेदात् तस्यैव स्तुतिरिति प्रसिद्धार्थग्रहणेऽपि तत्स्तुतित्वम् ।

भूतात्मा चेन्द्रियात्मा च
प्रधानात्मा तथा भवान् ।
आत्मा च परमात्मा च
त्वमेकः पञ्चधा स्थितः ॥
(विष्णु० ५ । १८ । ५०)

'ज्योतींषि विष्णुर्भुवनानि विष्णुर्वनानि विष्णुर्गिरयो दिशश्च ।
नद्यः समुद्रश्च स एव सर्वं
यदस्ति यन्नास्ति च विप्रवर्य ॥,
(विष्णु० २ । १२ । ३८)

इति विष्णुपुराणे ।

'आदित्यानामहं विष्णुः' (१० । २१) इत्यारभ्य 'अथवा बहुनैतेन

इन सहस्रनामोंमें आये हुए आदित्य आदि शब्दोंके दूसरे अर्थोंमें प्रसिद्ध सूर्यादि अर्थ भी भगवान्‌की ही विभूति होनेके कारण उनसे उनका अभेद है । इसलिये उन शब्दोंका प्रसिद्ध अर्थ ग्रहण करनेसे भी भगवान्‌की ही स्तुति होती है; जैसा कि विष्णुपुराणमें कहा है—'भूतात्मा, इन्द्रियात्मा, प्रधानात्मा, आत्मा और परमात्मा–ये सब आप ही हैं; आप एक ही इन पाँच रूपोंमें स्थित हैं ।' 'नक्षत्रगण विष्णु हैं, भुवन विष्णु हैं तथा वन, पर्वत, नदियाँ और दिशाएँ भी विष्णु ही हैं । हे विप्रवर्य ! जो है और जो नहीं है, वह सब कुछ एक मात्र वे ही हैं ।'

श्री गीताजीमें 'आदित्योंमें मैं विष्णु हूँ' यहाँसे लेकर 'हे अर्जुन ! इन

किं ज्ञातेन तवार्जुन । विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ॥' (१०।४२) इतिपर्यन्तं गीतासु । 'ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम्' (मु० उ० २।२।११) 'पुरुष एवेदं विश्वम्' (मु० उ० २।१।१०) इति श्रुतिश्च।

विष्ण्वादिशब्दानां पुनरुक्तानामपि वृत्तिभेदेनार्थभेदान्न पौनरुक्त्यम् । श्रीपतिर्माधव इत्यादीनां वृत्त्येकत्वेऽपि शब्दभेदान्न पौनरुक्त्यम् । अर्थैकत्वेऽपि न पौनरुक्त्यं दोषाय, नाम्नां सहस्रस्य किमेकं दैवतमिति पृष्टेरेकदैवतविषयत्वात् ।

यत्र पुँल्लिङ्गशब्दप्रयोगस्तत्र विष्णुर्विशेष्यः; यत्र स्त्रीलिङ्गशब्दस्तत्र देवता विशेष्यते यत्र नपुंसकलिङ्गशब्दस्तत्र ब्रह्मेति विशेष्यते ।

'यतः सर्वाणि भूतानि' (वि० स० ११) इत्यारभ्य जगदुत्पत्तिस्थितिलयकारणस्य ब्रह्मण एकदैवतत्वेनाभिहितत्वाददावुभय-

सबके बहुत जाननेसे क्या है ? मैं अपने एक अंशसे इस सम्पूर्ण जगत्‌को व्याप्त करके स्थित हूँ ।' इस वाक्यतक यही बात है । तथा—'यह सम्पूर्ण विश्व परमोत्कृष्ट ब्रह्म ही है' 'यह विश्व पुरुष ही है ।' इत्यादि श्रुतियाँ भी यही कहती हैं ।

'विष्णु' आदि शब्दोंकी पुनरुक्ति होनेपर भी वृत्तिके भेदसे अर्थका भेद होनेके कारण उनमें पुनरुक्तता नहीं है । तथा श्रीपति, माधव आदि शब्दोंकी वृत्ति एक होनेपर भी शब्द-भेद होनेसे उनकी पुनरुक्ति नहीं है । अर्थकी एकता होनेपर भी यहाँ पुनरुक्ति दोषावह नहीं हो सकती, क्योंकि ये सहस्रनाम एक देवता कौन है, इस प्रकार पूछनेके कारण एक देवता विषयक ही हैं ।

इनमें जहाँ पुँल्लिङ्ग शब्दका प्रयोग हो वहाँ विष्णु, जहाँ स्त्रीलिङ्ग शब्द हो वहाँ देवता और जहाँ नपुंसक लिङ्ग हो वहाँ ब्रह्मको विशेष्य समझना चाहिये ।

'यतः सर्वाणि भूतानि' यहाँसे लेकर संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और लयके कारणरूप ब्रह्मको ही एक देवतारूपसे कहा गया है; इसलिये

विधं ब्रह्म विश्वशब्देनोच्यते--

[निरुपाधिक और सोपाधिक] दोनों प्रकारका ब्रह्म पहले विश्व शब्दसे बतलाया जाता है--

ॐ विश्वं विष्णुर्वषट्कारो भूतभव्यभवत्प्रभुः ।
भूतकृद्भूतभृद्भावो भूतात्मा भूतभावनः ॥ १४ ॥

१ विश्वम्, २ विष्णुः, ३ वषट्कारः, ४ भूतभव्यभवत्प्रभुः ।
५ भूतकृत्, ६ भूतभृत्, ७ भावः, ८ भूतात्मा, ९ भूतभावनः ॥

विश्वस्य जगतः कारणत्वेन विश्वम् इत्युच्यते ब्रह्म । आदौ तु विश्वमिति कार्यशब्देन कारणग्रहणम्, कार्यभूतविरिञ्च्यादिनामभिरपि उपपन्ना स्तुतिर्विष्णोरिति दर्शयितुम् ।

विश्व अर्थात् जगत्का कारण होनेसे ब्रह्मको 'विश्व' कहा गया है । पहले यहाँ यह दिखलानेके लिये कि कार्यभूत विरञ्चि आदि नामोंसे भी विष्णुकी स्तुति उत्पन्न हो सकती है, 'विश्व' इस कार्यशब्दसे कारण (ब्रह्म) का ग्रहण किया गया है ।

यद्वा, परस्मात् पुरुषान्न भिन्नमिदं विश्वं परमार्थतस्तेन विश्वमित्यभिधीयते ब्रह्म, ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम् ।' (मु० उ० २ । २ । ११) 'पुरुष एवेदं विश्वम्' (मु० उ० २ । १ । १०) इत्यादिश्रुतिभ्यस्तद्भिन्नं न किञ्चित् परमार्थतः सदस्ति ।

अथवा, यह विश्व वास्तवमें परम-पुरुष परमात्मासे भिन्न नहीं है, इसलिये विश्व ब्रह्मको कहा गया है । 'यह विश्व परमोत्कृष्ट ब्रह्म ही है ।' 'यह सब पुरुष ही है' इत्यादि श्रुतिसे भी वास्तवमें ब्रह्मसे अतिरिक्त और कुछ भी सत्य नहीं है ।

अथवा, विशतीति विश्वं ब्रह्म 'तत् सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्' (तै० उ० २ । ६) इति श्रुतेः । किञ्च

अथवा प्रवेश करता है-इसलिये ब्रह्म विश्व है, जैसा कि श्रुति कहती है । 'उसे रचकर उसीमें प्रविष्ट हो गया अथवा 'जिसमें मरकर प्रविष्ट होते हैं ।

संहृतौ विशन्ति सर्वाणि भूतान्यस्मिन्निति विश्वं ब्रह्म 'यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति' (तै० उ० ३ । १) इति श्रुतेः । तथा हि-सकलं जगत् कार्यभूतमेष विशत्यत्र चाखिलं विशतीत्युभयथापि विश्वं ब्रह्म इति ।

इस श्रुतिके अनुसार प्रलयकालमें समस्त प्राणी इसमें प्रवेश कर जाते हैं, इसलिये ब्रह्म ही विश्व है । इस प्रकार वह कार्यरूप सम्पूर्ण जगत्‌में प्रविष्ट है, तथा सम्पूर्ण जगत् उसमें प्रवेश करता है, इसलिये दोनों ही प्रकारसे ब्रह्म विश्व है ।

'अन्यत्र धर्मादन्यत्राधर्मात्' (क० उ० १ । २ । १४) इत्यारभ्य—

'सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति
तपांसि सर्वाणि च यत् वदन्ति ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ॥'
(क० उ० १ । २ । १५)

'एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म
एतद्ध्येवाक्षरं परम् ।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा
यो यदिच्छति तस्य तत् ॥'
(क० उ० १ । २ । १६)

इति काठके ।

कठोपनिषद्‌में 'धर्मसे अलग है और अधर्मसे भी अलग है' इस प्रकार प्रसङ्ग आरम्भ करते हुए कहा है—'सब वेद जिस पदका प्रतिपादन करते हैं, तथा सारे तप जिसे प्राप्त कराते हैं, जिसकी इच्छासे ब्रह्मचर्यका आचरण करते हैं, उस पदका मैं तुमसे संक्षेपमें वर्णन करता हूँ—वह 'ॐ' बस यही है ।' 'यह अक्षर ही ब्रह्म है, यह अक्षर ही परम श्रेष्ठ है, इस अक्षरको जान लेनेपर जो जिस वस्तुकी इच्छा करता है, उसे वही प्राप्त हो जाती है ।'

'एतद्वै सत्यकाम परं चापरं च ब्रह्म यदोङ्कारः' (५ । २) इत्युपक्रम्य 'यः पुनरेतं त्रिमात्रेणोमित्येतेनैवाक्षरेण परं पुरुषमभिध्यायीत' (५ । ५) इति प्रश्नोपनिषदि । ओमिति ब्रह्म ।

प्रश्नोपनिषद्‌में भी 'हे सत्यकाम यह ओंकार ही पर और अपर ब्रह्म' इस प्रकार उपक्रम करके यह कहा है कि 'जो 'ॐ' इस तीन मात्रावाले अक्षरसे परम पुरुषका ध्यान करता है [वह मुक्त हो जाता है] यजुर्वेदीय आरण्यकमें

ओमितीदं सर्वम् ।' (तै० उ० १ । ८) **इति यजुर्वेदारण्यके** । 'तद्यथा शङ्कुना सर्वाणि पर्णानि सन्तृण्णान्येवमोङ्कारेण सर्वा वाक् सन्तृण्णा । ओङ्कार एवेदं सर्वम् ।' इति **छान्दोग्ये** (२ । २३ । ३) ।

कहा है-'ॐ' बस यही ब्रह्म है और यही सब कुछ है।' तथा छान्दोग्यका कथन है-जिस प्रकार सब पत्ते शङ्कु (पत्तेकी नसों) से व्याप्त होते हैं, उसी प्रकार ओङ्कारसे सम्पूर्ण वाणी व्याप्त है, यह सब कुछ ओङ्कार ही है।'

'ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वम्' (मा० उ० १) **इत्युपक्रम्य**

'प्रणवो ह्यपरं ब्रह्म
प्रणवश्च परः स्मृतः ।
अपूर्वोऽनन्तरोऽबाह्योऽ-
नपरः प्रणवोऽव्ययः ॥'
'सर्वस्य प्रणवो ह्यादि-
र्मध्यमन्तस्तथैव च ।
एवं हि प्रणवं ज्ञात्वा
व्यश्नुते तदनन्तरम् ॥'
'प्रणवं हीश्वरं विद्यात्
सर्वस्य हृदये स्थितम् ।
सर्वव्यापिनमोङ्कारं
मत्वा धीरो न शोचति ॥'
'अमात्रोऽनन्तमात्रश्च
द्वैतस्योपशमः शिवः ।
ओङ्कारो विदितो येन
स मुनिर्नेतरो जनः ॥'
(माण्डू० का० १ । २६-२९)

इत्यन्ता माण्डूक्योपनिषत् ।

माण्डूक्योपनिषद्में भी 'ॐ' यह अक्षर ही सब कुछ है' इस प्रकार उपक्रम करके 'प्रणव ही अपर ब्रह्म है और प्रणव ही परब्रह्म कहा गया है। वह अपूर्व, अनन्तर और अबाह्य है [अर्थात् उससे पहले, पीछे या बाहर कुछ भी नहीं है'] और उसका कोई कार्य भी नहीं है। वह प्रणव अव्यय है।' 'प्रणव ही सबका आदि, मध्य और अन्त है; प्रणवको ऐसा जानकर फिर उसीको प्राप्त हो जाता है।' 'प्रणवहीको सबके हृदयमें स्थित ईश्वर समझे; सर्वव्यापी ओंकारको जान लेनेपर धीर पुरुष शोक नहीं करता।' 'जिसने मात्राहीन और अनन्त मात्राओंवाले द्वैतशून्य कल्याणस्वरूप ओंकारको जान लिया है, वही मुनि है और कोई नहीं, यहाँतक ऐसा ही कहा है।

'ॐ तद्ब्रह्म । ॐ तद्वायुः । ॐ तदात्मा । ॐ तत्सत्यम् । ॐ तत्सर्वम् ।'

(ना० उ० ६८)

इत्यादिश्रुतिभिः ।

'ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म
व्याहरन् मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन् देहं
स याति परमां गतिम् ॥'
[गीता ८ । १३]

'यदक्षरं वेदविदो वदन्ति
विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये ॥'
[गीता ८ । ११]

'रसोऽहमप्सु कौन्तेय
प्रभास्मि शशिसूर्ययोः ।
प्रणवः सर्ववेदेषु
शब्दः खे पौरुषं नृषु ॥
[गीता ७ । ८]

'महर्षीणां भृगुरहं
गिरामस्म्येकमक्षरम् ।
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि
स्थावराणां हिमालयः ॥'
[गीता १० । २५]

'आद्यं च त्र्यक्षरं ब्रह्म
त्रयी यस्मिन् प्रतिष्ठिता ।'

'एकाक्षरं परं ब्रह्म
प्राणायामः परं तपः ॥'
(अत्रि० १ । ११)

[इनके सिवा] 'वह ॐ ही ब्रह्म है, ॐ ही वायु है, ॐ ही आत्मा है, ॐ ही सत्य है, ॐ ही सब कुछ है' इत्यादि श्रुतियोंसे, तथा

'जो पुरुष 'ॐ' इस एकाक्षर ब्रह्मका उच्चारण कर मुझे स्मरण करता हुआ शरीर त्याग कर जाता है, वह परमगतिको प्राप्त होता है।' 'जिस अक्षर [ॐकार] का वेदज्ञ-जन बखान करते हैं, जिसमें विरक्त यतिजन प्रवेश करते हैं तथा जिसे प्राप्त करनेकी इच्छासे ब्रह्मचर्यका आचरण करते हैं वह पद तुम्हें संक्षेपसे बताता हूँ।' 'हे कुन्तीपुत्र ! जलमें मैं रस हूँ, चन्द्रमा और सूर्यमें प्रकाश हूँ, सम्पूर्ण वेदोंमें प्रणव हूँ, आकाशमें शब्द हूँ और पुरुषोंमें पुरुषत्व हूँ।' 'मैं महर्षियोंमें भृगु हूँ, वाणीमें एकाक्षर [ओंकार] हूँ, यज्ञोंमें जपयज्ञ हूँ तथा स्थावरोंमें हिमालय हूँ।' 'त्र्यक्षर (तीन अक्षरवाला) ब्रह्म (ओंकार) ही आदिमें है, जिसमें वेदत्रयी स्थित है।' 'एकाक्षर ओंकार ही परब्रह्म है और प्राणायाम ही परम तप है।'

'प्रणवाद्यास्त्रयो वेदाः
प्रणवे पर्यवस्थिताः ।
वाङ्मयं प्रणवं सर्वं
तस्मात्प्रणवमभ्यसेत् ॥
(अत्रि० १ । ९)

इत्यादिस्मृतेश्च विश्वशब्देनौङ्कारोऽभिधीयते—वाच्यवाचकयोरत्यन्तभेदाभावाद् विश्वमित्योङ्कार एव ब्रह्मेत्यर्थः ।

'तीनों वेद प्रणवसे आरम्भ होनेवाले हैं और प्रणवमें ही समाप्त हो जाते हैं, सम्पूर्ण वाणीमात्र प्रणवरूप है, इसलिये प्रणवका अभ्यास करे।' इत्यादि स्मृतियोंसे भी 'विश्व' शब्दसे ओंकारका ही निरूपण किया गया है; क्योंकि वाच्य और वाचकका आत्यन्तिक भेद नहीं होता, इसलिये तात्पर्य यह है कि विश्व अर्थात् ओंकार ही ब्रह्म है ।

'सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत' (छा० उ० ३ । १४ । १) इति एतदुक्तं भवति—यस्मात् सर्वमिदं विकारजातं ब्रह्म तज्जत्वात्तल्लयत्वात्तदनत्वाच्च । न च सर्वस्यैकात्मत्वे रागादयः सम्भवन्ति । तस्माच्छान्त उपासीत इति श्रुतेः ।

'यह सब निःसन्देह ब्रह्म ही है क्योंकि उसीसे उत्पन्न होता, उसीमें लीन होता और उसीमें चेष्टा करता है, इस प्रकार शान्तभावसे उपासना करे' इस श्रुतिसे यह बतलाया गया है कि यह सम्पूर्ण विकार ब्रह्महीसे उत्पन्न होनेके कारण, ब्रह्महीमें लीन होनेके कारण और उसीमें चेष्टा करनेके कारण ब्रह्म ही है । इस प्रकार सब एकरूप होनेसे इनमें रागादि दोष सम्भव नहीं हैं; इसलिये शान्तभावसे उपासना करे ।

'श्रूयतां धर्मसर्वस्वं
श्रुत्वा चैवावधार्यताम् ।
आत्मनः प्रतिकूलानि
परेषां न समाचरेत् ॥'
(विष्णुधर्म० ३ । २५५ । ४४)

'धर्मका सार-सर्वस्व सुनिये और सुनकर उसे हृदयमें धारण कीजिये—जो कार्य अपने प्रतिकूल हों, उनका दूसरोंके प्रति भी आचरण नहीं करना चाहिये ।'

'आत्मौपम्येन सर्वत्र
समं पश्यति योऽर्जुन ।

'हे अर्जुन ! जो योगी सुख और दुःखको अपनी ही तरह सर्वत्र

सुखं वा यदि वा दुःखं
स योगी परमो मतः ॥'
(गीता० ६ । ३२)

समान देखता है, मेरे विचारसे वही परम योगी है।'

'निर्गुणः परमात्मात्र
देहे व्याप्य व्यवस्थितः।
तमहं ज्ञानविज्ञेयं
नावमन्ये न लङ्घये ॥'
'यद्यागमैर्न विन्देयं
तमहं भूतभावनम्।
क्रमेयं त्वां गिरिं चेमं
हनूमानिव सागरम् ॥'
(महा० वन० १४७ । ८-९)

[भीमसेनने हनुमान्‌जीसे कहा है—]
'इस देहमें निर्गुण परमात्मा ही व्याप्त होकर स्थित है; उस ज्ञानगम्य परमात्माका मैं अनादर और लङ्घन नहीं कर सकता हूँ।' 'यदि मैं शास्त्रोंद्वारा उस भूतभावन परमात्माका अनुभव न करता तो हनुमान्‌जीके समुद्रोल्लङ्घनके समान तुम्हें और इस पर्वतको भी लाँघ जाता।'

'बद्धवैराणि भूतानि
द्वेषं कुर्वन्ति चेत्ततः।
शोच्यान्यहोऽतिमोहेन
व्याप्तानीति मनीषिणाम् ॥'
'एते भिन्नदृशां दैत्या
विकल्पाः कथिता मया।
कृत्वाभ्युपगमं तत्र
संक्षेपः श्रूयतां मम ॥'
'विस्तारः सर्वभूतस्य
विष्णोः सर्वमिदं जगत्।
द्रष्टव्यमात्मवत्तस्मा-
दभेदेन विचक्षणैः ॥'

[प्रह्लादजी दैत्यपुत्रोंसे कहते हैं—]
'यदि जीव आपसमें वैर बाँधकर एक दूसरेसे द्वेष करते हैं तो उन्हें देखकर बुद्धिमानोंको (उनके लिये) इस प्रकार शोक करना चाहिये कि ओह! ये अत्यन्त मोहग्रस्त हैं।' 'हे दैत्यगण! ये सब मैंने एक पथको स्वीकार करके भेददृष्टिवालोंके [साधनविषयक] विकल्प बतलाये, अब तुम मुझसे उन सबका सार सुनो।' 'यह सम्पूर्ण संसार सर्वरूप विष्णुका विस्तार है। इसलिये बुद्धिमानोंको इसे आत्माके समान अभिन्नभावसे देखना।

'समुत्सृज्यासुरं भावं
तस्माद्यूयं तथा वयम् ।
तथा यत्नं करिष्यामो
यथा प्राप्स्याम निर्वृतिम् ॥'
(विष्णु० १ । १७ । ८२-८५)

'सर्वत्र दैत्याः समतामुपेत
समत्वमाराधनमच्युतस्य ।'
(विष्णु० १ । १७ । ९९)

'न मन्त्रादिकृतस्तात
न च नैसर्गिको मम ।
प्रभाव एष सामान्यो
यस्य यस्याच्युतो हृदि ॥'

'अन्येषां यो न पापानि
चिन्तयत्यात्मनो यथा ।
तस्य पापागमस्तात
हेत्वभावान्न विद्यते ॥'

'कर्मणा मनसा वाचा
परपीडां करोति यः ।
तद्बीजं जन्म फलति
प्रभूतं तस्य चाशुभम् ॥'

'सोऽहं न पापमिच्छामि
न करोमि वदामि वा ।
चिन्तयन् सर्वभूतस्थ-
मात्मन्यपि च केशवम् ॥'

चाहिये ।' इसलिये तुम और हम अपने आसुरी भावको छोड़कर ऐसा प्रयत्न करें जिससे शान्तिको प्राप्त हों ।'……'हे दैत्यगण ! सर्वत्र समान-भाव रक्खो; क्योंकि समता ही श्रीअच्युतकी आराधना है ।'

[प्रह्लादजी अपने पितासे कहते हैं –]

'हे तात ! मेरा यह प्रभाव न तो किसी मन्त्रादिके कारण है और न यह मुझमें स्वाभाविक ही है । यह तो जिस-जिसके हृदयमें श्रीहरि विराजमान हैं, उस-उसके लिये साधारण बात है ।' 'हे तात ! अपने ही समान जो दूसरोंके लिये भी अनिष्ट-चिन्तन नहीं करता, कोई हेतु न रहनेके कारण उसे पापोंका फलरूप दुःख नहीं होता ।' 'जो पुरुष मन, वचन या कर्मसे दूसरों-को दुःख देता है, उस पापकर्मरूप बीजसे उसे पुनर्जन्म और अत्यन्त अशुभ-प्राप्तिरूप फल होता है ।' 'किन्तु मैं अपने हृदयमें और समस्त प्राणियोंमें विराजमान श्रीकेशवका स्मरण करता हुआ न किसीका अनिष्ट चाहता हूँ, न करता हूँ और न कहता ही हूँ ।'

'शारीरं मानसं वाग्जं
दैवं भूतभवं तथा ।
सर्वत्र समचित्तस्य
तस्य मे जायते कुतः ॥'
'एवं सर्वेषु भूतेषु
भक्तिरव्यभिचारिणी ।
कर्त्तव्या पण्डितैर्ज्ञात्वा
सर्वभूतमयं हरिम् ॥'
(विष्णु० १ । १९ । ४-९)
'साम चोपप्रदानं च
भेददण्डौ तथापरौ ।
उपायाः कथिता ह्येते
मित्रादीनां च साधने ॥'
'तानेवाहं न पश्यामि
मित्रादींस्तात मा क्रुधः ।
साध्याभावे महाबाहो
साधनैः किं प्रयोजनम् ॥'
'सर्वभूतात्मके तात
जगन्नाथे जगन्मये ।
परमात्मनि गोविन्दे
मित्रामित्रकथा कुतः ॥'
(विष्णु० १ । १९ । ३५-३७)
'जडानामविवेकाना-
मशूराणामपि प्रभो ।
भाग्यभोग्यानि राज्यानि
सन्त्यनीतिमतामपि ॥'
'तस्माद्यतेत पुण्येषु
य इच्छेन्महतीं श्रियम् ।
यतितव्यं समत्वे च
निर्वाणमपि चेच्छता ॥'

इस तरह सर्वत्र समानचित्त रहनेवाले मुझे शारीरिक, मानसिक, वाचिक, दैविक अथवा भौतिक दुःख कैसे प्राप्त हो सकता है ? 'इस प्रकार श्रीहरिको सर्वभूतमय जानकर पण्डितोंको समस्त प्राणियोंमें अविचल भक्ति करनी चाहिये ।' 'साम, दान, दण्ड और भेद—ये सभी उपाय शत्रुमित्रादिको वशमें करनेके लिये बताये गये हैं, किन्तु पिताजी ! क्रोध न कीजिये । मुझे तो कोई शत्रु-मित्रादि दिखलायी ही नहीं देते। अतः हे महाबाहो ! जब कोई साध्य ही नहीं है तो साधनसे क्या लाभ ? 'हे तात ! सर्वभूतात्मक विश्वरूप जगत्पति परमात्मा गोविन्दमें शत्रु मित्र आदि भावकी बात ही कहाँ है ?' 'हे प्रभो ! ये राज्यादि तो भाग्यसे प्राप्त होनेवाले हैं । ये तो मूर्ख, अविवेकी, दुर्बल और अनीतिमानोंको भी प्राप्त होते देखे जाते हैं ।' 'इसलिये जिसे महान् वैभवकी इच्छा हो, वह पुण्य-सम्पादनका प्रयत्न करे और जो मुक्त होना चाहे वह समत्वके लिये प्रयत्न करे ।

'देवा मनुष्याः पशवः
पक्षिवृक्षसरीसृपाः ।
रूपमेतदनन्तस्य
विष्णोर्भिन्नमिव स्थितम् ॥'
'एतद् विजानता सर्वं
जगत् स्थावरजङ्गमम् ।
द्रष्टव्यमात्मवद् विष्णु-
र्यतोऽयं विश्वरूपधृक् ॥'
एवं ज्ञाते स भगवा-
ननादिः परमेश्वरः ।
प्रसीदत्यच्युतस्तस्मिन्
प्रसन्ने क्लेशसंक्षयः ॥'
(विष्णु० १ । १९ । ४७-४९)

'देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष और सर्प आदि सब अनन्त विष्णु भगवान्के ही रूप हैं, वे पृथक्-पृथक् स्थित-से दिखायी देते हैं [किन्तु वास्तवमें एक ही हैं] ऐसा जाननेवालेको यह सम्पूर्ण स्थावर-जङ्गम जगत् अपने समान ही देखना चाहिये, क्योंकि यह विश्व-रूपधारी विष्णु ही है।' 'ऐसा जान लेनेपर वह अनादि और अविनाशी परमेश्वर प्रसन्न होता है, तथा उसके प्रसन्न होनेपर सम्पूर्ण क्लेशोंका* क्षय हो जाता है।'

बहूनां जन्मनामन्ते
ज्ञानवान् मां प्रपद्यते ।
वासुदेवः सर्वमिति
स महात्मा सुदुर्लभः ॥'
(गीता ७ । १९)

तथा गीतामें भी कहा है कि 'अनेक जन्मोंके अनन्तर अन्तिम जन्ममें ज्ञानवान् पुरुष मुझे इस प्रकार जानता है कि 'सब कुछ वासुदेव ही है' वह ऐसा महात्मा अत्यन्त दुर्लभ है।' इन वचनोंसे यही बात सिद्ध होती है।

इत्यादिवचनैश्च ।

हिंसादिरहितेन स्तुतिनमस्कारादि कर्त्तव्यमिति दर्शयितुं विश्वशब्देन ब्रह्माभिधीयत इति वा ।

अथवा हिंसा आदिसे रहित होकर विश्वमात्रकी स्तुति और नमस्कार आदि करने चाहिये, यह दिखलानेके लिये ब्रह्म 'विश्व' शब्दसे कहा गया है।

* पातञ्जलयोगदर्शन (साधनपाद सूत्र ३) में कहा है—'अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः' अर्थात् अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश—ये पाँच क्लेश हैं।

'मत्कर्मकृन्मत्परमो
मद्भक्तः सङ्गवर्जितः ।
निर्वैरः सर्वभूतेषु
यः स मामेति पाण्डव ॥'
(गीता ११ । ५५)

इति ।

'न चलति निजवर्णधर्मतो यः
सममतिरात्मसुहृद्विपक्षपक्षे ।
न हरति न च हन्ति किञ्चिदुच्चैः
स्थितमनसं तमवेहि विष्णुभक्तम् ॥'
(विष्णु० ३ । ७ । २०)

'विमलमतिरमत्सरः प्रशान्तः
शुचिचरितोऽखिलसत्त्वमित्रभूतः ।
प्रियहितवचनोऽस्तमानमायो
वसति सदा हृदि तस्य वासुदेवः ॥'
'वसति हृदि सनातने च तस्मिन्
भवति पुमाञ्जगतोऽस्य सौम्यरूपः ।
क्षितिरसमतिरम्यमात्मनोऽन्तः
कथयति चारुतयैव सालपोतः ॥'
(विष्णु० ३ । ७ । २४-२५)

'सकलमिदमहं च वासुदेवः
परमपुमान् परमेश्वरः स एकः ।

[गीतामें भी कहा है—] 'जो मेरे ही लिये कर्म करनेवाला, मेरे ही परायण रहनेवाला, मेरा भक्त आसक्ति-रहित और समस्त प्राणियोंमें वैर-रहित होता है । हे पाण्डव ! वह मुझे ही प्राप्त हो जाता है ।' इत्यादि ।

[यमराजने भी अपने दूतोंसे कहा है] 'जो अपने वर्णधर्मसे विचलित नहीं होता, अपने सुहृद् और विरोधियोंके पक्षमें समबुद्धि है तथा किसी वस्तुका हरण या किसी जीवका हनन नहीं करता, उस अत्यन्त स्थिर-चित्त पुरुषको विष्णुका भक्त जानो ।'........ 'वह निर्मलचित्त, मत्सरहीन, शान्त, पवित्र-चरित्र, समस्त प्राणियोंका मित्र, प्रिय और हितकर वचन बोलनेवाला तथा मान और मायासे रहित होता है । उसके हृदयमें श्रीवासुदेव सर्वदा निवास करते हैं ।' 'उस सनातन प्रभुके हृदयमें निवास करते ही पुरुष इस लोकमें प्रियदर्शन हो जाता है, जिस प्रकार सालका नवीन पौधा अपनी सुन्दरतासे ही अपने अन्तर्वर्ती अतिरमणीय पार्थिव रसकी सूचना दे देता है ।'........'यह सम्पूर्ण जगत् और मैं एकमात्र परमपुरुष परमेश्वर वासुदेव ही हैं—जिनकी ऐसी मति हृदयस्थ परमेश्वर श्रीअनन्तमें अविचल

इति मतिरचला भवत्यनन्ते
हृदयगते व्रज तान् विहाय दूरात् ॥'
(विष्णु० ३ । ७ । ३२)

'यमनियमविधूतकल्मषाणा-
मनुदिनमच्युतसक्तमानसानाम् ।
अपगतमदमानमत्सराणां
व्रज भट दूरतरेण मानवानाम् ॥'
(विष्णु० ३ । ७ । २६)

श्रीअनन्तमें अविचल हो गयी हो, उन्हें तुम दूरहीसे छोड़कर निकल जाना।'......'अरे दूतो! यम-नियमादिसे जिनके दोष दूर हो गये हैं, जो नित्यप्रति श्रीअच्युतमें मन लगाये रहते हैं तथा जिनके मद, मान और मत्सरादि निकल गये हैं, उन मनुष्योंसे दूर रहकर ही निकल जाना।'

इत्यादिवचनैर्वैष्णवलक्षणस्यैवं प्रकारत्वाच्च हिंसादिरहितेन विष्णोः स्तुतिनमस्कारादि कर्तव्यमिति ।

इत्यादि वचनोंसे वैष्णवके लक्षण ऐसे ही होनेके कारण विष्णु-भक्तको हिंसादि दोषोंसे दूर रहकर श्रीविष्णुके स्तुति-नमस्कारादि करने चाहिये [यह बात सिद्ध होती है] ।

'श्रद्धया देयमश्रद्धयाऽदेयम्' (तै० उ० १ । ११ । ३) 'श्रद्धयाग्निः समिद्धयते' इत्यादि श्रुतेः

'श्रद्धापूतं वदान्यस्य
हतमश्रद्धयेतरत् ।'
(महा० शान्ति० २६४ । १३)

'इमं स्तवमधीयानः
श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ॥'
(वि० स० १३२)

'अश्रोत्रियं श्राद्धमधीतमव्रत-
मदक्षिणं यज्ञमनृत्विजाहुतम् ।
अश्रद्धया दत्तमसंस्कृतं हवि-
र्भागाः षडेते तव दैत्यसत्तम ॥'

'श्रद्धापूर्वक देना चाहिये, अश्रद्धासे नहीं', 'श्रद्धासे अग्नि प्रज्वलित की जाती है' इत्यादि श्रुतियोंसे तथा 'दाताका [दान] श्रद्धासे पवित्र होता है और अन्य अश्रद्धाके कारण नष्ट हो जाता है।' 'इस स्तोत्रका श्रद्धा और भक्तिपूर्वक पाठ करनेवाला [आत्मसुख, शान्ति, लक्ष्मी, धृति, स्मृति और कीर्तिसे युक्त होता है]' हे दैत्यश्रेष्ठ ! बिना श्रोत्रियका श्राद्ध, बिना व्रतका अध्ययन, बिना दक्षिणाका यज्ञ, बिना ऋत्विक्‌की आहुति, बिना श्रद्धाका दान और बिना संस्कार किया हुआ हवि—ये

'पुण्यं मद्द्वेषिणां यच्च
मद्भक्तद्वेषिणां तथा ।
क्रयविक्रयसक्तानां
पुण्यं यच्चाग्निहोत्रिणाम् ॥'
'अश्रद्धया च यद् दानं
यजतां ददतां तथा ।
तत् सर्वं तत्र दैत्येन्द्र
मत्प्रसादाद् भविष्यति ॥'
(हरि० ३ । ७२ । ३७-३९)
'अश्रद्धया हुतं दत्तं
तपस्तप्तं कृतं च यत् ।
असदित्युच्यते पार्थ
न च तत् प्रेत्य नो इह ॥'
(गीता १७ । २८)

इत्यादिस्मृतिभिश्च श्रद्धया स्तुतिनमस्कारादि कर्तव्यमश्रद्धया न कर्तव्यम् ।

ॐ तत्सदिति निर्देशो
ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः ।'
(गीता १७ । २३)

इति भगवद्वचनात् स्तुतिनमस्कारादिकं कर्मासात्त्विकं विगुणमपि श्रद्धापूर्वकं ब्रह्मणोऽभिधानत्रयप्रयोगेण सगुणं सात्त्विकं सम्पादितं भवति ।

आत्मानं विष्णुं ध्यात्वार्चनस्तुतिनमस्कारादि कर्तव्यम् ।

*

छः तेरे भाग हैं ।' 'मुझसे द्वेष करनेवालोंका, मेरे भक्तोंसे द्वेष करनेवालोंका, निरन्तर क्रय-विक्रयमें आसक्त रहनेवालोंका, [विधिहीन] अग्निहोत्र करनेवालोंका, पुण्य तथा 'अश्रद्धापूर्वक यज्ञ या दान करनेवालोंका दान, हे दैत्येन्द्र ! यह सब मेरी कृपासे तुझे प्राप्त होगा ।' 'हे पार्थ ! जो हवन, दान या तप अश्रद्धासे किया जाता है, वह असत् कहलाता है, उसका न यहाँ और न मरनेपर ही कोई फल होता है ।'

इत्यादि स्मृतियोंसे भी [यही सिद्ध होता है कि] श्रद्धापूर्वक ही स्तुतिनमस्कारादि करने चाहिये, अश्रद्धासे नहीं ।

'ॐ तत्सत्—यह ब्रह्मका तीन प्रकारका नाम कहा गया है' भगवान्के इस वचनसे [यह सिद्ध होता है कि] स्तुति और नमस्कार आदि कर्म यदि असात्त्विक और गुणहीन भी हों तो भी ब्रह्मके इन तीनों नामोंका श्रद्धापूर्वक प्रयोग करनेसे गुणयुक्त और सात्त्विक हो जाते हैं ।

ये पूजा, स्तुति और नमस्कारादि विष्णु भगवान्को आत्मरूपसे चिन्तन

नाविष्णुः कीर्तयेद् विष्णुं
नाविष्णुर्विष्णुमर्चयेत् ।
नाविष्णुः संस्मरेद् विष्णुं
नाविष्णुर्विष्णुमाप्नुयात् ॥'

इति महाभारते कर्मकाण्डे ।

'सर्वाण्येतानि नामानि
परस्य ब्रह्मणोऽनघ ।'
(विष्णुधर्म० ३ । १२३ । १३)

'यं यं काममभिध्याये-
त्तं तमाप्नोत्यसंशयम् ।
सर्वकामांस्तथाप्नोति
समाराध्य जगद्गुरुम् ॥'

'तन्मयत्वेन गोविन्द-
मेत्येतद् दाल्भ्य नान्यथा ।
तन्मयो वाञ्छितान् कामान्
यदवाप्नोति मानवः ॥'

इति विष्णुधर्मे ।

'सर्वभूतस्थितं यो मां
भजत्येकत्वमास्थितः ।
सर्वथा वर्तमानोऽपि
स योगी मयि वर्तते ॥'

इति भगवद्गीतासु (६ । ३१)

'अहं हरिः सर्वमिदं जनार्दनो
नान्यत्ततः कारणकार्यजातम् ।

करके करने चाहिये । महाभारत-कर्मकाण्डमें कहा है—'बिना विष्णुरूप हुए विष्णुका कीर्तन न करे, बिना विष्णु हुए विष्णुका पूजन न करे, बिना विष्णु हुए विष्णुका स्मरण न करे और न बिना विष्णु हुए विष्णुको प्राप्त हो ।'

विष्णुधर्ममें कहा है—'हे अनघ ! ये सब नाम परब्रह्मके ही हैं ।' 'भक्त जिस-जिस वस्तुकी इच्छा करता है, निःसन्देह उसीको प्राप्त कर लेता है । उन जगद्गुरुकी आराधना करके सब कामनाओंको प्राप्त कर लेता है ।' 'हे दाल्भ्य ! मनुष्य गोविन्दको तन्मयतासे ही प्राप्त कर सकता है, जो पुरुष तन्मय हो जाता है, वह अपनी इच्छित वस्तुओंको प्राप्त कर लेता है, इसमें कुछ भी अन्यथा नहीं है ।'

श्रीमद्भगवद्गीतामें कहा है—'जो पुरुष एकत्वमें स्थित होकर समस्त भूतोंमें स्थित मुझ परमात्माका भजन करता है, वह सब प्रकारसे वर्तता हुआ भी मुझहीमें वर्तता है ।'

विष्णुपुराणका कथन है—'मैं श्रीहरि हूँ, यह समस्त संसार जनार्दन ही है, उस (परमात्मा) से अतिरिक्त

ईदृङ् मनो यस्य न तस्य भूयो
भवोद्भवा द्वन्द्वगदा भवन्ति ॥'

इति विष्णुपुराणे (१ । २२ । ८७)

'गुरोर्यत्र परीवादो
निन्दा वापि प्रवर्तते ।
कर्णौ तत्र पिधातव्यौ
गन्तव्यं वा ततोऽन्यतः ॥'
(विष्णुधर्म० ३ । २३३ । ९२)

'तस्माद् ब्रह्मैवाचार्य-
स्वरूपेणावतिष्ठते ।'

इति स्मृतेः ।

'वरं हुतवहज्वाला-
पुञ्जस्यान्तर्व्यवस्थितिः ।
न शौरिचिन्ताविमुख-
जनसंवासवैशसम् ॥'

इति कात्यायनवचनाद् यत्र देशे वासुदेवनिन्दा तत्र वासो न कर्त्तव्यः ।

'यस्य देवे परा भक्ति-
र्यथा देवे तथा गुरौ ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः
प्रकाशन्ते महात्मनः ॥'
(६ । २३)

इति श्वेताश्वतरोपनिषन्मन्त्रवर्णाद् हरौ गुरौ च परा भक्तिः कार्येति ।

और कोई कार्य-कारणादि नहीं है— जिसका ऐसा चित्त है, उसे फिर जन्मादिसे होनेवाली द्वन्द्वरूप व्याधियाँ नहीं होतीं ।'

स्मृति कहती है—'जहाँ गुरु का अपवाद या निन्दा होती हो वहाँ कान मूँद लेने चाहिये अथवा वहाँसे कहीं अन्यत्र चला जाना चाहिये ।' 'अतः ब्रह्म ही आचार्य रूपसे स्थित है ।'

अग्निकी प्रचण्ड ज्वालाके भीतर रहना अच्छा है, किन्तु श्रीहरिके चिन्तनसे विमुख लोगोंके साथ रहने का दुःख अच्छा नहीं—कात्यायनजी इस वाक्यसे भी [यही तात्पर्य निकलता है कि] जहाँ श्रीवासुदेवकी निन्दा होती हो, वहाँ नहीं रहना चाहिये ।'

जिसकी भगवान्‌में अत्यन्त भक्ति है और भगवान्‌के समान ही गुरुमें भी है, उस महात्माको ही इन ऊपर कहे हुए अर्थोंका प्रकाश होता है ।'

श्वेताश्वतरोपनिषद्‌के इस मन्त्रसे भी यही सिद्ध होता है कि श्रीहरि और गुरुमें परा भक्ति करनी चाहिये ।

'अवशेनापि यन्नाम्नि
कीर्तिते सर्वपातकैः ।
पुमान् विमुच्यते सद्यः
सिंहत्रस्तैर्वृकैरिव ॥'
(विष्णु० ६ । ८ । १९)

'जिसके नामका विवश होकर भी कीर्तन करनेसे मनुष्य उसी क्षणमें सम्पूर्ण पापोंसे इस प्रकार मुक्त हो जाता है, जैसे सिंहसे डरे हुए भेड़ियोंसे उसका शिकार ।'

'ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि
वासुदेवस्य कीर्तनात् ।
तत्सर्वं विलयं याति
तोयस्थं लवणं यथा ॥'

'जानकर अथवा विना जाने भी वासुदेवका कीर्तन करनेसे समस्त पाप जलमें पड़े हुए नमकके समान गल जाते हैं ।'

'कलिकल्मषमत्युग्रं
नरकार्तिप्रदं नृणाम् ।
प्रयाति विलयं सद्यः
सकृत् कृष्णस्य संस्मृतेः ॥'
(विष्णु० ६ । ८ । २१)

'मनुष्योंको नरककी पीडा देनेवाले कलिके अत्यन्त उग्र पाप श्रीकृष्णका एक बार भी भली प्रकार स्मरण करनेसे तुरंत विलीन हो जाते हैं ।'

'सकृत्स्मृतोऽपि गोविन्दो
नृणां जन्मशतैः कृतम् ।
पापराशिं दहत्याशु
तूलराशिमिवानलः ॥'

'श्रीगोविन्द एक बार भी स्मरण किये जानेपर मनुष्योंके सैकड़ों जन्मोंमें किये हुए पापोंके समूहको इस प्रकार शीघ्र ही भस्म कर डालते हैं, जैसे अग्नि रूईके ढेरको ।'

'सेयं वदनवल्मीक-
वासिनी रसनोरगी ।
या न गोविन्द गोविन्द
गोविन्देति प्रभाषते ॥'

'जो जिह्वा 'गोविन्द ! गोविन्द ! गोविन्द !' ऐसा नहीं कहती, वह मुखरूपी बिलमें रहनेवाली सर्पिणीके ही समान है ।'

'पापवल्ली मुखे तस्य
जिह्वारूपेण तिष्ठति ।
या न वक्ति दिवा रात्रौ
गुणान् गोविन्दसम्भवान् ॥'

'जो जिह्वा दिन-रात श्रीगोविन्दके गुण नहीं गाती, वह मनुष्यके मुखमें जिह्वारूपसे पापकी बेल ही रहती है ।'

'सकृदुच्चरितं येन
हरिरित्यक्षरद्वयम् ।
बद्धः परिकरस्तेन
मोक्षाय गमनं प्रति ॥'
(पद्म० ६ । ८० । १६१)

'जिसने एक बार भी 'हरि' इन दो अक्षरोंका उच्चारण किया है, उसने मानो मोक्षकी ओर जानेके लिये कमर कस ली है ।'

'एकोऽपि कृष्णस्य कृतः प्रणामो
दशाश्वमेधावभृथेन तुल्यः ।
दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म
कृष्णप्रणामी न पुनर्भवाय ॥'
(महा० शान्ति ४७ । ९१)

'श्रीकृष्णको किया हुआ एक भी प्रणाम दस अश्वमेध-यज्ञोंका यज्ञान्त-स्नानके समान है, उनमें भी दस अश्वमेध-यज्ञ करनेवालेका तो फिर जन्म होता है, किन्तु कृष्णको प्रणाम करनेवालेका पुनर्जन्म नहीं होता ।'

एवमादिवचनैः श्रद्धाभक्त्योरभावेऽपि नामसङ्कीर्त्तनं समस्तं दुरितं नाशयतीत्युक्तम्, किमुत श्रद्धादिपूर्वकं सहस्रनामसङ्कीर्त्तनं नाशयतीति ।

इस प्रकारके वचनोंसे यही कहा गया है कि श्रद्धा-भक्तिका अभाव होनेपर भी नामसंकीर्तन समस्त पापोंको नष्ट कर देता है; फिर श्रद्धा-भक्तिसहित किया हुआ सहस्रनामका कीर्तन उन्हें नष्ट कर देता है—इसमें तो कहना ही क्या है !

'मनसा वा अग्रे सङ्कल्पयत्यथ वाचा व्याहरति' 'यद्धि मनसा ध्यायति तद्वाचा वदति' इति **श्रुतिभ्यां स्मरणं ध्यानं च नामसङ्कीर्त्तनेऽन्तर्भूतम् ।**

'पहले मनसे संकल्प करता है, फिर वाणीसे बोलता है ।' 'मनसे जो बात सोचता है, वही वाणीसे कहता है ।' इन दो श्रुतियोंसे स्मरण और ध्यान भी नाम-संकीर्तनके अन्तर्गत ही सिद्ध होते हैं ।

'यस्मिन्न्यस्तमतिर्न याति नरकं
स्वर्गोऽपि यच्चिन्तने
विघ्नो यत्र निवेशितात्ममनसो
ब्राह्मोऽपि लोकोऽल्पकः ।

विष्णुपुराणके अन्तमें श्रीपराशरजीने इस प्रकार उपसंहार किया है—**'जिसमें दत्तचित्त हुआ पुरुष नरकगामी तो होता ही नहीं, बल्कि**

मुक्तिं चेतसि यः स्थितोऽमलधियां
पुंसां ददात्यव्ययः
किं चित्रं यदघं प्रयाति विलयं
तत्राच्युते कीर्तिते ॥

इति विष्णुपुराणान्ते (६ । ८ । ५६) श्रीपराशरेणोपसंहृतम् ।

स्वर्ग भी जिसका चिन्तन करनेमें विघ्नरूप है तथा जिसमें चित्त लगाये हुए मनुष्यके लिये ब्रह्मलोक भी तुच्छ मालूम होता है और जो अविनाशी प्रभु शुद्ध चित्त पुरुषोंके अन्तःकरणमें स्थित होकर उन्हें मोक्ष प्रदान करता है, उस अच्युतका कीर्तन करनेसे यदि पाप नष्ट हो जाते हैं तो इसमें आश्चर्य क्या है ?'

'आलोड्य सर्वशास्त्राणि
विचार्य च पुनः पुनः ।
इदमेकं सुनिष्पन्नं
ध्येयो नारायणः सदा ॥'*

इति श्रीमहाभारतान्ते भगवता श्रीवेदव्यासेनोपसंहृतम् ।

भगवान् श्रीवेदव्यासजीने भी महाभारतके अन्तमें इसी प्रकार उपसंहार किया है कि 'समस्त शास्त्रोंका मन्थन करके उनका बारंबार विचार करनेपर यही एक बात सिद्ध होती है कि सदा श्रीनारायणका ध्यान करना चाहिये ।

'हरिरेकः सदा ध्येयो
भवद्भिः सत्त्वसंस्थितैः ।
ओमित्येवं सदा विप्राः
पठत ध्यात केशवम् ॥'

इति हरिवंशे (३ । ८९ । ९) कैलासयात्रायां हरिरेको ध्यातव्य इत्युक्तं महेश्वरेणापि ।

'आपलोगोंको सत्त्वगुणमें स्थित होकर निरन्तर एक श्रीहरिका ही ध्यान करना चाहिये । हे विप्रगण ! 'ॐ' इस प्रकार सदा जप करो और केशवका ध्यान करो' इस प्रकार हरिवंशमें कैलासयात्राके प्रसङ्गमें महेश्वरने भी 'एक हरिहीका ध्यान करना चाहिये' ऐसा कहा है ।

* हमें यह श्लोक महाभारतके अन्तमें नहीं मिला । लिंगपुराणका (२ । ७ । ११) श्लोक सर्वथा इसी प्रकार है ।

एतत्सर्वमभिप्रेत्य 'एष मे सर्वधर्माणां धर्मोऽधिकतमो मतः' **इत्याधिक्यमुक्तम् ।**

किमेकं दैवतम्' (वि० स० २) **इत्यारभ्य** 'किं जपन् मुच्यते जन्तुः' (वि० स० ३) **इति षट्प्रश्नेषु** 'यतः सर्वाणि' (वि० स० ११) **इति प्रश्नोत्तराभ्यां यद्ब्रह्मोक्तं तद्विश्वशब्देनोच्यत इति व्याख्यातम् ।**

तत्किमित्याकाङ्क्षायामाह–

विष्णुः **इति । तथा च ऋग्वेदे–** 'तमु स्तोतारः पूर्व्यं यथाविद ऋतस्य गर्भं जनुषा पिपर्तन । आस्य जानन्तो नाम चिद्विवक्तन महस्ते विष्णो सुमतिं भजामहे' (२ । २ । २६) **इत्यादिश्रुतिभिर्विष्णोर्नामसङ्कीर्त्तनं सम्यग्ज्ञानप्राप्तये विहितम् । तमेव स्तोतारः पुराणं यथाज्ञानेन सत्यस्य गर्भं जन्मसमाप्तिं कुरुत । जानन्तः आस्य विष्णोः नामापि आवदत अन्ये वदन्तु मा वा हे विष्णो वयं ते**

इन सब वचनोंके अभिप्रायसे ही **'सब धर्मोंमें मुझे यह धर्म सबसे अधिक मान्य है'** इस प्रकार इसकी अधिकता बतलायी गयी है ।

इस प्रकार **'लोकमें एक देव कौन है ?'** यहाँसे लेकर **जीव किसका जप करनेसे मुक्त हो जाता है'** । इन छः प्रश्नोंके उत्तरमें **'जिससे सब भूत हुए हैं'** इत्यादि प्रश्नोत्तरोंसे जिस ब्रह्मका वर्णन किया है, वह 'विश्व' शब्दसे कहा जाता है—ऐसी व्याख्या की गयी है ।

अब 'वह विश्व कौन है ?' ऐसी जिज्ञासा होनेपर कहते हैं **'विष्णु'** । ऋग्वेदमें भी **तमु 'स्तोतारः पूर्व्यं यथाविद ऋतस्य गर्भं जनुषा पिपर्तन । आस्य जानन्तो नाम चिद्विवक्तन महस्ते विष्णो सुमतिं भजामहे'** इत्यादि श्रुतियोंसे सम्यक् ज्ञानकी प्राप्तिके लिये श्रीविष्णुके नामसंकीर्तनका विधान किया है । इस श्रुतिका अभिप्राय यह है कि हे स्तुति करनेवालो ! सत्यके सारभूत उस पुराणपुरुषको ही यथार्थ जानकर जन्मकी समाप्ति करो । इन विष्णुके नामोंको जानते हुए उनका उच्चारण भी करते रहो । अन्य लोग उनका जप करें चाहे न करें, परन्तु हम तो हे विष्णो !

सुमतिं शोभनं महः भजामहे इति श्रुतेरभिप्रायः।

वेवेष्टि व्याप्नोतीति विष्णुः विषेर्व्याप्त्यभिधायिनो नुक्प्रत्ययान्तस्य रूपं विष्णुरिति। देशकालवस्तुपरिच्छेदशून्य इत्यर्थः।

'व्याप्ते मे रोदसी पार्थ
कान्तिश्चाभ्यधिका स्थिता।'
'क्रमणाच्चाप्यहं पार्थ
विष्णुरित्यभिसंज्ञितः॥'

इति महाभारते (शान्ति० ३४१। ४२-४३)।

'यच्च किञ्चिज्जगत् सर्वं
दृश्यते श्रूयतेऽपि वा।
अन्तर्बहिश्च तत् सर्वं
व्याप्य नारायणः स्थितः॥'

इत्यादिश्रुतेर्बृहन्नारायणे (१३। १। २)

'सर्वभूतस्थमेकं नारायणं कारणपुरुषमकारणं परं ब्रह्म शोकमोहविनिर्मुक्तं विष्णुं ध्यायन्न सीदति' इत्यात्मबोधोपनिषदि (१)

विशतेर्वा नुक्प्रत्ययान्तस्य रूपं विष्णुरिति।

आपके सुन्दर तेज और सुमतिको भजते हैं।

'वेवेष्टि' अर्थात् जो व्याप्त हो, उसका नाम विष्णु है। व्याप्ति अर्थके वाचक नुक्प्रत्ययान्त 'विष्' धातुका रूप 'विष्णु' बनता है। तात्पर्य यह है कि वह देश-काल-वस्तुरूप त्रिविध परिच्छेदसे रहित है।

महाभारतमें कहा है—'हे पार्थ! पृथ्वी और आकाश मुझसे व्याप्त हैं तथा मेरा विस्तार भी बहुत है', 'हे पार्थ! इस विस्तारके कारण ही मैं विष्णु कहलाता हूँ।'

बृहन्नारायणोपनिषद्की श्रुति है—'जो कुछ भी संसार दिखायी या सुनायी देता है, श्रीनारायण उस सबको बाहर-भीतरसे व्याप्त करके स्थित हैं।'

आत्मबोधोपनिषद्में कहा है—'सर्वभूतोंमें स्थित, एक, एकाकार, कारकरूप, शोक-मोहादिसे रहित, परब्रह्म नारायण विष्णुका ध्यान करनेसे [मनुष्य] दुःख नहीं पाता।'

अथवा नुक्प्रत्ययान्त विश् धातुका रूप विष्णु है; जैसा कि विष्णुपुराणमें

'यस्माद्विष्टमिदं सर्वं
तस्य शक्त्या महात्मनः ।
तस्मादेवोच्यते विष्णु-
र्विशेर्धातोः प्रवेशनात् ॥'

इति विष्णुपुराणे (३ । १ । ४५) ।

यदुद्देशेनाध्वरे वषट् क्रियते स वषट्कारः । **यस्मिन्यज्ञे वा वषट्क्रिया स वषट्कारः** 'यज्ञो वै विष्णुः' (तै० सं० १ । ७ । ४) **इति श्रुतेर्यज्ञो वषट्कारः । येन वषट्कारादिमन्त्रात्मना वा देवान्प्रीणयति स वषट्कारः । देवता वा,** 'प्रजापतिश्च वषट्कारश्च' **इति श्रुतेः ।**

'चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च
द्वाभ्यां पञ्चभिरेव च ।
हूयते च पुनर्द्वाभ्यां
स मे विष्णुः प्रसीदतु ॥'

इत्यादिस्मृतेश्च ।

भूतं च भव्यं च भवच्च **भूत-भव्य भवन्ति तेषां प्रभुः** भूत-भव्यभवत्प्रभुः **कालभेदमनादृत्य सन्मात्रप्रतियोगिकमैश्वर्यमस्येति**

कहा है—'उस महात्माकी शक्ति इस सम्पूर्ण विश्वमें प्रवेश किये हुए है; इस लिये वह विष्णु कहलाता है, क्योंकि विश् धातुका अर्थ प्रवेश करना है।'

जिसके उद्देश्यसे यज्ञमें 'वषट्' किया जाता है, उसे 'वषट्कार' कहते हैं अथवा 'यज्ञ ही विष्णु है' इस श्रुतिके अनुसार जिस यज्ञमें वषट् क्रिया होती है, वह यज्ञ वषटकार है । अथवा जिस वषटकारादि मन्त्ररूपसे देवताओं-को प्रसन्न किया जाता है, वही वषट्कार है । अथवा **'प्रजापतिश्च वषट्कारश्च'** इस श्रुतिके तथा '-चार[1], चार[2], दो[3], पाँच[4] और दो[5] अक्षर-वाले मन्त्रोंसे जिनका यजन किया जाता है, वे विष्णु भगवान् मुझपर प्रसन्न हों ।' इस स्मृतिके अनुसार देवता ही वषट्कार है ।

भूत, भव्य (भविष्यत्) और भवत (वर्तमान) इनका नाम भूतभव्यभवत है, उनका जो प्रभु हो, वह भूतभव्य-भवत्प्रभु कहलाता है । इस देवका सन्मात्रप्रतियोगिक ऐश्वर्य* काल-

१ ओश्रावय, २ अस्तु श्रौषट्, ३ यज, ४ ये यजामहे, ५ वषट् ।

* जो ऐश्वर्य केवल सत्तामात्र ही है ।

प्रभुत्वम् ।

रजोगुणं समाश्रित्य विरिञ्चिरूपेण भूतानि करोतीति भूतकृत् । तमोगुणमास्थाय स रुद्रात्मना भूतानि कृन्तति कृणोति हिनस्तीति भूतकृत् ।

सत्त्वगुणमधिष्ठाय भूतानि बिभर्ति पालयति धारयति पोषयतीति वा भूतभृत् ।

प्रपञ्चरूपेण भवतीति, केवलं भवतीत्येव वा भावः । भवनं भावः सत्तात्मको वा ।

भूतात्मा भूतानामात्मान्तर्यामीति भूतात्मा 'एष त आत्मान्तर्याम्यमृतः' (बृ० उ० ३ । ७ । ३-२२) इति श्रुतेः ।

भूतानि भावयति जनयति वर्धयतीति वा भूतभावनः ॥ १४ ॥

भेदकी उपेक्षा करके रहता है, इसलिये यह प्रभु है ।

रजोगुणका आश्रय लेकर यह ब्रह्मारूपसे भूतोंकी रचना करता है, इसलिये भूतकृत् है । अथवा तमोगुणको स्वीकार कर रुद्ररूपसे भूतोंको काटता अर्थात् उनकी हिंसा करता है, इसलिये भूतकृत् है ।

सत्त्वगुणके आश्रयसे भूतोंका भरण-पालन—धारण अथवा पोषण करता है, इसलिये भूतभृत् है ।

प्रपञ्चरूपसे उत्पन्न होता है अथवा केवल है ही, इसलिये भाव है । उत्पन्न होनेका नाम भाव है अथवा सत्तामात्रको भी भाव कहते हैं ।

भूतात्मा—'यह तेरा आत्मा अन्तर्यामी और अमर है', इस श्रुतिके अनुसार भूतोंका आत्मा अर्थात् अन्तर्यामी होनेसे भूतात्मा है ।

भूतोंकी भावना करता है अर्थात् उनकी उत्पत्ति या वृद्धि करता है, इसलिये भूतभावन है ॥ १४ ॥

पूतात्मा परमात्मा च मुक्तानां परमा गतिः ।
अव्ययः पुरुषः साक्षी क्षेत्रज्ञोऽक्षर एव च ॥ १५ ॥

१० पूतात्मा, ११ परमात्मा, च, १२ मुक्तानाम्, परमा, गतिः ।
१३ अव्ययः, १४ पुरुषः, १५ साक्षी, १६ क्षेत्रज्ञः, १७ अक्षरः, एव, च ॥

भूतकृदादिभिर्गुणतन्त्रत्वं प्राप्तं प्रतिषिध्यते पूतात्मा **इति, पूत आत्मा यस्य स पूतात्मा, कर्मधारयो वा 'केवलो** निर्गुणश्च' (श्वे० उ० ६ । ११) **इति श्रुतेः । गुणोपरागः स्वेच्छातः पुरुषस्येति कल्प्यते ।**

भूतकृत् आदि नामोंसे उसमें गुणाधीनताका दोष प्राप्त होता है, अतः अब पूतात्मा (पवित्रस्वरूप) कहकर उस (दोष) का प्रतिषेध करते हैं । पूतात्मा—पवित्र है आत्मा (स्वरूप) जिसका, उसे पूतात्मा कहते हैं अथवा यहाँ कर्मधारय समास है* 'वह केवल और निर्गुण है' इस श्रुतिसे भी यही सिद्ध होता है । पुरुषका गुणोंके साथ सम्बन्ध स्वेच्छासे ही माना जाता है ।

परमश्चासावात्मा चेति परमात्मा **कार्यकारणविलक्षणो नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावः ।**

जो परम (श्रेष्ठ) हो तथा आत्मा भी हो, उसका नाम परमात्मा है । यह कार्य-कारणसे भिन्न नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त-स्वभाव है ।

मुक्तानां परमा प्रकृष्टा गतिर्गन्तव्या देवता पुनरावृत्त्यसम्भवात्तद्गतस्येति मुक्तानां परमा गतिः ।

'मामुपेत्य तु कौन्तेय
पुनर्जन्म न विद्यते ॥'
(गीता ८ । १६)

इति भगवद्वचनम् ।

मुक्त पुरुषोंकी जो परम अर्थात् सर्वश्रेष्ठ गति—गन्तव्य देव है, वह मुक्तानां परमा गतिः (मुक्तोंकी परमा गति) कहलाता है, क्योंकि वहाँ पहुँचे हुएका फिर लौटना नहीं होता । भगवान्‌ने भी कहा है—'हे कौन्तेय ! मुझे प्राप्त होकर पुनर्जन्म नहीं होता ।'

न व्येति नास्य व्ययो विनाशो

जो वीत नहीं होता अर्थात् जिसका

* तब यह अर्थ होगा—'जो पवित्र हो और आत्मा भी हो, वह पूतात्मा है ।'

विकारो वा विद्यत इति 'अव्ययः', 'अजरोऽमरोऽव्ययः' इति श्रुतेः।

पुरं शरीरं तस्मिन् शेते पुरुषः।

'नवद्वारं पुरं पुण्य-
मेतैर्भावैः समन्वितम्।
व्याप्य शेते महात्मा य-
स्तस्मात् पुरुष उच्यते ॥'

इति महाभारते । (शान्ति० २१० । ३७)

यद्वा अस्तेर्व्यस्ताक्षरयोगाद् आसीत् पुरा पूर्वमेवेति विग्रहं कृत्वा व्युत्पादितः पुरुषः । 'पूर्वमेवाहमिहासमिति तत् पुरुषस्य पुरुषत्वम्' इति श्रुतेः ।

अथवा पुरुषु भूरिषु उत्कर्षशालिषु सत्त्वेषु सीदतीति, पुरूणि फलानि सनोति ददातीति वा, पुरूणि भुवनानि संहारसमये स्यति अन्तं करोतीति वा, पूर्णत्वात् पूरणाद्वा सदनाद्वा पुरुषः 'पुरणात्सदनाच्चैव ततोऽसौ पुरुषोत्तमः' इति पञ्चमवेदे (उद्योग० ७० । ११) ।

साक्षादव्यवधानेन स्वरूपबोधे

व्यय—विनाश या विकार नहीं होता, वह अव्यय है । श्रुति कहती है—'अजर है, अमर है, अव्यय है' इत्यादि ।

पुर अर्थात् शरीर, उसमें जो शयन करे वह पुरुष कहलाता है । महाभारतमें कहा है—'वह महात्मा इन पूर्वोक्त भावोंसे युक्त नौ द्वारवाले पवित्र पुरको व्याप्त करके शयन करता है, इसलिये महापुरुष कहलाता है ।'

अथवा अस् धातुके अक्षरोंको उलटा करके 'पुरा' शब्दके साथ जोड़कर पुरा यानी पहलेसे ही 'आसीत्' था—ऐसा पदच्छेद मानकर यह 'पुरुष' शब्द सिद्ध हुआ है । जैसा कि श्रुति कहती है 'मैं यहाँ पूर्वमें ही था । यही उस पुरुषका पुरुषत्व है ।'

अथवा पुरु अर्थात् बहुत-से उत्कर्षशाली सत्त्वों (जीवों) में स्थित है, इसलिये या अधिक फल देता है इसलिये, अथवा संहारके समय प्रचुर भुवनोंको नष्ट करता है इसलिये, अथवा पूर्ण होने, पूरित करने या स्थित होनेके कारण वह पुरुष है । पञ्चम वेद (महाभारत)में भी कहा है—'पूर्ण करने और स्थित होनेके कारण यह पुरुषोत्तम है ।'

साक्षात् अर्थात् बिना किसी

न ईक्षते पश्यति सर्वमिति साक्षी 'साक्षाद्द्रष्टरि संज्ञायाम्' (पा० सू० ५ । २ । ९१) इति पाणिनिवचनादिनिप्रत्ययः ।

क्षेत्रं शरीरं जानातीति क्षेत्रज्ञः; आतोऽनुपसर्गे कः' (पा० सू० ३ । २ । ३) इति कप्रत्ययः 'क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि' (गीता १३ । २) **इति भगवद्वचनात्** ।

'क्षेत्राणि हि शरीराणि
बीजं चापि शुभाशुभम् ।
तानि वेत्ति स योगात्मा
ततः क्षेत्रज्ञ उच्यते ॥'

इति महाभारते (शान्ति० ३५१ । ६) ।

स एव न क्षरतीति अक्षरः **परमात्मा । अश्नातेरश्नोतेर्वा सरप्रत्ययान्तस्य रूपमक्षर इति ।**

एवकारात् क्षेत्रज्ञाक्षरयोरभेदः परमार्थतः, 'तत्त्वमसि' (छा० उ० ६ । ८) **इति श्रुतेः चकाराद्व्यावहारिको भेदश्च, प्रसिद्धेरप्रमाणत्वात्** ॥ १५ ॥

व्यवधानके अपने स्वरूपभूत ज्ञानसे सब कुछ देखता है, इसलिये साक्षी है। **'साक्षाद्द्रष्टरि संज्ञायाम्'** इस पाणिनिके वचनसे यहाँ इनिप्रत्यय हुआ है ।

क्षेत्र अर्थात् शरीरको जानता है, इसलिये **क्षेत्रज्ञ है । 'आतोऽनुपसर्गे कः'** इस सूत्रके अनुसार यहाँ 'क' प्रत्यय हुआ है । **'क्षेत्रज्ञ भी मुझे ही जान'** भगवान्‌के इस वचनसे [क्षेत्रज्ञ है]। तथा महाभारतमें भी कहा है- **'शरीर ही क्षेत्र हैं, शुभाशुभ कर्म उनका बीज है । वह योगात्मा उन्हें जानता है, इसलिये क्षेत्रज्ञ कहलाता है ।'**

जो क्षर अर्थात् क्षीण नहीं होता, वह अक्षर परमात्मा है । 'अश' या 'अशू' धातुके अन्तमें 'सर' प्रत्यय होनेपर 'अक्षर' रूप बनता है ।

'एव' शब्दसे यह दिखलाया है कि **'तत्त्वमसि'** इस श्रुतिके अनुसार परमार्थतः क्षेत्रज्ञ और अक्षरका अभेद है तथा चकारसे दोनोंका व्यावहारिक भेद दिखलाया है, क्योंकि प्रसिद्धि प्रामाणिक नहीं होती ॥ १५ ॥

योगो योगविदां नेता प्रधानपुरुषेश्वरः ।
नारसिंहवपुः श्रीमान् केशवः पुरुषोत्तमः ॥ १६ ॥

१८ योगः, १९ योगविदाम्, नेता, २० प्रधानपुरुषेश्वरः ।
२१ नारसिंहवपुः, २२ श्रीमान्, २३ केशवः, २४ पुरुषोत्तमः ॥

योगः—

'ज्ञानेन्द्रियाणि सर्वाणि
निरुध्य मनसा सह ।
एकत्वभावना योगः
क्षेत्रज्ञपरमात्मनोः ॥'

तदवाप्यतया योगः ।

योग—

'मनके सहित समस्त ज्ञानेन्द्रियोंको रोककर क्षेत्रज्ञ और परमात्माकी एकत्व-भावनाका नाम योग है ।' उससे प्राप्य होनेके कारण परमात्माका नाम भी योग है ।

योगं विदन्ति विचारयन्ति, जानन्ति, लभन्त इति वा योगविदस्तेषां नेता ज्ञानिनां योगक्षेमवहनादिनेति योगविदाम् नेता ।

'तेषां नित्याभियुक्तानां
योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥'
(९ । २२)

इति भगवद्वचनात् ।

जो योगको जानते हैं अर्थात् उसका विचार करते, उसे जानते या प्राप्त करते हैं, वे योगविद् कहलाते हैं, उन ज्ञानियोंका योगक्षेमादि निर्वाह करनेके कारण जो नेता है, वह योगविदां नेता (योगवेत्ताओंका नेता) कहलाता है । जैसा कि 'मैं उन नित्ययुक्तोंका योगक्षेम वहन करता हूँ' इस भगवान्के वचनसे सिद्ध होता है ।

प्रधानं प्रकृतिर्माया; पुरुषो जीवस्तयोरीश्वरः प्रधानपुरुषेश्वरः ।

प्रधान अर्थात् प्रकृति—माया तथा पुरुष—जीव, उन दोनोंका जो स्वामी है, वह प्रधानपुरुषेश्वर है ।

नरस्य सिंहस्य चावयवा यस्मिन् लक्ष्यन्ते तद्वपुर्यस्य स नारसिंहवपुः ।

जिसमें नर और सिंह दोनोंके अवयव दिखलायी देते हों, ऐसा जिसका शरीर हो, वह नारसिंहवपु है ।

यस्य वक्षसि नित्यं वसति श्रीः स श्रीमान् ।

जिसके वक्षःस्थलमें सर्वदा श्री बसती है, वह श्रीमान् है ।

अभिरूपाः केशा यस्य स

जिसके केश सुन्दर हों, उसे केशव

केशवः 'केशाद्वोऽन्यतरस्याम्' (पा० सू० ५ । २ । १०९) इति वप्रत्ययः प्रशंसायाम् । यद्वा कश्च अश्च ईशश्च त्रिमूर्तयः केशास्ते यद्वशेन वर्तन्ते स केशवः केशिवधाद्वा ।

'यस्मात्त्वयैष दुष्टात्मा
हतः केशी जनार्दन ।
तस्मात्केशवनाम्ना त्वं
लोके ख्यातो भविष्यसि ॥'

इति विष्णुपुराणे (५ । १६ । २३) श्रीकृष्णं प्रति नारदवचनम् । पृषोदरादित्वाच्छब्दसाधुत्वकल्पना ।

कहते हैं । यहाँ 'केशाद्वोऽन्यतरस्याम्' इस पाणिनिसूत्रसे प्रशंसा-अर्थमें 'व' प्रत्यय हुआ है । अथवा क (ब्रह्मा), अ (विष्णु) और ईश (महादेव)—ये तीनों मूर्ति ही केश हैं । ये जिनके अधीन हैं, वे भगवान् केशव हैं । अथवा केशीका वध करनेके कारण केशव हैं; जैसा कि विष्णुपुराणमें श्रीकृष्णचन्द्रसे नारदजीका वचन है—'हे जनार्दन! आपके हाथसे यह दुष्टचित्त केशी मारा गया है, इसलिये आप लोकमें केशव नामसे प्रसिद्ध होंगे ।' 'पृषोदरादि*' गणमें होनेके कारण इस (केशव) शब्दके साधनकी कल्पना की गयी है ।

* 'पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्' (६ । ३ । १०९) यह पाणिनिसूत्र है । इसका भाव यह है कि पृषोदर आदि शब्द जिस प्रकार शिष्ट पुरुषोंसे व्यवहार किये गये हैं, उसी प्रकार शुद्ध हैं । 'पृषत् और उदर' मिलकर 'पृषोदर' शब्द बनता है । इसमें तकारका लोप और सन्धि रूढिसे ही हुए हैं । इसी प्रकार वारिवाहकका बलाहक बनता है । यही नियम जीमूत, श्मशान, उलूखल और पिशाच आदि शब्दोंमें भी है । मनोरमामें भी कहा है 'पृषोदर-प्रकाराणि शिष्टैर्यथोच्चारितानि तथैव साधूनि स्युः' अर्थात् पृषोदर आदि शब्दोंको शिष्ट पुरुषोंने जिस प्रकार उच्चारण किया है, वे उसी प्रकार ठीक हैं ।

महाभाष्यकारने भी कहा है—'येषु लोपागमवर्णविकाराः श्रूयन्ते न चोच्यन्ते तानि पृषोदरप्रकाराणि' अर्थात् जिनमें वर्णोंके लोप, आगम अथवा विकार सुने जायँ किन्तु उनका शास्त्रमें कोई निरूपण न हो, वे शब्द पृषोदर आदिके समान कहे जाते हैं ।

केशव शब्द भी नारदके कथनानुकूल 'केशीका वध करनेवाला' इस अर्थके अनुसार केशीवधक होना चाहिये, किन्तु पृषोदरादिके समान 'ई' के स्थानपर 'अ' तथा वधके स्थानपर 'व' की कल्पना करके केशव सिद्ध किया गया है । इसी प्रकार अन्य अर्थोंमें भी केशव शब्दका प्रयोग शुद्ध है ।

पुरुषाणामुत्तमः पुरुषोत्तमः अत्र 'न निर्धारणे' (पा०सू० २।२।१०) इति षष्ठीसमासप्रतिषेधो न भवति जात्याद्यनपेक्षया समर्थत्वात् । यत्र पुनर्जातिगुणक्रियापेक्षया पृथक्क्रिया तत्रासमर्थत्वान्निषेधः प्रवर्तते, यथा—मनुष्याणां क्षत्रियः शूरतमः, गवां कृष्णा गौः सम्पन्नक्षीरतमा, अध्वगानां धावन् शीघ्रतम इति । अथवा पञ्चमीसमासः, तथा च भगवद्वचनम्—

'यस्मात्क्षरमतीतोऽह-
मक्षरादपि चोत्तमः ।
अतोऽस्मि लोके वेदे च
प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥'
(गीता १५ । १८) ॥१६॥

पुरुषोंमें उत्तमको **'पुरुषोत्तम'** कहते हैं । यहाँ **'न निर्धारणे'** इस सूत्रके अनुसार षष्ठी समासका प्रतिषेध नहीं होता, क्योंकि यहाँ किसी जाति, गुण और क्रियाकी अपेक्षा न होनेसे समास-विधानका सामर्थ्य है (अतएव यहाँ षष्ठी समासके प्रतिषेधका नियम नहीं लग सकता) । जहाँ जाति, गुण और क्रियाकी अपेक्षासे किसीका समुदायसे पृथक्करण होता है, वहाँ सामर्थ्य न होनेसे यह निषेधवचन लागू होता है; जैसे—मनुष्योंमें क्षत्रिय सबसे अधिक शूरवीर होता है, गौओंमें कृष्णा गौ स्वादिष्ट दूधवाली होती है, यात्रियोंमें दौड़नेवाला सबसे तेज होता है ।* अथवा यहाँ [पुरुषोंसे श्रेष्ठ ऐसा] पञ्चमी समास समझना चाहिये; जैसा कि भगवान्‌का वचन है—**'मैं क्षरसे परे और अक्षरसे भी उत्तम हूँ, इसलिये लोक और वेदमें पुरुषोत्तम नामसे प्रसिद्ध हूँ'** ॥ १६ ॥



सर्वः शर्वः शिवः स्थाणुर्भूतादिर्निधिरव्ययः ।
सम्भवो भावनो भर्ता प्रभवः प्रभुरीश्वरः ॥ १७ ॥

* इन वाक्योंमें क्षत्रिय जाति, कृष्ण गुण तथा दौड़ना क्रियाके द्वारा क्रमशः मनुष्य, गौ और यात्री समुदायसे व्यक्ति-विशेषकी पृथक्ता बतलायी गयी है, इसलिये यहाँ षष्ठी समास नहीं हो सकता, परंतु पुरुषोत्तम शब्दमें यह बात नहीं है ।

२५ सर्वः, २६ शर्वः, २७ शिवः, २८ स्थाणुः, २९ भूतादिः, ३० निधिः, अव्ययः
३१ सम्भवः, ३२ भावनः, ३३ भर्ता, ३४ प्रभवः, ३५ प्रभुः, ३६ ईश्वरः

'असतश्च सतश्चैव
सर्वस्य प्रभवाप्ययात् ।
सर्वस्य सर्वदा ज्ञानात्
सर्वमेनं प्रचक्षते ॥'
(महा० उद्योग० ७०।११)

इति भगवद्व्यासवचनात् सर्वः ।

श‍ृणाति संहारसमये संहरति संहारयति सकलाः प्रजाः इति शर्वः ।

निस्त्रैगुण्यतया शुद्धत्वात् शिवः 'स ब्रह्मा स शिवः' (कै० उ० ८) इत्यभेदोपदेशाच्छिवादिनामभिर्हरिरेव स्तूयते ।

स्थिरत्वात् स्थाणुः ।

भूतानामादिकारणत्वाद् भूतादिः ।

प्रलयकालेऽस्मिन् सर्वं निधीयत इति निधिः । 'कर्मण्यधिकरणे च' (पा० सू० ३।३।९३) इति किप्रत्ययः स एव निधिर्विशेष्यते—अव्ययः अविनश्वरो निधिरित्यर्थः ।

*

'असत् और सत् सबकी उत्पत्ति स्थिति और प्रलयका स्थान होने तथा सर्वदा सबको जाननेके कारण इसे सर्व कहते हैं, भगवान् व्यासके इस वचनानुसार भगवान् सर्व हैं ।

समस्त प्रजाको शीर्ण करते अर्थात् प्रलयकालमें संहार करते या करवाते हैं, इसलिये शर्व हैं ।

तीनों गुणोंसे रहित होनेके कारण शुद्ध होनेसे शिव हैं । 'वह ब्रह्मा है, वह शिव है' इस प्रकार अभेद बतलानेके कारण शिव आदि नामोंसे भी हरिहीकी स्तुति की जाती है ।

स्थिर होनेके कारण स्थाणु हैं ।

'भूतोंके आदिकारण होनेसे भूतादि हैं ।

प्रलयकालमें, सब प्राणी इन्हींमें स्थित होते हैं, इसलिये निधि हैं 'कर्मण्यधिकरणे च' इस सूत्रके अनुसार यहाँ कि प्रत्यय हुआ है । अब निधि शब्दको ही [अव्ययरूप विशेषणसे] विशिष्ट करते हैं —वह अव्यय अर्थात् अविनाशी निधि हैं ।

स्वेच्छया समीचीनं भवनमस्येति सम्भवः 'धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे' (गीता ४ । ८) इति भगवद्वचनात् ।

'अथ दुष्टविनाशाय
साधूनां रक्षणाय च ।
स्वेच्छया सम्भवाम्येवं
गर्भदुःखविवर्जितः ॥'

इति च ।

अपनी इच्छासे भली प्रकार उत्पन्न होते हैं, इसलिये सम्भव हैं । भगवान्‌के ये वचन भी हैं—'मैं धर्मकी स्थापना करनेके लिये युग-युगमें उत्पन्न होता हूँ' तथा 'मैं दुष्टोंका नाश करनेके लिये और साधुओंकी रक्षाके लिये इसी प्रकार अपनी इच्छासे गर्भदुःखके बिना ही उत्पन्न होता हूँ ।'

सर्वेषां भोक्तॄणां फलानि भावयतीति भावनः सर्वफलदातृत्वम् 'फलमत उपपत्तेः' (ब्र० सू० ३।२।३८) इत्यत्र प्रतिपादितम् ।

समस्त भोक्ताओंके फलोंको उत्पन्न करते हैं इसलिये भावन हैं । 'फलमत उपपत्तेः' [ब्रह्मसूत्रके] इस सूत्रमें भगवान्‌के सर्वफलदातृत्वका प्रतिपादन किया गया है ।

प्रपञ्चस्याधिष्ठानत्वेन भरणात् भर्ता ।

अधिष्ठानरूपसे प्रपञ्चका भरण करनेके कारण भर्ता हैं ।

प्रकर्षेण महाभूतानि अस्माज्जायन्त इति प्रभवः प्रकृष्टो भवो जन्मास्येति वा ।

समस्त महाभूत भली प्रकार उन्हींसे उत्पन्न होते हैं, इसलिये वे प्रभव हैं । अथवा उनका भव यानी जन्म प्रकृष्ट (दिव्य) है, इसलिये वे प्रभव हैं ।

सर्वासु क्रियासु सामर्थ्यातिशयात् प्रभुः ।

समस्त क्रियाओंमें उनकी सामर्थ्यकी अधिकता होनेके कारण वे प्रभु है ।

निरुपाधिकमैश्वर्यमस्येति ईश्वरः 'एष सर्वेश्वरः' (माण्डू० ६) इति श्रुतेः ॥१७॥

भगवान्‌का ऐश्वर्य उपाधिरहित है, अतः वे ईश्वर हैं; जैसा कि श्रुति भी कहती है—'यह सर्वेश्वर है' ॥१७॥

स्वयम्भूः शम्भुरादित्यः पुष्कराक्षो महास्वनः ।
अनादिनिधनो धाता विधाता धातुरुत्तमः ॥ १८ ॥

३७ स्वयम्भूः, ३८ शम्भुः, ३९ आदित्यः, ४० पुष्कराक्षः, ४१ महास्वनः ४२ अनादिनिधनः, ४३ धाता, ४४ विधाता, ४५ धातुरुत्तमः

स्वयमेव भवतीति स्वयम्भूः 'स एव स्वयमुद्बभौ' (मनु० १ । ७) इति मानवं वचनम् । सर्वेषामुपरि भवति स्वयं भवतीति वा स्वयम्भूः । येषामुपरि भवति यश्चोपरि भवति तदुभयात्मना स्वयमेव भवतीति वा 'परिभूः स्वयम्भूः' (ई० उ० ८) इति मन्त्रवर्णात् । अथवा स्वयम्भूः परमेश्वरः स्वयमेव स्वतन्त्रो भवति न परतन्त्रः 'पराञ्चि खानि व्यतृणत् स्वयम्भूः (क० उ० २ । ४ । १) इति मन्त्रवर्णात् ।

शं सुखं भक्तानां भावयतीति शम्भुः ।

आदित्यमण्डलान्तःस्थो हिरण्मयः पुरुषः आदित्यः द्वादशादित्येषु विष्णुर्वा 'आदित्यानामहं विष्णुः' (गीता १० । २१) इत्युक्तेः ।

स्वयं ही होते हैं, इसलिये स्वयम्[भू] हैं; मनुजीने कहा है कि 'वही स्[वयं] प्रकट हुआ ।' अथवा सबके ऊपर [होते हैं] या स्वयं होते हैं; इसलिये स्वय[म्भू] हैं । जिनके ऊपर होते हैं या [जो] ऊपर होते हैं—इन दोनों रूपसे स्[वयं] ही प्रकट होते हैं, इसलिये स्वय[म्भू] हैं, जैसा कि यह मन्त्रवर्ण है—'स[ब] ओर होनेवाला, स्वयं होनेवाला है'; अथवा 'स्वयम्भू (परमात्मा) [ने] इन्द्रियोंको बहिर्मुख बनाकर, उ[न्हें] नष्ट कर दिया' इस मन्त्रव[र्णके] अनुसार स्वयम्भू परमात्मा स्व[यं] अर्थात् स्वतन्त्र होते हैं, परत[न्त्र] नहीं ।

भक्तोंके लिये सुखकी भा[वना] अर्थात् उत्पत्ति करते हैं इसलि[ये] शम्भु हैं ।

आदित्यमण्डलमें स्थित हिरण्[मय] पुरुषका नाम आदित्य है । अ[थवा] 'आदित्योंमें मैं विष्णु हूँ' [इस] भगवद्वचनके अनुसार द्वादश* आदित्योंमें विष्णु नामक आदित्य

* द्वादश आदित्योंके नाम ये हैं—शक्र, अर्यमा, धाता, त्वष्टा, पूषा, विवस्[वान्], सविता, मित्र, वरुण, अंशुमान्, भग और विष्णु ।

अदितेरखण्डिताया मह्या अयं पतिरिति वा 'इयं वा अदितिः', 'महीं देवीं विष्णुपत्नीम्' इति श्रुतेः। यथादित्य एक एवानेकेषु जलभाजनेषु अनेकवत् प्रतिभासते, एवमनेकेषु शरीरेषु एक एवात्मानेकवत् प्रतिभासत इति आदित्यसाधर्म्याद्वा आदित्यः।

आदित्य कहा गया है। अथवा भगवान् विष्णु अदिति अर्थात् अखण्डिता पृथ्वीके पति हैं इसलिये आदित्य हैं, जैसा कि 'यह अदिति है', 'विष्णु-पत्नी भगवती पृथिवीको' इस श्रुतिसे सिद्ध होता है। अथवा, जैसे एक ही आदित्य अनेक जलपात्रोंमें प्रतिबिम्बित होकर अनेक-सा प्रतीत होता है, वैसे ही एक ही आत्मा अनेक शरीरोंमें अनेक-सा जान पड़ता है। इस प्रकार आदित्यकी समताके कारण आदित्य हैं।

पुष्करेणोपमिते अक्षिणी यस्येति पुष्कराक्षः।

जिनके नेत्र पुष्कर (कमल) की उपमावाले हैं, इस व्युत्पत्तिके अनुसार भगवान् पुष्कराक्ष हैं।

महानूर्जितः स्वनो नादो वा श्रुतिलक्षणो यस्य स महास्वनः 'सन्महत्....' (पा० सू० २।१।६१) इत्यादिना समासे कृते 'आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः' (पा० सू० ६।३।४६) इत्यात्वम् 'अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद् ऋग्वेदो यजुर्वेदः' (बृ० उ० २।४।१०) इति श्रुतेः।

भगवान्‌का वेदरूप अति महान् स्वर या घोष होनेके कारण वे महास्वन हैं; जैसा कि श्रुति कहती है---'इस महाभूतके ऋग्वेद और यजुर्वेद श्वास-प्रश्वास हैं।' 'सन्महत्....' इत्यादि सूत्रसे समास करनेपर 'आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः' इस नियमके अनुसार महत्‌के तकारको आ आदेश हुआ है।

आदिर्जन्म; निधनं विनाशः, तद्द्वयं यस्य न विद्यते स अनादिनिधनः।

जिनके आदि-जन्म और निधन--विनाश ये दोनों नहीं हैं, वे भगवान् अनादिनिधन हैं।

अनन्तादिरूपेण विश्वं बिभर्तीति धाता।

अनन्त (शेषनाग) आदिके रूपसे विश्वको धारण करते हैं, इसलिये धाता हैं।

कर्मणां तत्फलानां च कर्ता विधाता ।

अनन्तादीनामपि धारकत्वाद् विशेषेण दधातीति वा धातुरुत्तमः **इति नामैकं सविशेषणं सामानाधिकरण्येन; सर्वधातुभ्यः पृथिव्यादिभ्य उत्कृष्टश्चिद्धातुरित्यर्थः । धातुर्विरिञ्चेरुत्कृष्ट इति वा वैयधिकरण्येन ।**

नामद्वयं वा; कार्यकारणप्रपञ्चधारणाच्चिदेव धातुः । उत्तमः सर्वेषामुद्गतानामतिशयेनोद्गतत्वादुत्तमः ॥ १८ ॥

कर्म और उसके फलोंकी सृष्टि करते हैं, इसलिये विधाता हैं ।

अनन्तादिकोंको भी धारण करते हैं, अथवा विशेषरूपसे सबको धारण करते हैं, इसलिये धातुरुत्तम हैं । यह समानाधिकरणरूपसे विशेषणसहित एक नाम है । तात्पर्य यह है कि चिद्धातु पृथिवी आदि समस्त धातुओं (धारण करनेवालों) से श्रेष्ठ है । अथवा धाता-ब्रह्मासे भी श्रेष्ठ है, इस प्रकार व्यधिकरणरूपसे विशेषण-सहित एक नाम है ।

अथवा दो नाम समझे जायँ तो कार्य-कारणरूप सम्पूर्ण प्रपञ्चको धारण करनेके कारण चेतनको ही 'धातु' कहा है और वह समस्त उत्कृष्ट पदार्थोंमें अत्यन्त श्रेष्ठ होनेके कारण 'उत्तम' है [ऐसा अर्थ करना चाहिये] ॥ १८ ॥

अप्रमेयो हृषीकेशः पद्मनाभोऽमरप्रभुः ।
विश्वकर्मा मनुस्त्वष्टा स्थविष्ठः स्थविरो ध्रुवः ॥ १९ ॥

४६ अप्रमेयः, ४७ हृषीकेशः, ४८ पद्मनाभः, ४९ अमरप्रभुः ।
५० विश्वकर्मा, ५१ मनुः, ५२ त्वष्टा, ५३ स्थविष्ठः, ५४ स्थविरः, ध्रुवः ॥

शब्दादिरहितत्वान्न प्रत्यक्षगम्यः, नाप्यनुमानविषयः,

शब्दादिरहित होनेके कारण भगवान् प्रत्यक्षप्रमाणके विषय नहीं हैं, व्याप्य

तद्व्याप्तलिङ्गाभावात् । नाप्युपमानसिद्धः निर्भागत्वेन सादृश्याभावात् । नाप्यर्थापत्तिग्राह्यः तद्विनानुपपद्यमानस्यासम्भवात् । नाप्यभावगोचरो भावत्वेन सम्मतत्वात् । अभावसाक्षित्वाच्च न षष्ठप्रमाणस्य । नापि शास्त्रप्रमाणवेद्यः प्रमाणजन्यातिशयाभावात् । यद्येवं शास्त्रयोनित्वं कथम् । उच्यते प्रमाणादिसाक्षित्वेन प्रकाशस्वरूपस्य प्रमाणाविषयत्वेऽपि अध्यस्तातद्रूपनिवर्तकत्वेन शास्त्रप्रमाणकत्वमिति अप्रमेयः साक्षिरूपत्वाद् वा ।

लिङ्गका अभाव होनेसे अनुमानके भी विषय नहीं हैं, भागरहित होनेसे सदृशताका अभाव होनेके कारण वे उपमानसे भी सिद्ध नहीं हो सकते, भगवान्‌के बिना कोई अनुपपद्यमान नहीं है इसलिये वे अर्थापत्ति प्रमाणके भी विषय नहीं हैं और भावरूप माने जानेसे तथा अभावके भी साक्षी होनेसे अभाव नामक छठे प्रमाणसे भी नहीं जाने जा सकते । तथा प्रमाणजन्य अतिशयका अभाव होनेके कारण वे शास्त्र-प्रमाणसे भी जानने योग्य नहीं हैं । यदि ऐसी बात है तो उनमें शास्त्रयोनित्व क्यों बतलाया गया है ? [ऐसी शङ्का होनेपर] कहते हैं—प्रमाणादिके भी साक्षी होनेके कारण प्रकाशस्वरूप भगवान् प्रमाणके विषय न होनेपर भी अध्यस्त जगत्‌का अनात्मरूपसे बाध कर देनेसे शास्त्रप्रमाणित हैं; इसलिये, अथवा साक्षी होनेके कारण वे अप्रमेय हैं ।

हृषीकाणीन्द्रियाणि, तेषामीशः क्षेत्रज्ञरूपभाक् । यद्वा, इन्द्रियाणि यस्य वशे वर्तन्ते स परमात्मा हृषीकेशः यस्य वा सूर्यरूपस्य चन्द्ररूपस्य च जगत्प्रीतिकरा हृष्टाः केशा रश्मयः स हृषीकेशः;

हृषीक इन्द्रियोंको कहते हैं, क्षेत्रज्ञरूप उनका स्वामी अथवा इन्द्रियाँ जिसके अधीन हैं, वह परमात्मा हृषीकेश है । या जिस सूर्य अथवा चन्द्रमारूप भगवान्‌के संसारको प्रफुल्लित करनेवाले किरणरूप केश हृष्ट अर्थात्

'सूर्यरश्मिर्हरिकेशः पुरस्तात्' इति श्रुतेः। **पृषोदरादित्वात्साधुत्वम्** यथोक्तं मोक्षधर्मे—

'सूर्याचन्द्रमसौ शश्व-
दंशुभिः केशसंज्ञितैः।
बोधयन् स्वापयंश्चैव
जगदुत्तिष्ठते पृथक्॥'
'बोधनात्स्वापनाच्चैव
जगतो हर्षणं भवेत्।
अग्नीषोमकृतैरेवं
कर्मभिः पाण्डुनन्दन।
हृषीकेशो महेशानो
वरदो लोकभावनः॥'
(महा० शान्ति० ३४२। ६६-६७)

इति।

खिले हुए हैं वे हृषीकेश हैं; जैसा कि श्रुति कहती है—'सूर्यकी किरणें आगेकी ओर हरिके केश हैं।' [हृष्टकेशके स्थानमें] 'हृषीकेश' शब्द पृषोदरादिगणमें होनेके कारण सिद्ध होता है; जैसा मोक्षधर्ममें कहा है—'सूर्य और चन्द्रमा अपनी केश नामकी किरणोंसे संसारको जगाते और सुलाते हुए उससे अलग उदित होते हैं।' 'उनके जगाने और सुलानेसे संसारको हर्ष होता है। हे पाण्डुनन्दन! इस प्रकार अग्नि और चन्द्रमाके किये हुए कर्मोंके करनेसे लोकभावन वरदायक महेश्वर हृषीकेश कहलाते हैं।'

सर्वजगत्कारणं पद्मं नाभौ यस्य स पद्मनाभः, 'अजस्य नाभावध्येकमर्पितम्' इति **श्रुतेः। पृषोदरादित्वात्साधुत्वम्।**

जिसकी नाभिमें जगत्‌का कारणरूप पद्म स्थित है, वे भगवान् **पद्मनाभ** हैं। श्रुति कहती है—'**अजकी नाभिमें एक (पद्म) अर्पित है।**' पृषोदरादिगणमें होनेके कारण [पद्मनाभिके स्थानमें] पद्मनाभ शब्द सिद्ध होता है।

अमराणां प्रभुः अमरप्रभुः।

अमरों (देवताओं) के प्रभु होनेसे **अमरप्रभु** हैं।

विश्वं कर्म क्रिया यस्य स विश्वकर्मा। **क्रियत इति जगत्कर्म**

विश्व (सब) जिसका कर्म अर्थात् क्रिया है, **उसे विश्वकर्मा** कहते हैं। अथवा, किया जाता है इसलिये जगत्

विश्वं कर्म यस्येति वा, विचित्रनिर्माणशक्तिमत्त्वाद्वा विश्वकर्मा; त्वष्ट्रा सादृश्याद्वा ।

कर्म है। वह विश्वरूप कर्म जिनका है, उन्हें विश्वकर्मा कहते हैं । अथवा विचित्र निर्माणशक्तिसे युक्त होनेके कारण भगवान् विश्वकर्मा हैं । अथवा त्वष्टाके* समान होनेके कारण भगवान्का नाम विश्वकर्मा है ।

मननात् मनुः । 'नान्योऽतोऽस्ति मन्ता' (बृ० उ० ३ । ७ । २३) इति श्रुतेः । मन्त्रो वा प्रजापतिर्वा मनुः ।

मनन करनेके कारण मनु हैं; जैसा कि श्रुति कहती है—'इससे पृथक् कोई और मनन करनेवाला नहीं है' अथवा मन्त्र या प्रजापतिरूपसे भगवान्का नाम मनु है ।

संहारसमये सर्वभूततनूकारणत्वात् त्वष्टा त्वक्षतेस्तनूकरणार्थात् तृच्प्रत्ययः ।

संहारके समय समस्त प्राणियोंको तनु (क्षीण) करनेके कारण वे त्वष्टा हैं । यहाँ तनूकरण अर्थवाले त्वक्ष् धातुसे तृच्प्रत्यय हुआ है ।

अतिशयेन स्थूलः स्थविष्ठः ।

अतिशय स्थूल होनेसे स्थविष्ठ हैं ।

पुराणः स्थविरः 'त्वेकं ह्यस्य स्थविरस्य नाम' इति बह्वृचाः; वयोवचनो वा स्थिरत्वाद् ध्रुवः स्थविरः ध्रुवः इत्येकमिदं नाम सविशेषणम् ॥ १९ ॥

पुरानेका नाम स्थविर है। बह्वृच कहते हैं 'इस स्थविरका एक नाम है।' अथवा आयुवाचकस्थविर (वृद्धावस्था) से तात्पर्य है। स्थिर होनेके कारण ध्रुव हैं । इस प्रकार यह स्थविरध्रुव विशेषणयुक्त एक नाम है ॥ १९ ॥

अग्राह्यः शाश्वतः कृष्णो लोहिताक्षः प्रतर्दनः ।
प्रभूतस्त्रिककुब्धाम पवित्रं मङ्गलं परम् ॥ २० ॥

* त्वष्टा नामक देवताको विश्वकर्मा भी कहते हैं ।

५५ अग्राह्यः, ५६ शाश्वतः, ५७ कृष्णः, ५८ लोहिताक्षः, ५९ प्रतर्दनः ।
६० प्रभूतः, ६१ त्रिककुब्धाम, ६२ पवित्रम्, ६३ मङ्गलम्, परम् ॥

कर्मेन्द्रियैर्न गृह्यते इति अग्राह्यः 'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह' (तै० उ० २ । ९) इति श्रुतेः ।

'जिसे प्राप्त न करके मनसहित वाणी लौट आती है' इस श्रुतिके अनुसार कर्मेन्द्रियोंसे ग्रहण नहीं किये जा सकते, इस कारण भगवान् अग्राह्य हैं ।

शश्वत् सर्वेषु कालेषु भवतीति शाश्वतः 'शाश्वतं शिवमच्युतम्' (ना० उ० १३ । १) इति श्रुतेः ।

जो शश्वत् अर्थात् सब कालमें हो, उसे शाश्वत कहते हैं । श्रुति कहती है—'शाश्वत शिव और अच्युत है ।'

'कृषिर्भूवाचकः शब्दो
णश्च निर्वृतिवाचकः ।
विष्णुस्तद्भावयोगाच्च
कृष्णो भवति शाश्वतः ॥'
(महा० उद्योग० ७० । ५)

इति व्यासवचनात् सच्चिदानन्दात्मकः कृष्णः ।

'कृष' शब्द सत्ताका वाचक है और 'ण' आनन्दका । श्रीविष्णुमें ये दोनों भाव हैं, इसलिये वे सर्वदा कृष्ण कहलाते हैं'—इस व्यासजीके वाक्यानुसार सच्चिदानन्दस्वरूप भगवान् ही कृष्ण हैं ।

कृष्णवर्णात्मकत्वाद्वा कृष्णः ।

'कृषामि पृथिवीं पार्थ
भूत्वा कार्ष्णायसो हलः ।
कृष्णो वर्णश्च मे यस्मा-
त्तस्मात् कृष्णोऽहमर्जुन ॥'

इति महाभारते । (शान्ति० ३४२ । ७९)

अथवा कृष्णवर्ण होनेसे कृष्ण हैं । महाभारतमें कहा है—'हे पार्थ ! मैं काले लोहेका हल होकर पृथ्वीको जोतता हूँ, तथा मेरा वर्ण कृष्ण है; इसलिये हे अर्जुन ! मैं कृष्ण हूँ ।'

लोहिते अक्षिणी यस्येति लोहिताक्षः 'असावृषभो लोहिताक्षः' **इति श्रुतेः ।**

जिनके लोहित (लाल) नेत्र हों, वे भगवान् लोहिताक्ष कहलाते हैं । श्रुति कहती है—'वह श्रेष्ठ एवं लाल आँखोंवाला है ।'

प्रलये भूतानि प्रतर्दयति हिनस्तीति प्रतर्दनः ।

प्रलयकालमें प्राणियोंकी तर्दना अर्थात् हिंसा करते हैं, इसलिये भगवान् प्रतर्दन हैं ।

ज्ञानैश्वर्यादिगुणैः सम्पन्नः प्रभूतः ।

ज्ञान, ऐश्वर्य आदि गुणोंसे सम्पन्न होनेसे भगवान् प्रभूत हैं ।

ऊर्ध्वाधोमध्यभेदेन तिसृणां ककुभामपि धामेति त्रिककुब्धाम इत्येकमिदं नाम ।

ऊपर, नीचे और मध्य-भेदवाली तीनों ककुभों (दिशाओं) के धाम (आश्रय) हैं, इसलिये भगवान् त्रिककुब्धाम हैं । यह एक नाम है ।

'येन पुनाति यो वा पुनाति ऋषिर्देवता वा तत् पवित्रम्' 'पुवः संज्ञायाम्' (पा० सू० ३ । २ । १८५) 'कर्तरि चर्षिदेवतयोः' (पा० सू० ३ । २ । १८६) इति भगवत्पाणिनिस्मरणात् इत्रप्रत्ययः ।

जिसके द्वारा पवित्र किया जाय अथवा जो पवित्र करे, उस ऋषि या देवताका नाम पवित्र है । यहाँ 'पुवः संज्ञायाम्' 'कर्तरि चर्षिदेवतयोः' इन पाणिनि-सूत्रोंके अनुसार पू धातुसे इत्र प्रत्यय हुआ है ।

'अशुभानि निराचष्टे तनोति शुभसन्ततिम् ।
स्मृतिमात्रेण यत् पुंसां ब्रह्म तन्मङ्गलं विदुः ॥'

'जो स्मरणमात्रसे पुरुषोंके अशुभोंको दूर कर देता है और शुभोंका विस्तार करता है, उस ब्रह्मको [ज्ञानीजन] मङ्गल समझते हैं ।'

इति श्रीविष्णुपुराणवचनात् कल्याणरूपत्वाद्वा मङ्गलम् । परं सर्वभूतेभ्यः उत्कृष्टं ब्रह्म । मङ्गलम्, परम् इत्येकमिदं नाम सविशेषणम् ॥ २० ॥

श्रीविष्णुपुराणके इस वचनके अनुसार कल्याणरूप होनेसे भगवान्का नाम मङ्गल है । समस्त भूतोंसे उत्तम होनेके कारण ब्रह्म पर है । इस प्रकार मङ्गलं परम् यह विशेषणयुक्त एक नाम है ॥ २० ॥

ईशानः प्राणदः प्राणो ज्येष्ठः श्रेष्ठः प्रजापतिः ।
हिरण्यगर्भो भूगर्भो माधवो मधुसूदनः ॥ २१ ॥

६४ ईशानः, ६५ प्राणदः, ६६ प्राणः, ६७ ज्येष्ठः, ६८ श्रेष्ठः, ६९ प्रजापतिः ।
७० हिरण्यगर्भः, ७१ भूगर्भः, ७२ माधवः, ७३ मधुसूदनः ॥

सर्वभूतनियन्तृत्वात् ईशानः ।

सर्वभूतोंके नियन्ता होनेके कारण भगवान् **ईशान** हैं ।

प्राणान् ददाति चेष्टयतीति वा प्राणदः 'को ह्येवान्यात् कः प्राण्यात्' (तै० उ० २ । ७) **इति श्रुतेः । यद्वा, प्राणान् कालात्मना द्यति खण्डयतीति प्राणदः, प्राणान् दीपयति शोधयतीति वा, प्राणान् ददाति लुनातीति वा प्राणदः ।**

प्राणोंको देते अथवा चेष्टा कराते हैं, इसलिये **प्राणद** हैं । श्रुति कहती है- '[**यदि ईश्वर न हो तो**] **कौन अपान-क्रिया करावे और कौन प्राणक्रिया करावे ?'** अथवा कालरूपसे प्राणोंको दलित अर्थात् खण्डित करते हैं, इसलिये प्राणद हैं । अथवा प्राणोंको दीप्त या शुद्ध करते हैं अथवा उन्हें देते या उच्छिन्न अर्थात् नष्ट करते हैं, इसलिये प्राणद हैं ।

प्राणितीति प्राणः **क्षेत्रज्ञः परमात्मा वा,** 'प्राणस्य प्राणम्' (बृ० उ० ४ । ४ । १८) **इति श्रुतेः । मुख्यप्राणो वा ।**

'जो प्राणन करे अर्थात् श्वास-प्रश्वास ले, उसका नाम **प्राण** है'-इस व्युत्पत्तिसे क्षेत्रज्ञ या परमात्माका नाम प्राण है । इस विषयमें **'वह प्राणका भी प्राण है'**—यह श्रुति-प्रमाण है, अथवा यहाँ मुख्य प्राणही-को प्राण कहा है ।

वृद्धतमो ज्येष्ठः 'ज्य च' (पा० सू० ५ । ३ । ६१) **इत्यधिकारे** 'वृद्धस्य च' (पा० सू० ५ । ३ । ६२) **इति वृद्ध-शब्दस्य ज्यादेशविधानात् ।**

अधिक वृद्धको **ज्येष्ठ** कहते हैं, क्योंकि **'ज्य च'** इस सूत्रके अधिकार-में पठित **'वृद्धस्य च'** इस पाणिनिसूत्र-के अनुसार वृद्ध शब्दको ज्य आदेश किया गया है ।

प्रशस्यतमः श्रेष्ठः 'प्रशस्यस्य श्रः' (पा० सू० ५ । ३ । ६०) इति आदेशविधानात् । 'प्राणो वाव ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च' (छा० उ० ५ । १ । १) इति श्रुतेः । मुख्यप्राणो वा, 'श्रेष्ठश्च' (ब्र० सू० २ । ४ । ८) इत्यधिकरणसिद्धत्वात् । सर्वकारणत्वाद् वा ज्येष्ठः, सर्वातिशयत्वाद् वा श्रेष्ठः ।

सबसे अधिक प्रशंसनीयका नाम **श्रेष्ठ** है । क्योंकि वहाँ **'प्रशस्यस्य श्रः'** इस सूत्रसे प्रशस्यको श्र आदेश हुआ है । अथवा **'प्राण ही ज्येष्ठ और श्रेष्ठ है'** इस श्रुतिके अनुसार मुख्य प्राण ही [ज्येष्ठ और श्रेष्ठ] है । क्योंकि **'श्रेष्ठश्च'** इस ब्रह्मसूत्रके अधिकरणमें यह बात सिद्ध की गयी है । अथवा सबका कारण होनेसे परमात्माका नाम ज्येष्ठ तथा सबसे बढ़ा-चढ़ा होनेके कारण श्रेष्ठ है ।

ईश्वरत्वेन सर्वासां प्रजानां पतिः प्रजापतिः ।

ईश्वररूपसे सब प्रजाओंके पति हैं; इसलिये **प्रजापति** हैं ।

हिरण्मयाण्डान्तर्वर्तित्वात् हिरण्यगर्भः ब्रह्मा विरिञ्चिः तदात्मा, 'हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे' (ऋ० सं० १० । १२१ । १) इति श्रुतेः ।

ब्रह्माण्डरूप हिरण्मय अण्डेके भीतर व्याप्त होनेके कारण सृष्टिकर्ता ब्रह्मा हिरण्यगर्भ हैं । उनके आत्मस्वरूप होनेसे भगवान् **हिरण्यगर्भ** हैं; क्योंकि श्रुति कहती है **'पहले हिरण्यगर्भ ही था।'**

भूर्गर्भे यस्य स भूगर्भः ।

पृथ्वी जिनके गर्भमें स्थित है, वे भगवान् **भूगर्भ** हैं ।

मायाः श्रियः धवः पतिः माधवः मधुविद्यावबोध्यत्वाद्वा माधवः ।

'मौनाद्ध्यानाच्च योगाच्च
विद्धि भारत माधवम् ।'
(महा० उद्योग० ७० । ४)

इति व्यासवचनाद् वा माधवः ।

मा अर्थात् लक्ष्मीके धव यानी पति होनेसे भगवान् **माधव** हैं । अथवा [बृहदारण्यक श्रुतिमें कही गयी] मधु-विद्याद्वारा जाननेयोग्य होनेके कारण माधव हैं । अथवा **'हे भारत ! मौन, ध्यान और योगसे तू भगवान् माधवका साक्षात्कार कर'**-इस व्यासजीके कथनानुसार भगवान् माधव हैं ।

मधुनामानमसुरं सूदितवान् इति मधुसूदनः ।

'कर्णमिश्रोद्भवं चापि मधुनाममहासुरम् ।'
'ब्रह्मणोऽपचितिं कुर्वन् जघान पुरुषोत्तमः ॥'
'तस्य तात वधादेव देवदानवमानवाः ।
मधुसूदन इत्याहुर्ऋषयश्च जनार्दनम् ॥'
(महा० भीष्म० ६७ । १४–१६)

इति महाभारते ॥ २१ ॥

भगवान्‌ने मधु नामक दैत्यको मारा था, इसलिये वे मधुसूदन हैं—महाभारतमें कहा है । 'श्रीपुरुषोत्तमने ब्रह्माजीको आदर देते हुए कानके मैलसे उत्पन्न हुए मधु नामक दैत्यको मारा था ।' 'हे तात ! उसके वधके कारण ही देवता, दानव, मनुष्य और ऋषिलोग श्रीजनार्दनको 'मधुसूदन' कहते हैं' ॥ २१ ॥

ईश्वरो विक्रमी धन्वी मेधावी विक्रमः क्रमः ।
अनुत्तमो दुराधर्षः कृतज्ञः कृतिरात्मवान् ॥ २२ ॥

७४ ईश्वरः, ७५ विक्रमी, ७६ धन्वी, ७७ मेधावी, ७८ विक्रमः, ७९ क्रमः । ८० अनुत्तमः, ८१ दुराधर्षः, ८२ कृतज्ञः, ८३ कृतिः, ८४ आत्मवान् ॥

सर्वशक्तिमत्तया ईश्वरः ।

सर्वशक्तिमान् होनेसे ईश्वर हैं ।

विक्रमः शौर्यम्, तद्योगात् विक्रमी ।

विक्रम शूरवीरताको कहते हैं, उससे युक्त होनेके कारण विक्रमी हैं ।

धनुरस्यास्तीति धन्वी व्रीह्यादित्वादिनिप्रत्ययः । 'रामः शस्त्रभृतामहम्' (गीता १० । ३१) इति भगवद्वचनात् ।

भगवान्‌के पास धनुष है, इसलिये वे धन्वी हैं । धनुष शब्द व्रीह्यादिगणमें होनेके कारण ['व्रीह्यादिभ्यश्च' (पा० सू० ५ । २ । ११६) इस सूत्रके नियमानुसार] उससे इनिप्रत्यय हुआ है । श्रीभगवान्‌का भी वचन है—'शस्त्रधारियोंमें मैं राम हूँ ।'

मेधा बहुग्रन्थधारणसामर्थ्यम् सा यस्यास्ति स मेधावी । 'अस्मायामेधास्रजो विनिः' (पा० सू० ५ । २ । १२१) इति पाणिनिवचनाद्विनिप्रत्ययः ।

जिसमें मेधा अर्थात् बहुत-से ग्रन्थोंको धारण करनेका सामर्थ्य हो, उसे मेधावी कहते हैं । यहाँ 'अस्मायामेधास्रजो विनिः' इस पाणिनिके वचनानुसार मेधा शब्दसे विनिप्रत्यय हुआ है ।

विचक्रमे जगद् विश्वं तेन विक्रमः विना गरुडेन पक्षिणा क्रमाद्वा ।

भगवान् जगत् यानी संसारको लाँघ गये थे, इसलिये वे विक्रम हैं । अथवा वि अर्थात् गरुड़पक्षीद्वारा गमन करनेसे विक्रम हैं ।

क्रमणात् क्रमहेतुत्वाद् वा क्रमः, 'क्रान्ते विष्णुम्' (मनु० १२ । १२१) इति मनुवचनात् ।

क्रमण करने (लाँघने, दौड़ने) या क्रम (विस्तार) के कारण होनेसे विष्णुका नाम क्रम है । मनुजीका भी वचन है—'पैरकी गतिमें विष्णुकी भावना करे ।'

अविद्यमान उत्तमो यस्मात् सः अनुत्तमः । 'यस्मात् परं नापरमस्ति किञ्चित्' (ना० उ० १२ । ३) इति श्रुतेः, 'न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यः' (गीता ११ । ४३) इति स्मृतेश्च ।

जिससे उत्तम कोई और न हो, उसे अनुत्तम कहते हैं । श्रुति कहती है—'जिससे श्रेष्ठ और कोई नहीं है ।' तथा स्मृति (गीता) का भी वचन है—'तुम्हारे समान ही दूसरा कोई नहीं है, फिर अधिक तो होगा ही कहाँसे ?'

दैत्यादिभिर्धर्षयितुं न शक्यत इति दुराधर्षः ।

जो दैत्यादिकोंसे दबाये नहीं जा सकते, वे भगवान् दुराधर्ष कहलाते हैं ।

प्राणिनां पुण्यापुण्यात्मकं कर्म कृतं जानातीति कृतज्ञः पत्र-

प्राणियोंके किये हुए पुण्य-पापरूप कर्मोंको जानते हैं, इसलिये कृतज्ञ हैं । अथवा पत्र-पुष्पादि थोड़ी-सी वस्तु

पुष्पाद्यल्पमपि प्रयच्छतां मोक्षं ददातीति वा ।

पुरुषप्रयत्नः कृतिः, क्रिया वा सर्वात्मकत्वात्तदाधारतया वा लक्ष्यते कृत्येति वा कृतिः ।

स्वमहिम्प्रतिष्ठितत्वात् आत्मवान् । 'स भगवः कस्मिन् प्रतिष्ठित इति स्वे महिम्नि' (छा० उ० ७ । २४ । १) इति श्रुतेः ॥ २२ ॥

समर्पण करनेवालोंको भी मोक्ष दे दे हैं, इसलिये कृतज्ञ हैं ।

पुरुष-प्रयत्नका या क्रियाका नाम कृति है । सर्वात्मक होनेसे अथवा इनके आधार होनेके कारण भगवान् कृति शब्दसे लक्षित होते हैं; इसलिये वे कृति हैं ।

अपनी ही महिमामें स्थित होनेके कारण आत्मवान् हैं । श्रुति कहती है 'भगवन् ! वह किसमें प्रतिष्ठित है अपनी महिमामें' ॥ २२ ॥

सुरेशः शरणं शर्म विश्वरेताः प्रजाभवः ।
अहः संवत्सरो व्यालः प्रत्ययः सर्वदर्शनः ॥ २३ ॥

८५ सुरेशः, ८६ शरणम्, ८७ शर्म, ८८ विश्वरेताः, ८९ प्रजाभवः ९० अहः, ९१ संवत्सरः, ९२ व्यालः, ९३ प्रत्ययः, ९४ सर्वदर्शनः ।

सुराणां देवानामीशः सुरेशः सूपपदो वा राधातुः शोभनदातॄणामीशः सुरेशः ।

आर्तानामार्तिहरणत्वात् शरणम् ।

परमानन्दरूपत्वात् शर्म ।

विश्वस्य कारणत्वात् विश्वरेताः ।

सुर अर्थात् देवताओंके ईश होनेसे सुरेश हैं अथवा यहाँ सु-पूर्वक रा-धातु है; अतः शुभ देनेवालोंके ईश होनेसे भगवान् सुरेश हैं ।

दीनोंका दुःख दूर करनेके कारण शरण हैं ।

परमानन्दस्वरूप होनेसे शर्म हैं

विश्वके कारण होनेसे विश्वरेता हैं

सर्वाः प्रजा यत्सकाशादुद्भवन्ति स प्रजाभवः ।

जिनसे सम्पूर्ण प्रजा उत्पन्न होती है, वे भगवान् **प्रजाभव** कहलाते हैं ।

प्रकाशरूपत्वाद् अहः ।

प्रकाशस्वरूप होनेके कारण **अहः** हैं ।

कालात्मना स्थितो विष्णुः संवत्सर इत्युक्तः ।

कालस्वरूपसे स्थित हुए विष्णु भगवान् **संवत्सर** कहे जाते हैं ।

व्यालवद् ग्रहीतुमशक्यत्वाद् व्यालः ।

व्याल (सर्प) के समान ग्रहण करनेमें न आ सकनेके कारण **व्याल** हैं ।

प्रतीतिः प्रज्ञा प्रत्ययः 'प्रज्ञानं ब्रह्म' (ऐ० उ० ३ । ५ । ३) इति श्रुतेः ।

प्रतीति प्रज्ञाको कहते हैं, प्रतीति-रूप होनेके कारण **प्रत्यय** हैं । श्रुति कहती है—'प्रज्ञान ही ब्रह्म है ।'

सर्वाणि दर्शनात्मकानि अक्षीणि यस्य स सर्वदर्शनः, सर्वात्मकत्वात्; 'विश्वतश्चक्षुः' (श्वे० ३ । ३) 'विश्वाक्षम्' (ना० उ० १३ । १) इति श्रुतेः ॥ २३ ॥

सर्वरूप होनेके कारण सभी जिनके दर्शन अर्थात् नेत्र हैं, वे भगवान् **सर्वदर्शन** हैं, जैसा कि श्रुति कहती है— 'सब ओर नेत्रवाला है', 'सम्पूर्ण इन्द्रियोंवाला है' ॥ २३ ॥

अजः सर्वेश्वरः सिद्धः सिद्धिः सर्वादिरच्युतः ।
वृषाकपिरमेयात्मा सर्वयोगविनिःसृतः ॥ २४ ॥

९५ अजः, ९६ सर्वेश्वरः, ९७ सिद्धः, ९८ सिद्धिः, ९९ सर्वादिः, १०० अच्युतः, १०१ वृषाकपिः, १०२ अमेयात्मा, १०३ सर्वयोगविनिःसृतः ॥

न जायत इति अजः 'न जातो न जनिष्यते' इति श्रुतेः ।

जन्म नहीं लेते इसलिये **अज** हैं । श्रुति कहती है—'न उत्पन्न होता है

'न हि जातो न जायेऽहं
न जनिष्ये कदाचन।
क्षेत्रज्ञः सर्वभूतानां
तस्मादहमजः स्मृतः ॥'

इति महाभारते (शान्ति० ३४२। ७४)

न होगा।' महाभारतमें कहा है— 'मैं न कभी उत्पन्न हुआ हूँ, न होता हूँ और न होऊँगा। मैं समस्त भूतों का क्षेत्रज्ञ हूँ, इसलिये अज कहलाता हूँ।'

सर्वेषामीश्वराणामीश्वरः सर्वेश्वरः, 'एष सर्वेश्वरः' (मा० उ० ६) इति श्रुतेः।

समस्त ईश्वरोंके भी ईश्वर होनेसे **सर्वेश्वर** हैं; श्रुति कहती है—'यह सर्वेश्वर है।'

नित्यनिष्पन्नरूपत्वात् सिद्धः।

नित्य-सिद्धस्वरूप होनेके कारण **सिद्ध** हैं।

सर्ववस्तुषु संविद्रूपत्वात्, निरतिशयरूपत्वात् **फलरूपत्वाद्** वा सिद्धिः। **स्वर्गादीनां** विनाशित्वादफलत्वम्।

समस्त वस्तुओंमें संवित् (ज्ञान) रूप होनेके कारण अथवा सबसे श्रेष्ठ होनेके कारण या सबके फलरूप होनेके कारण **सिद्धि** हैं। स्वर्गादि फल नाशवान् हैं, इसलिये वे वास्तवमें फल नहीं हैं।

सर्वभूतानामादिकारणत्वाद् सर्वादिः।

सब भूतोंके आदि-कारण होनेसे **सर्वादि** हैं।

स्वरूपसामर्थ्यान्न च्युतो न च्यवते न च्यविष्यते इति अच्युतः, 'शाश्वत ँ शिवमच्युतम्' (ना० उ० १३। १) इति श्रुतेः। तथा च भगवद्वचनम्—'यस्मान्न च्युतपूर्वोऽहमच्युतस्तेन कर्मणा' इति।

अपनी स्वरूप-शक्तिसे कभी च्युत नहीं हुए, न होते हैं और न होंगे, इसलिये **अच्युत** हैं। श्रुति कहती है— 'वह नित्य कल्याणस्वरूप और अच्युत है।' श्रीभगवान्‌ने भी कहा है— '**क्योंकि मैं पहले कभी च्युत नहीं हुआ हूँ, इसलिये उस कर्मके कारण मैं अच्युत हूँ।**'

*

इति नाम्नां शतमाद्यं विवृतम् ।

वर्षणात् सर्वकामानां धर्मो वृषः कात् तोयाद् भूमिमपादिति कपिर्वराहः; वृषरूपत्वात्कपिरूपत्वाच्च वृषाकपिः ।

'कपिर्वराहः श्रेष्ठश्च
धर्मश्च वृष उच्यते ।
तस्माद् वृषाकपिं प्राह
काश्यपो मां प्रजापतिः ॥'

इति महाभारते (शान्ति० ३४२ । ८९) ।

इयानिति मातुं परिछेत्तुं न शक्यत आत्मा यस्येति अमेयात्मा ।

सर्वसम्बन्धविनिर्गतः सर्वयोगविनिःसृतः, 'असङ्गो ह्ययं पुरुषः' (बृ० उ० ४ । ३ । १५) इति श्रुतेः । नानाशास्त्रोक्ताद्योगादपगतत्वाद्वा ॥ २४ ॥

यहाँतक सहस्रनामके प्रथम शतकका विवरण हुआ ।

समस्त कामनाओंकी वर्षा करनेके कारण धर्मको वृष कहते हैं । पृथ्वीका क अर्थात् जलमेंसे उद्धार किया था । इसलिये कपि वराह भगवान्‌का नाम है । इस प्रकार वृष (धर्म) रूप और कपि (वराह) रूप होनेके कारण भगवान् **वृषाकपि** हैं । महाभारतमें कहा है—'कपि वराह या श्रेष्ठको कहते हैं और वृष धर्मका नाम है, इसलिये कश्यप प्रजापतिने मुझे वृषाकपि कहा था ।'

जिनके आत्मा (स्वरूप) का 'इतना है' इस प्रकार माप-परिच्छेद न किया जा सके, वे भगवान् **अमेयात्मा** हैं ।

सम्पूर्ण सम्बन्धोंसे रहित होनेके कारण **सर्वयोगविनिःसृत** हैं । श्रुति कहती है—'यह पुरुष निश्चय असङ्ग ही है ।' अथवा नाना प्रकारके शास्त्रोक्त योगों (साधनों) से जाने जाते हैं, इसलिये सर्वयोगविनिःसृत हैं ॥ २४ ॥

वसुर्वसुमनाः सत्यः समात्मा सम्मितः समः ।
अमोघः पुण्डरीकाक्षो वृषकर्मा वृषाकृतिः ॥ २५ ॥

१०४ वसुः, १०५ वसुमनाः, १०६ सत्यः, १०७ समात्मा, १०८ सम्मितः, १०९ समः। ११० अमोघः, १११ पुण्डरीकाक्षः, ११२ वृषकर्मा, ११३ वृषाकृतिः॥

वसन्ति सर्वभूतान्यत्र, तेष्वयमपि वसतीति वा वसुः 'वसूनां पावकश्चास्मि' (गीता १० । २३) इत्युक्तो वा वसुः।

वसुशब्देन धनवाचिना प्राशस्त्यं लक्ष्यते । प्रशस्तं मनो यस्य स वसुमनाः । रागद्वेषादिभिः क्लेशैर्मदादिभिरुपक्लेशैश्च यतो न कलुषितं चित्तं ततस्तन्मनः प्रशस्तम्।

अवितथरूपत्वात् परमात्मा सत्यः 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' (तै० उ० २ । १ । १) इति श्रुतेः। मूर्तामूर्तात्मकत्वाद्वा, 'सच्चत्यच्चाभवत्, (तै० उ० २ । ६ । १) इति श्रुतेः । सदिति प्राणाः, तीत्यन्नम्, यमिति दिवाकरस्तेन प्राणान्नादित्यरूपाद्वा सत्यः 'सदिति प्राणास्तीत्यन्नं यमित्यसावादित्यः' (ऐ० आ० २ । १ । ५ । ६) इति श्रुतेः । सत्सु साधुत्वाद्वा सत्यः।

सम आत्मा मनो यस्य राग-

भगवान्में सब भूत बसते हैं अथवा उन सब भूतोंमें भगवान् बसते हैं, इसलिये वे वसु हैं। अथवा 'वसुओंमें मैं अग्नि हूँ'—इस प्रकार (गीतामें) कहा हुआ अग्नि ही वसु है।

धनवाचक वसु शब्दसे प्रशस्त (श्रेष्ठता) लक्षित होती है; अतः जिनका मन प्रशस्त है, वे भगवान् वसुमना कहलाते हैं। राग-द्वेषादि क्लेशों और मदादि उपक्लेशोंसे अदूषित होनेके कारण भगवान्का मन प्रशस्त है।

सत्यस्वरूप होनेके कारण परमात्मा सत्य हैं। श्रुति कहती है—'ब्रह्म सत्य, ज्ञान और अनन्तरूप है।' अथवा 'सत् (मूर्त) और त्यद (अमूर्त) हुआ' इस श्रुतिके अनुसार मूर्तामूर्तस्वरूप होनेके कारण भगवान् सत्य हैं। अथवा 'सदिति प्राणास्तीत्यन्नं यमित्यसावादित्यः' इस श्रुतिके अनुसार सत् प्राण है, त् अन्न है और य सूर्य है; अतः प्राण, अन्न और सूर्यरूप होनेके कारण भगवान् सत्य हैं। अथवा सत्पुरुषोंके लिये साधुस्वभाव होनेके कारण सत्य हैं।

जिनका आत्मा—मन सम अर्थात्

द्वेषादिभिरदूषितः सः समात्मा सर्वभूतेषु सम एक आत्मा वा, 'सम आत्मेति विद्यात्' इति श्रुतेः ।

राग-द्वेषादिसे दूषित नहीं हैं, वे भगवान् समात्मा हैं । अथवा 'आत्मा सम है—ऐसा जाने' इस श्रुतिके अनुसार समस्त प्राणियोंमें सम यानी एक आत्मा है, इसलिये भगवान् समात्मा हैं ।

सर्वैरप्यर्थजातैः परिच्छिन्नः सम्मितः; सर्वैरपरिच्छिन्नोऽमित इति असम्मितः ।*

समस्त पदार्थोंसे परिच्छिन्न जाने जाते हैं । इसलिये सम्मित हैं अथवा समस्त पदार्थोंसे परिच्छिन्न-परिमित नहीं हैं, इसलिये असम्मित हैं ।

सर्वकालेषु सर्वविकाररहितत्वात् समः; मया लक्ष्म्या सह वर्तत इति वा समः ।

सब समय समस्त विकारोंसे रहित होनेके कारण सम हैं अथवा मा—लक्ष्मीके सहित विराजमान हैं, इसलिये सम हैं ।

पूजितः स्तुतः संस्मृतो वा सर्वफलं ददाति न वृथा करोतीति अमोघः । अवितथसङ्कल्पाद्वा, 'सत्यसङ्कल्पः' (छा० उ० ८ । ७ । १) इति श्रुतेः ।

पूजा, स्तुति अथवा स्मरण किये जानेपर सम्पूर्ण फल देते हैं, उन्हें वृथा नहीं करते, इसलिये अमोघ हैं । अथवा 'सत्यसङ्कल्प हैं' इस श्रुतिके अनुसार अव्यर्थ-संकल्पवाले होनेसे अमोघ हैं ।

हृदयस्थं पुण्डरीकमश्नुते व्याप्नोति तत्रोपलक्षित इति पुण्डरीकाक्षः 'यत्पुण्डरीकं पुरमध्यसंस्थम्'

हृदयस्थ पुण्डरीक (कमल) में प्राप्त-व्याप्त होते हैं—उसमें लक्षित होते हैं, इसलिये पुण्डरीकाक्ष हैं । श्रुति कहती है—'जो हृदयकमल पुर (शरीर) के मध्यमें स्थित है ।' अथवा उनके

* समात्मासम्मितः—इसका पदच्छेद समात्मा+सम्मितः, समात्मा+असम्मितः, दोनों प्रकार होनेके कारण दो प्रकारसे अर्थ किया गया है ।

इति श्रुतेः; पुण्डरीकाकारे उभे अक्षिणी अस्येति वा ।

धर्मलक्षणं कर्मास्येति वृषकर्मा ।

धर्मार्थमाकृतिः शरीरं यस्येति स वृषाकृतिः 'धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥' (गीता ४ । ८) इति भगवद्वचनात् ॥ २५ ॥

दोनों नेत्र पुण्डरीक—कमलके समान हैं, इसलिये पुण्डरीकाक्ष हैं ।

जिनके कर्म धर्मरूप हैं, वे भगवान् वृषकर्मा हैं ।

जिनकी धर्मके लिये ही आकृति—देह है [अर्थात् जिन्होंने धर्मके लिये ही शरीर धारण किया है] वे भगवान् वृषाकृति हैं; जैसा कि भगवान्‌का वचन है—'मैं धर्मकी स्थापना करनेके लिये युग-युगमें जन्म लेता हूँ' ॥ २५ ॥

रुद्रो बहुशिरा बभ्रुर्विश्वयोनिः शुचिश्रवाः ।
अमृतः शाश्वतस्थाणुर्वरारोहो महातपाः ॥ २६ ॥

११४ रुद्रः, ११५ बहुशिराः, ११६ बभ्रुः, ११७ विश्वयोनिः, ११८ शुचिश्रवाः, ११९ अमृतः, १२० शाश्वतस्थाणुः, १२१ वरारोहः, १२२ महातपाः ॥

संहारकाले प्रजाः संहरन् रोदयतीति रुद्रः । रुदं राति ददातीति वा । रुर्दुःखं दुःखकारणं वा, द्रावयतीति वा रुद्रः; रोदनाद् द्रावणाद्वापि रुद्र इत्युच्यते,

'रुर्दुःखं दुःखहेतुं वा
तद् द्रावयति यः प्रभुः ।
रुद्र इत्युच्यते तस्मा-
च्छिवः परमकारणम् ॥'

इति शिवपुराणवचनात् ।
(संहिता ६, अ० ९ । १४)

प्रलयकालमें प्रजाका संहार करके उसे रुलाते हैं, इसलिये रुद्र हैं । अथवा रुद् यानी वाणी देते हैं, इसलिये रुद्र हैं । अथवा रु नाम है दुःख या उसके कारणका; उसे द्रावित करने—दूर भगानेवाले होनेसे भगवान् रुद्र हैं । रोदन (रुलाने) या द्रावण (दूर भगाने) के कारण रुद्र कहलाते हैं । शिवपुराणका वचन है—'रु नाम दुःखका है; क्योंकि वे प्रभु दुःख या दुःखके हेतुको दूर भगाते हैं, इसलिये परम कारण भगवान् शिव रुद्र कहलाते हैं ।'

बहूनि शिरांशि यस्येति बहुशिराः, 'सहस्रशीर्षा पुरुषः' (पु० सू० १) इति मन्त्रवर्णात् ।

'सहस्रशीर्षा पुरुषः' इस मन्त्रवर्णके अनुसार बहुत-से सिर होनेके कारण भगवान् बहुशिरा हैं ।

बिभर्ति लोकानिति बभ्रुः ।

लोकोंका भरण करते हैं, इसलिये बभ्रु हैं ।

विश्वस्यकारणत्वाद् विश्वयोनिः

विश्वके कारण होनेसे विश्वयोनि हैं ।

शुचीनि श्रवांसि नामानि श्रवणीयान्यस्येति शुचिश्रवाः ।

भगवान्के श्रव शुचि—पवित्र हैं, अर्थात् उनके नाम सुनने योग्य हैं; इसलिये वे शुचिश्रवा* कहे जाते हैं ।

न विद्यते मृतं मरणमस्येति अमृतः 'अजरोऽमरः' (बृ० उ० ४ । ४ । २५) इति श्रुतेः ।

भगवान्का मृत अर्थात् मरण नहीं है, इसलिये वे अमृत हैं; श्रुति कहती है—'अजर है, अमर है ।'

शाश्वतश्चासौ स्थाणुश्चेति शाश्वतस्थाणुः ।

शाश्वत (नित्य) भी हैं और स्थाणु (स्थिर) भी हैं, इसलिये भगवान् शाश्वतस्थाणु हैं ।

वर आरोहोऽङ्कोऽस्येति वरारोहः । वरमारोहणं यस्मिन्निति वा, आरूढानां पुनरावृत्त्यसम्भवात्, 'न च पुनरावर्तते' (छा० उ० ८ । १५ । १) इति श्रुतेः,

'यद् गत्वा न निवर्तन्ते
तद् धाम परमं मम ॥'
(गीता १५ । ६)

इति भगवद्वचनात् ।

भगवान्का आरोह अर्थात् गोद वर (श्रेष्ठ) है, इसलिये वे वरारोह हैं । अथवा उनमें आरूढ होना वर (उत्तम) है, इसलिये वे वरारोह हैं, क्योंकि उनमें आरूढ हुए प्राणियोंको फिर संसारमें नहीं आना पड़ता । श्रुति कहती है—'वह फिर नहीं लौटता' श्रीभगवान्ने भी कहा है—'जहाँ जाकर फिर नहीं लौटते वही मेरा परम धाम है ।'

* श्रवका अर्थ कीर्ति भी है, भगवान् पवित्र कीर्तिवाले हैं, इसलिये भी शुचिश्रवा हैं ।

महत्सृज्यविषयं तपो ज्ञानमस्येति महातपाः 'यस्य ज्ञानमयं तपः' (मु० उ० १ । १ । ९) **इति श्रुतेः । ऐश्वर्यं प्रतापो वा तपो महदस्येति वा महातपाः** ॥ २६ ॥

भगवान्‌का सृष्टि-विषयक तप ज्ञान अति महान् है, इसलिये वे **महातपा** हैं । इस विषयमें **'जिसका ज्ञानमय तप है'** ऐसी श्रुति भी है । अथवा उनका ऐश्वर्य या प्रतापरूप तप महान् है, इसलिये वे महातपा हैं ॥ २६॥

सर्वगः सर्वविद्भानुर्विष्वक्सेनो जनार्दनः ।
वेदो वेदविदव्यङ्गो वेदाङ्गो वेदवित् कविः ॥ २७ ॥

१२३ सर्वगः, १२४ सर्वविद्भानुः, १२५ विष्वक्सेनः, १२६ जनार्दनः। १२७, वेदः, १२८ वेदवित्, १२९ अव्यङ्गः, १३० वेदाङ्गः, १३१ वेदवित्, १३२ कविः ॥

सर्वत्र गच्छतीति सर्वगः, **कारणत्वेन व्याप्तत्वात् सर्वत्र ।**

कारणरूपसे सर्वत्र व्याप्त होनेके कारण वे सभी जगह जाते हैं, इसलिये **सर्वग** हैं ।

सर्वं वेत्ति विन्दतीति वा सर्ववित् भातीति भानुः, 'तमेव भान्तमनुभाति सर्वम्' (क० उ० २ । २ । १५) **इति श्रुतेः ।**

'यदादित्यगतं तेजो
जगद् भासयतेऽखिलम् ।'
(गीता १५ । १२)

इत्यादिस्मृतेश्च; सर्वविच्चासौ भानुश्चेति सर्वविद्भानुः ।

सब कुछ जानते या प्राप्त करते हैं, इसलिये सर्ववित् हैं, तथा भासते हैं, इसलिये भानु हैं । इस विषयमें **'उसके ही भासित होनेसे ये सब भासित होते हैं'** यह श्रुति और **'जो सूर्यके अन्तर्गत रहनेवाला तेज सम्पूर्ण संसारको भासित करता है'** यह स्मृति प्रमाण हैं । इस प्रकार भगवान् सर्ववित् हैं और भानु भी हैं, इसलिये **सर्वविद्भानु** हैं ।

विष्वक् अव्ययं सर्वत्यर्थे। विष्वगञ्चति पलायते दैत्यसेना यस्य रणोद्योगमात्रेणेति विष्वक्सेनः।

जनान् दुर्जनानर्दयति हिनस्ति, नरकादीन् गमयतीति वा जनार्दनः; जनैः पुरुषार्थमभ्युदयनिःश्रेयस-लक्षणं याच्यते इति जनार्दनः।

वेदरूपत्वाद् वेदः वे दयतीति वा वेदः;

'तेषामेवानुकम्पार्थ-
महमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो
ज्ञानदीपेन भास्वता॥'
(गीता १० । ११)

इति भगवद्वचनात्।

यथावद्वेदं वेदार्थं च वेत्तीति वेदवित्, 'वेदान्तकृद् वेदविदेव चाहम्' (गीता १५ । १५) इति भगवद्वचनात्।

'सर्वे वेदाः सर्ववेद्याः सशास्त्राः
सर्वे यज्ञाः सर्व इज्याश्च कृष्णः।
विदुः कृष्णं ब्राह्मणास्तत्त्वतो ये
तेषां राजन् सर्वयज्ञाः समाप्ताः॥'

इति महाभारते।

'विष्वक्' इस अव्यय पदका अर्थ सर्व है। भगवान्के रणोद्योगमात्रसे दैत्यसेना सब ओर तितर-बितर हो जाती या भाग जाती है, इसलिये वे **विष्वक्सेन** हैं।

जनों अर्थात् दुर्जनोंका अर्दन करते अर्थात् उन्हें मारते या नरकादि (तमोमय) लोकोंको भेजते हैं, इसलिये **जनार्दन** हैं; अथवा भक्तजन उनसे अभ्युदयनिःश्रेयसरूप परम पुरुषार्थकी याचना करते हैं, इसलिये **जनार्दन** हैं।

वेदरूप होनेके कारण **वेद** हैं; अथवा ज्ञान प्राप्त कराते हैं, इसलिये वेद हैं; जैसा कि भगवान्ने कहा है—'उनपर कृपा करनेके लिये ही मैं आत्मभावमें स्थित हुआ उनका अज्ञान-जन्य अन्धकार प्रकाशमय ज्ञानदीपक-से नष्ट कर देता हूँ।'

वेद तथा वेदके अर्थको यथावत् अनुभव करते हैं, इसलिये **वेदवित्** हैं। भगवान्का कथन है—'मैं वेदान्तकी रचना करनेवाला और वेद जाननेवाला भी हूँ।' महाभारतमें कहा है—'शास्त्रोंसहित सम्पूर्ण वेद, समस्त वेद्य-पदार्थ, सारे यज्ञ और सम्पूर्ण पूजनीय देव कृष्ण ही हैं। हे राजन्! जो ब्राह्मण कृष्णको तत्त्वतः जानते हैं, उन्होंने सभी यज्ञ समाप्त कर लिये हैं।'

अव्यङ्गः ज्ञानादिभिः परिपूर्णोऽविकल इत्युच्यते, व्यङ्गो व्यक्तिर्न विद्यत इत्यव्यङ्गो वा, 'अव्यक्तोऽयम्' (गीता २ । २५) इति भगवद्वचनात् ।

ज्ञानादिसे पूर्ण अर्थात् किसी प्रकार अधूरे न होनेके कारण भगवान् अव्यङ्ग कहलाते हैं । अथवा व्यङ्ग यानी व्यक्ति न होनेके कारण अव्यङ्ग हैं । भगवान्‌का वचन है--यह अव्यक्त है ।'

वेदा अङ्गभूता यस्य स वेदाङ्गः ।

वेद जिनके अङ्गरूप हैं, वे भगवान् वेदाङ्ग हैं ।

वेदान् विन्ते विचारयतीति वेदवित् ।

वेदोंको विचारते हैं, इसलिये वेदवित् हैं ।

क्रान्तदर्शी कविः सर्वदृक्, 'नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टा' (बृ० उ० ३ । ७ । २३) इत्यादिश्रुतेः । 'कविर्मनीषी' (ई० उ० ८) इत्यादिमन्त्रवर्णात् ॥ २७ ॥

क्रान्तदर्शी यानी सबको देखनेवाले होनेके कारण कवि हैं । श्रुति कहती है–'इससे भिन्न कोई और द्रष्टा नहीं है ।' तथा 'कवि है, मनीषी है' यह मन्त्रवर्ण भी है ॥ २७ ॥

लोकाध्यक्षः सुराध्यक्षो धर्माध्यक्षः कृताकृतः ।
चतुरात्मा चतुर्व्यूहश्चतुर्दंष्ट्रश्चतुर्भुजः ॥ २८ ॥

१३३ लोकाध्यक्षः, १३४ सुराध्यक्षः, १३५ धर्माध्यक्षः, १३६ कृताकृतः । १३७ चतुरात्मा, १३८ चतुर्व्यूहः, १३९ चतुर्दंष्ट्रः, १४० चतुर्भुजः ॥

लोकानध्यक्षयतीति लोकाध्यक्षः सर्वेषां लोकानां प्राधान्येनोपद्रष्टा ।

लोकोंका निरीक्षण करते हैं, इसलिये लोकाध्यक्ष यानी समस्त लोकोंको प्रधानरूपसे देखनेवाले हैं ।

लोकपालादिसुराणामध्यक्षः सुराध्यक्षः ।

धर्माधर्मौ साक्षादीक्षतेऽनुरूपं फलं दातुं तस्माद् धर्माध्यक्षः ।

कृतश्च कार्यरूपेण अकृतश्च कारणरूपेणेति कृताकृतः ।

सर्गादिषु पृथग्विभूतयश्चतस्रः आत्मानो मूर्तयो यस्य सः चतुरात्मा ।

'ब्रह्मा दक्षादयः काल-
स्तथैवाखिलजन्तवः ।
विभूतयो हरेरेता
जगतः सृष्टिहेतवः ॥
विष्णोर्मन्त्रादयः कालः
सर्वभूतानि च द्विज ।
स्थितेर्निमित्तभूतस्य
विष्णोरेता विभूतयः ॥
रुद्रः कालोऽन्तकाद्याश्च
समस्ताश्चैव जन्तवः ।
चतुर्धा प्रलयायैता
जनार्दनविभूतयः ॥'
(विष्णु० १ । २२ । ३१-३३)

इति वैष्णवपुराणे ।

'व्यूह्यात्मानं चतुर्धा वै
वासुदेवादिमूर्तिभिः ।
सृष्ट्यादीन् प्रकरोत्येष
विश्रुतात्मा जनार्दनः ॥'

इतिव्यासवचनात् चतुर्व्यूहः ।

लोकपालादि सुरों (देवताओं) के अध्यक्ष हैं, इसलिये सुराध्यक्ष हैं ।

अनुरूप फल देनेके लिये धर्म और अधर्मको साक्षात् देखते हैं, इसलिये धर्माध्यक्ष हैं ।

कार्यरूपसे कृत और कारणरूपसे अकृत होनेके कारण कृताकृत हैं ।

सृष्टिकी उत्पत्ति आदिके लिये जिनकी चार पृथक् विभूतियाँ आत्मा अर्थात् मूर्तियाँ हैं, वे भगवान् चतुरात्मा हैं । विष्णुपुराणमें कहा है- 'ब्रह्मा, दक्षादि प्रजापतिगण, काल तथा सम्पूर्ण जीव-ये भगवान् विष्णुकी सृष्टिकी हेतुभूत चार विभूतियाँ हैं । हे द्विज ! विष्णु, मनु आदि, काल और सम्पूर्ण भूत-ये स्थितिकी हेतुभूत श्रीविष्णुकी विभूतियाँ हैं तथा रुद्र, काल, मृत्यु आदि और समस्त जीव—ये श्रीजनार्दनकी प्रलयकारिणी चार विभूतियाँ हैं ।'

'जिनका स्वरूप विख्यात है, वे श्रीजनार्दन अपने चार व्यूह बनाकर वासुदेवादि मूर्तियोंसे सृष्टि आदि करते हैं' इस व्यासजीके वचनानुसार भगवान् चतुर्व्यूह हैं ।

दंष्ट्राश्चतस्रो यस्येति चतुर्दंष्ट्रः नृसिंहविग्रहः । यद्वा सादृश्याच्छृङ्गं दंष्ट्रेत्युच्यते, 'चत्वारि शृङ्गाः' (ऋग्वेदे) इति श्रुतेः ।

जिनके चार डाढें हैं वे नृसिंहरूप भगवान् चतुर्दंष्ट्र हैं । अथवा सदृशता के कारण सींगोंको भी दंष्ट्रा कहते हैं, इसलिये '[उसके] चार सींग हैं' इस श्रुतिके अनुसार चतुर्दंष्ट्र हैं ।

चत्वारो भुजा अस्येति चतुर्भुजः ॥ २८ ॥

चार भुजाएँ होनेके कारण चतुर्भुज हैं ॥ २८ ॥

भ्राजिष्णुर्भोजनं भोक्ता सहिष्णुर्जगदादिजः ।
अनघो विजयो जेता विश्वयोनिः पुनर्वसुः ॥ २९ ॥

१४१ भ्राजिष्णुः, १४२ भोजनम्, १४३ भोक्ता, १४४ सहिष्णुः, १४५ जगदादिजः, १४६ अनघः, १४७ विजयः, १४८ जेता, १४९ विश्वयोनिः, १५० पुनर्वसुः ।

प्रकाशैकरसत्वाद् भ्राजिष्णुः ।

एकरस प्रकाशस्वरूप होनेके कारण भ्राजिष्णु हैं ।

भोज्यरूपतया प्रकृतिर्माया भोजनम् इत्युच्यते ।

भोज्यरूप होनेसे प्रकृति यानी मायाको भोजन कहते हैं (अतः मायारूपसे भगवान् भोजन हैं) ।

पुरुषरूपेण तां भुङ्क्ते इति भोक्ता ।

उसे पुरुषरूपसे भोगते हैं, इसलिये भोक्ता हैं ।

हिरण्याक्षादीन् सहते अभिभवतीति सहिष्णुः ।

हिरण्याक्षादिको सहन करते हैं अर्थात् उन्हें नीचा दिखाते हैं, इसलिये भगवान् सहिष्णु हैं ।

हिरण्यगर्भरूपेण जगदादावुत्पद्यते स्वयमिति जगदादिजः ।

जगत्के आदिमें हिरण्यगर्भरूपसे स्वयं उत्पन्न होते हैं, इसलिये जगदादिज हैं ।

अघं न विद्यतेऽस्येति अनघः 'अपहतपाप्मा' (छा० उ० ८।७।१) इति श्रुतेः ।

भगवान्‌में अघ (पाप) नहीं है, इसलिये अनघ हैं। श्रुति कहती है—'वह पापहीन है ।'

विजयते ज्ञानवैराग्यैश्वर्यादिभिर्गुणैर्विश्वमिति विजयः ।

ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य आदि गुणोंसे विश्वको जीतते हैं। इसलिये विजय हैं।

यतो जयत्यतिशेते सर्वभूतानि स्वभावतोऽतो जेता ।

क्योंकि स्वभावसे ही समस्त भूतोंको जीतते अर्थात् उनसे अधिक उत्कर्ष प्राप्त करते हैं, इसलिये जेता हैं।

विश्वं योनिर्यस्य विश्वश्चासौ योनिश्चेति वा विश्वयोनिः ।

विश्व उनकी योनि है अथवा विश्व और योनि दोनों वही हैं, इसलिये विश्वयोनि हैं।

पुनः पुनः शरीरेषु वसति क्षेत्रज्ञरूपेणेति पुनर्वसुः ॥ २९ ॥

क्षेत्रज्ञरूपसे पुनः-पुनः शरीरोंमें बसते हैं, इसलिये पुनर्वसु हैं॥ २९॥

उपेन्द्रो वामनः प्रांशुरमोघः शुचिरूर्जितः ।
अतीन्द्रः सङ्ग्रहः सर्गो धृतात्मा नियमो यमः ॥ ३० ॥

१५१ उपेन्द्रः, १५२ वामनः, १५३ प्रांशुः, १५४ अमोघः, १५५ शुचिः, १५६ ऊर्जितः । १५७ अतीन्द्रः, १५८ सङ्ग्रहः, १५९ सर्गः, १६० धृतात्मा, १६१ नियमः, १६२ यमः ॥

इन्द्रमुपगतोऽनुजत्वेनेति उपेन्द्रः यद्वा उपरि इन्द्रः ।

इन्द्रको अनुजरूपसे उपगत अर्थात् प्राप्त हुए थे, इसलिये उपेन्द्र हैं। अथवा [इन्द्रसे] ऊपर इन्द्र हैं, इसलिये उपेन्द्र

'ममोपरि यथेन्द्रस्त्वं
स्थापितो गोभिरीश्वरः ।
उपेन्द्र इति कृष्ण त्वां
गास्यन्ति भुवि देवताः ॥'
(हरि० २ । १९ । ४६)

इति हरिवंशे ।

हैं । हरिवंशमें कहा है— 'क्योंकि गौओंने आपको मेरे ऊपर मेरा इन्द्र (स्वामी) बनाया है, इसलिये हे कृष्ण ! लोकमें देवगण उपेन्द्र कहकर आपका गान करेंगे ।'

बलिं वामनरूपेण याचितवानिति वामनः । **सम्भजनीय इति वा वामनः,**

'मध्ये वामनमासीनं
विश्वेदेवा उपासते ।'
(क० उ० २ । ५ । ३)

इति मन्त्रवर्णात् ।

वामनरूपसे बलिसे याचना की थी, इसलिये वामन हैं । अथवा भली प्रकार भजने योग्य होनेसे वामन हैं; जैसा कि मन्त्रवर्ण है—'मध्यमें स्थित वामनकी विश्वेदेव उपासना करते हैं ।'

स एव जगत्त्रयं क्रममाणः प्रांशुरभूदिति प्रांशुः ।

'तोये तु पतिते हस्ते
वामनोऽभूदवामनः ।
सर्वदेवमयं रूपं
दर्शयामास वै प्रभुः ॥
भूः पादौ द्यौः शिरश्चास्य
चन्द्रादित्यौ च चक्षुषी ।'
(हरि० ३ । ७१ । ४३-४४)

इत्यादिविश्वरूपं दर्शयित्वा

'तस्य विक्रमतो भूमिं
चन्द्रादित्यौ स्तनान्तरे ।
नभः प्रक्रममाणस्य
नाभ्यां तौ समवस्थितौ ॥'

वे ही तीनों लोकोंको लाँघनेके समय प्रांशु (ऊँचे) हो गये थे, इसलिये प्रांशु हैं । '[बलिके किये हुए सङ्कल्पका] जल हाथमें गिरते ही वामनजी अवामन हो गये । उस समय प्रभुने अपना सर्वदेवमय रूप दिखलाया । पृथ्वी उनके चरण, आकाश सिर तथा सूर्य और चन्द्रमा नेत्र थे ।' इत्यादि रूपसे विश्वरूप दिखलाकर हरिवंशमें उनकी प्रांशुता (ऊँचाई) का इस प्रकार वर्णन किया है—'पृथ्वीको मापते समय सूर्य और चन्द्रमा उनके स्तनके समीप हो गये, फिर आकाशको मापते

दिवमाक्रममाणस्य
जानुमूले व्यवस्थितौ ॥'
इति प्रांशुत्वं दर्शयति हरिवंशे (३ । ७२ । २९)।

समय वे उनके नाभिपर आ गये तथा स्वर्गको-मापते समय उनके घुटनों पर ही रह गये ।'

न मोघं चेष्टितं यस्य सः अमोघः ।

जिनकी चेष्टा मोघ (व्यर्थ) नहीं होती, वे भगवान् अमोघ हैं ।

स्मरतां स्तुवतामर्चयतां च पावनत्वात् शुचिः 'अस्य स्पर्शश्च महान् शुचिः' इति मन्त्रवर्णात् ।

स्मरण, स्तुति और पूजन करनेवालोंको पवित्र करनेवाले होनेसे भगवान् शुचि हैं। इस विषयमें यह मन्त्रवर्ण है- 'इसका स्पर्श भी महान् शुचि है—'

बलप्रकर्षशालित्वात् ऊर्जितः ।

अत्यन्त बलशाली होनेके कारण ऊर्जित हैं ।

अतीत्येन्द्रं स्थितो ज्ञानैश्वर्यादिभिः स्वभावसिद्धैरिति अतीन्द्रः ।

अपने स्वभावसिद्ध ज्ञान-ऐश्वर्यादिके कारण इन्द्रसे भी बढ़े-चढ़े हैं, इसलिये अतीन्द्र हैं ।

सर्वेषां प्रतिसंहारात् सङ्ग्रहः ।

प्रलयके समय सबका संग्रह करनेके कारण संग्रह हैं ।

सृज्यरूपतया, सर्गहेतुत्वाद्वा सर्गः ।

सृज्य (जगत्) रूप होनेसे अथवा सृष्टिका कारण होनेसे सर्ग हैं ।

एकरूपेण जन्मादिरहिततया धृत आत्मा येन स धृतात्मा ।

जो जन्मादिसे रहित रहकर अपने स्वरूपको एकरूपसे धारण किये हुए हैं, वे भगवान् धृतात्मा हैं ।

स्वेषु स्वेष्वधिकारेषु प्रजा नियमयतीति नियमः ।

अपने-अपने अधिकारोंमें प्रजाको नियमित करते हैं, इसलिये नियम हैं ।

अन्तर्यच्छतीति यमः । ॥ ३० ॥

अन्तःकरणमें स्थित होकर नियमन करते हैं, इसलिये यम हैं ॥ ३० ॥

वेद्यो वैद्यः सदायोगी वीरहा माधवो मधुः ।
अतीन्द्रियो महामायो महोत्साहो महाबलः ॥ ३१ ॥

१६३ वेद्यः, १६४ वैद्यः, १६५ सदायोगी, १६६ वीरहा, १६७ माधवः, १६८ मधुः। १६९ अतीन्द्रियः, १७० महामायः, १७१ महोत्साहः, १७२ महाबलः ॥

निःश्रेयसार्थिभिर्वेदनार्हत्वाद् वेद्यः ।

कल्याणकी इच्छाद्वारा जानने-योग्य हैं, इसलिये वेद्य हैं ।

सर्वविद्यानां वेदितृत्वाद् वैद्यः ।

सब विद्याओंके जाननेवाले होनेसे वैद्य हैं ।

सदा आविर्भूतस्वरूपत्वात् सदायोगी ।

सदा प्रत्यक्ष-स्वरूप होनेके कारण सदायोगी हैं ।

धर्मत्राणाय वीरान् असुरान् हन्तीति वीरहा ।

धर्मकी रक्षाके लिये वीरोंको यानी असुर योद्धाओंको मारते हैं, इसलिये वीरहा हैं ।

मायाः विद्यायाः पतिः माधवः ।
'मा विद्या च हरेः प्रोक्ता
तस्या ईशो यतो भवान् ।
तस्मान्माधवनामासि
धवः स्वामीति शब्दितः ॥'
इति हरिवंशे (३ । ८८ । ४९)

मा अर्थात् विद्याके पति होनेसे माधव हैं । हरिवंशमें कहा है--'हरिकी विद्याका नाम मा है और आप उसके स्वामी हैं; इसलिये आप माधव नामवाले हैं; क्योंकि धव शब्द स्वामीका वाचक है ।'

यथा मधु परां प्रीतिमुत्पादयति अयमपि तथेति मधुः ।

जिस प्रकार मधु (शहद) अत्यन्त प्रसन्नता उत्पन्न करता है, उसी प्रकार भगवान् भी करते हैं, इसलिये वे मधु हैं ।

शब्दादिरहितत्वादिन्द्रियाणाम-

शब्दादि विषयोंसे रहित होनेके

विषय इति अतीन्द्रियः, 'अशब्दमस्पर्शम्' (क० उ० १ । ३ । १५) इति श्रुतेः ।

कारण भगवान् इन्द्रियोंके विषय नहीं हैं, इसलिये अतीन्द्रिय हैं । श्रुति कहती है— **'अशब्द है, अस्पर्श है ।'**

मायाविनामपि मायाकारित्वात् महामायः, 'मम माया दुरत्यया' (गीता ७ । १४) इति भगवद्वचनात् ।

मायावियोंपर भी माया फैला देते हैं, इसलिये महामाय हैं । भगवान्का वचन है—**'मेरी माया अति दुस्तर है ।'**

जगदुत्पत्तिस्थितिलयार्थमुद्युक्तत्वात् । महोत्साहः ।

जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके लिये तत्पर रहनेके कारण महोत्साह हैं ।

बलिनामपि बलवत्त्वात् महाबलः ॥ ३१ ॥

बलवानोंमें भी अधिक बलवान् होनेके कारण महाबल हैं ॥ ३१ ॥

महाबुद्धिर्महावीर्यो महाशक्तिर्महाद्युतिः ।
अनिर्देश्यवपुः श्रीमानमेयात्मा महाद्रिधृक् ॥ ३२ ॥

१७३ महाबुद्धिः, १७४ महावीर्यः, १७५ महाशक्तिः, १७६ महाद्युतिः । १७७ अनिर्देश्यवपुः, १७८ श्रीमान्, १७९ अमेयात्मा, १८० महाद्रिधृक् ॥

बुद्धिमतामपि बुद्धिमत्त्वात् महाबुद्धिः ।

बुद्धिमानोंमें भी महान् बुद्धिमान् होनेके कारण महाबुद्धि हैं ।

महदुत्पत्तिकारणमविद्यालक्षणं वीर्यमस्येति महावीर्यः ।

संसारकी उत्पत्तिकी कारणरूप अविद्या भगवान्का महान् वीर्य है, इसलिये वे महावीर्य हैं ।

महती शक्तिः सामर्थ्यमस्येति महाशक्तिः ।

उनकी शक्ति अर्थात् सामर्थ्य अति महान् है, इसलिये वे महाशक्ति हैं ।

महती द्युतिर्बाह्याभ्यन्तरा च

उनकी बाह्य और आभ्यन्तर द्युति

अस्येति महाद्युतिः; 'स्वयंज्योतिः' (बृ० उ० ४ । ३ । ९) 'ज्योतिषां ज्योतिः' (बृ० उ० ४ । ४ । १६) इत्यादि श्रुतेः ।

इदं तदिति निर्देष्टुं यन्न शक्यते परस्मै स्वसंवेद्यत्वात्तदनिर्देश्यं वपुरस्येति अनिर्देश्यवपुः ।

ऐश्वर्यलक्षणा समग्रा श्रीर्यस्य सः श्रीमान् ।

सर्वैः प्राणिभिरमेया बुद्धिरात्मा यस्य सः अमेयात्मा ।

महान्तमद्रिं गिरिं मन्दरं गोवर्धनं च अमृतमथने गोरक्षणे च धृतवानिति महाद्रिधृक्, षान्तोऽयम् ॥ ३२ ॥

महान् है इसलिये वे महाद्युति हैं इस विषयमें 'स्वयंज्योति है' 'ज्योतियोंका ज्योति है' इत्यादि श्रुतियाँ प्रमाण हैं ।

अज्ञेय होनेके कारण जो 'वह यह है' इस प्रकार दूसरोंके लिये निर्दिष्ट न किया जा सके, उसे अनिर्देश्य कहते हैं। भगवान्का वपु (शरीर) अनिर्देश्य है इसलिये वे अनिर्देश्यवपु हैं ।

जिनमें ऐश्वर्यरूप समग्र श्री है, वे भगवान् श्रीमान् हैं ।

जिनकी आत्मा—बुद्धि समस्त प्राणियोंसे अमेय (अनुमान न की जा सकने योग्य है) वे भगवान् अमेयात्मा हैं।

अमृत मन्थन और गोरक्षणके समय [क्रमशः] मन्दराचल और गोवर्धन नामक महान् पर्वतोंको धारण किया था, इसलिये भगवान् महाद्रिधृक् हैं। यह शब्द षान्त है। [अर्थात् महाद्रिधृष् शब्दका प्रथमान्तरूप है] ॥ ३२ ॥

महेष्वासो महीभर्ता श्रीनिवासः सतां गतिः ।
अनिरुद्धः सुरानन्दो गोविन्दो गोविदां पतिः ॥ ३३ ॥

१८१ महेष्वासः, १८२ महीभर्ता, १८३ श्रीनिवासः, १८४ सतां गतिः ।
१८५ अनिरुद्धः, १८६ सुरानन्दः, १८७ गोविन्दः, १८८ गोविदां पतिः ।

*

महानिष्वास इषुक्षेपो यस्य स महेष्वासः ।

जिनका इष्वास अर्थात् धनुष महान् है, वे भगवान् महेष्वास हैं ।

एकार्णवाप्लुतां देवीं महीं च बभारेति महीभर्ता ।

प्रलयकालीन जलमें डूबी हुई पृथ्वीको धारण किया था, इसलिये महीभर्ता हैं ।

यस्य वक्षस्यनपायिनी श्रीर्वसति स श्रीनिवासः ।

जिनके वक्षःस्थलमें कभी नष्ट न होनेवाली श्री निवास करती है, वे भगवान् श्रीनिवास हैं ।

सतां वैदिकानां साधूनां पुरुषार्थसाधनहेतुः सतां गतिः ।

संतजन अर्थात् वैदिक-धर्मावलम्बी सत्पुरुषोंके पुरुषार्थसाधनके हेतु होनेसे भगवान् सतां गति हैं ।

न केनापि प्रादुर्भावेषु निरुद्ध इति अनिरुद्धः ।

प्रादुर्भावके समय किसीसे निरुद्ध नहीं हुए, इसलिये अनिरुद्ध हैं ।

सुरानानन्दयतीति सुरानन्दः ।

सुरों (देवताओं) को आनन्दित करते हैं, इसलिये सुरानन्द हैं ।

'नष्टां वै धरणीं पूर्व-
मविन्दद्यद्गुहागताम् ।
गोविन्द इति तेनाहं
देवैर्वाग्भिरभिष्टुतः ॥'
(महा० शान्ति० ३४२ । ७०)

इति मोक्षधर्मवचनात् गोविन्दः ।

'मैंने पूर्वकालमें नष्ट हुई पाताल-गत पृथ्वीको पाया था; इसलिये देवताओंने अपनी वाणीसे 'गोविन्द' कहकर मेरी स्तुति की' इस मोक्षधर्मके वचनानुसार भगवान् गोविन्द हैं ।

'अहं किलेन्द्रो देवानां
त्वं गवामिन्द्रतां गतः ।
गोविन्द इति लोकास्त्वां
स्तोष्यन्ति भुवि शाश्वतम् ॥'
(हरि० २ । १९ । ४५)

इति ।

हरिवंशमें कहा है—'मैं देवताओंका इन्द्र हूँ और तुम गौओंके इन्द्र हुए हो, इसलिये भूमण्डलमें लोग तुम्हें 'गोविन्द' कहकर तुम्हारी सर्वदा स्तुति करेंगे ।'

'गौरेषा तु यतो वाणी
तां च विन्दयते भवान् ।
गोविन्दस्तु ततो देव
मुनिभिः कथ्यते भवान् ॥'
इति च हरिवंशे (३ । ८८ । ५०)

गीर्वाणी तां विदन्तीति गोविदः तेषां पतिर्विशेषेणेति गोविदां पतिः ॥ ३३ ॥

तथा 'गौ—यह वाणी है और आप उसे प्राप्त कराते हैं इसलिये हे देव ! मुनिजन आपको गोविन्द कहते हैं।

गौ वाणीको कहते हैं, उसे जो जानते हैं वे गोविद् कहलाते हैं। उनके विशेषतः पति होनेके कारण भगवान् गोविदां पति हैं ॥ ३३ ॥

मरीचिर्दमनो हंसः सुपर्णो भुजगोत्तमः ।
हिरण्यनाभः सुतपाः पद्मनाभः प्रजापतिः ॥ ३४ ॥

१८९ मरीचिः, १९० दमनः, १९१ हंसः, १९२ सुपर्णः, १९३ भुजगोत्तमः।
१९४ हिरण्यनाभः, १९५ सुतपाः, १९६ पद्मनाभः, १९७ प्रजापतिः॥

तेजस्विनामपि तेजस्त्वात् मरीचिः 'तेजस्तेजस्विनामहम्' (गीता १० । ३६) इति भगवद्वचनात् ।

तेजस्वियोंका भी परम तेज होनेके कारण मरीचि हैं । भगवान्ने कहा है—'मैं तेजस्वियोंका तेज हूँ ।'

स्वाधिकारात्प्रमाद्यतीः प्रजा दमयितुं शीलमस्य वैवस्वतादिरूपेणेति दमनः ।

अपने अधिकारमें प्रमाद करनेवाली प्रजाको विवस्वान् (सूर्य) के पुत्र यम आदिके रूपसे दमन करनेका भगवान्का स्वभाव है, इसलिये वे दमन हैं।

अहं स इति तादात्म्यभाविनः संसारभयं हन्तीति हंसः । पृषो-

'अहं सः' (मैं वह हूँ) इस प्रकार तादात्म्यभावसे भावना करनेवालेका

दरादित्वाच्छब्दसाधुत्वम् । हन्ति गच्छति सर्वशरीरेष्विति वा हंसः 'हंसः शुचिषत्' (क० उ० २।५।२) इति मन्त्रवर्णात्।

शोभनधर्माधर्मरूपपर्णत्वात् सुपर्णः, 'द्वा सुपर्णा' (मु० उ० ३।१।१) इति मन्त्रवर्णात्। शोभनं पर्णं यस्येति वा सुपर्णः 'सुपर्णः पततामस्मि' इति ईश्वरवचनात्।

भुजेन गच्छतामुत्तमो भुजगोत्तमः।

हिरण्यमिव कल्याणी नाभिरस्येति हिरण्यनाभः; हितरमणीयनाभित्वाद्वा हिरण्यनाभः।

बदरिकाश्रमे नरनारायणरूपेण शोभनं तपश्चरतीति सुतपाः 'मनसश्चेन्द्रियाणां च ह्यैकाग्र्यं परमं तपः।' (ब्रह्म० १३०।१८) इति स्मृतेः।

संसारभय नष्ट कर देते हैं, इसलिये भगवान् हंस हैं। पृषोदरादिगणमें होनेके कारण [अहंसः के स्थानमें] हंसः प्रयोग सिद्ध होता है। अथवा सब शरीरोंमें हन्ति–जाते हैं, इसलिये हंस हैं। जैसा कि **'आकाशमें चलनेवाले सूर्य'** इस मन्त्रवर्णसे सिद्ध होता है।

धर्म और अधर्मरूप सुन्दर पंखोंके कारण **सुपर्ण** हैं, जैसा कि मन्त्रवर्ण है—**'दो सुपर्ण (पक्षी) हैं।'** अथवा जिनके सुन्दर पंख हैं, वह गरुड ही सुपर्ण है। भगवान्‌का वचन है—**'पक्षियोंमें मैं गरुड हूँ।'**

भुजाओंसे चलनेवालोंमें उत्तम होनेसे **भुजगोत्तम** हैं। [शेष-वासुकि आदि भगवान्‌की विभूतियाँ होनेके कारण उनका नाम भुजगोत्तम है]।

भगवान्‌की नाभि हिरण्य (सुवर्ण) के समान कल्याणमयी है; इसलिये वे **हिरण्यनाभ** हैं अथवा हितकारी और रमणीय नाभिवाले होनेसे हिरण्यनाभ हैं।

बदरिकाश्रममें नर-नारायणरूपसे सुन्दर तप करते हैं, इसलिये **सुतपा** हैं। स्मृति कहती है—**मन और इन्द्रियोंकी एकाग्रता ही परम तप है।'**

पद्ममिव सुवर्तुला नाभि-रस्येति, हृदयपद्मस्य नाभौ मध्ये प्रकाशनाद्वा पद्मनाभः पृषोदरा-दित्वात्साधुत्वम् ।

पद्मके समान सुन्दर वर्तुलाक नाभि होनेसे अथवा सबके हृ पद्मकी नाभि--मध्यमें प्रकाशित होने भगवान् **पद्मनाभ** हैं । पृषोदरादिगण होनेसे [पद्मनाभिके स्थानमें] पद्मन प्रयोग शुद्ध समझना चाहिये ।

प्रजानां पतिः पिता प्रजा-पतिः ॥ ३४ ॥

प्रजाओंके पति अर्थात् पिता होने प्रजापति हैं ॥ ३४ ॥

अमृत्युः सर्वदृक् सिंहः सन्धाता सन्धिमान् स्थिरः ।
अजो दुर्मर्षणः शास्ता विश्रुतात्मा सुरारिहा ॥ ३५ ॥

१९८ अमृत्युः, १९९ सर्वदृक्, २०० सिंहः, २०१ सन्धाता, २०२ सन्धिमा २०३ स्थिरः । २०४ अजः, २०५ दुर्मर्षणः, २०६ शास्ता, २०७ विश्रुतात्म २०८ सुरारिहा ॥

मृत्युर्विनाशस्तद्धेतुर्वास्य न विद्यते इति अमृत्युः ।

भगवान्में मृत्यु अर्थात् विनाश उसका कारण न होनेसे वे अमृत्यु हैं

प्राणिनां कृताकृतं सर्वं पश्यति स्वाभाविकेन बोधनेति सर्वदृक् ।

अपने स्वाभाविक ज्ञानसे प्राणियों सब कर्म-अकर्मादि देखते हैं, इसलि **सर्वदृक्** हैं ।

हिनस्तीति सिंहः । पृषोदरा-दित्वात् साधुत्वम् ।

हिंसन करनेके कारण सिंह हैं पृषोदरादिगणमें होनेसे ['हिंस' स्थानमें] सिंह प्रयोग सिद्ध होता है

इति नाम्नां द्वितीयं शतं विवृतम् ।

यहाँतक सहस्रनामके द्वितीय शतक का विवरण हुआ ।

कर्मफलैः पुरुषान् सन्धत्त इति सन्धाता ।

पुरुषोंको उनके कर्मोंके फलों संयुक्त करते हैं, इसलिये सन्धाता हैं

फलभोक्ता च स एवेति सन्धिमान् ।

फलोंके भोगनेवाले भी वे ही हैं, इसलिये सन्धिमान् हैं ।

सदैकरूपत्वात् स्थिरः ।

सदा एकरूप होनेके कारण स्थिर हैं ।

अजति गच्छति क्षिपति इति वा अजः ।

[अज् धातुका अर्थ जाना या फेंकना है] । भगवान् [भक्तोंके हृदयमें] जाते और [असुरादि दुष्टोंको] फेंकते हैं, इसलिये अज हैं ।

मर्षितुं सोढुं दानवादिभिर्न शक्यते इति दुर्मर्षणः ।

दानवादिकोंसे मर्षण अर्थात् सहन नहीं किये जा सकते, इसलिये भगवान् दुर्मर्षण हैं ।

श्रुतिस्मृत्यादिभिः सर्वेषामनुशिष्टिं करोतीति शास्ता ।

श्रुति-स्मृति आदिसे सबका अनुशासन करते हैं, इसलिये शास्ता हैं ।

विशेषेण श्रुतो येन सत्यज्ञानादिलक्षणः आत्मातो विश्रुतात्मा ।

भगवान्ने सत्यज्ञानादिरूप आत्माका विशेषरूपसे श्रवण (ज्ञान) किया है, अतः वे विश्रुतात्मा हैं ।

सुरारीणां निहन्तृत्वात् सुरारिहा ॥ ३५ ॥

सुरों (देवताओं) के शत्रुओंको मारनेवाले होनेके कारण भगवान् सुरारिहा हैं ॥ ३५ ॥

गुरुर्गुरुतमो धाम सत्यः सत्यपराक्रमः ।
निमिषोऽनिमिषः स्रग्वी वाचस्पतिरुदारधीः ॥ ३६ ॥

२०९ गुरुः, २१० गुरुतमः, २११ धाम, २१२ सत्यः, २१३ सत्यपराक्रमः । २१४ निमिषः, २१५ अनिमिषः, २१६ स्रग्वी, २१७ वाचस्पतिरुदारधीः ॥

सर्वविद्यानामुपदेष्टृत्वात्सर्वेषां जनकत्वाद्वा गुरुः ।

सब विद्याओंके उपदेष्टा होनेसे तथा सबके जन्मदाता होनेसे गुरु हैं ।

विरिञ्च्यादीनामपि ब्रह्मविद्यासम्प्रदायकत्वाद् गुरुतमः, 'यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वम्' (श्वे० उ० ६ । १८) इति मन्त्रवर्णात् ।

ब्रह्मा आदिको भी ब्रह्मविद्या प्रदा करनेवाले होनेसे गुरुतम हैं । मन्त्र कहता है—'जो पहले ब्रह्माको उत्पन्न करता है [और उन्हें वेदों उपदेश करता है] ।'

धाम ज्योतिः, 'नारायणपरो ज्योतिः' (ना० उ० १३ । १) इति मन्त्रवर्णात् । सर्वकामानामास्पदत्वाद्वा धाम, 'परमं ब्रह्म परं धाम' (बृ० उ० २ । ३ । ६) इति श्रुतेः ।

धाम ज्योतिको कहते हैं । मन्त्रवर्णमें कहा है—'नारायण पर ज्योति है' अथवा सम्पूर्ण कामनाओं आश्रय होनेके कारण भगवान् धा हैं । श्रुति कहती है—'परम ब्र और परम धाम है ।

सत्यवचनधर्मरूपत्वात् सत्यः 'तस्मात् सत्यं परमं वदन्ति' इति श्रुतेः, सत्यस्य सत्यमिति वा, प्राणा वै सत्यं तेषामेष सत्यम्' (बृ० उ० २ । ३ । ६) इति श्रुतेः ।

सत्य-भाषणरूप धर्मस्वरूप होने भगवान् सत्य हैं । श्रुति कहती है—'इसीलिये सत्यको परम कहते हैं । अथवा सत्यका भी सत्य है इसलि सत्य हैं । श्रुति कहती है—'प्राण सत्य हैं, [परमात्मा] उनका भी सत्य है ।'

सत्यः अवितथः पराक्रमो यस्य सः सत्यपराक्रमः ।

जिनका पराक्रम सत्य अर्थात् अमो है, वे भगवान् सत्यपराक्रम हैं ।

निमीलिते यतो नेत्रे योगनिद्रारतस्य अतो निमिषः ।

योगनिद्रारत भगवान्के नेत्र मुँदे हुए हैं, इसलिये वे निमिष हैं ।

नित्यप्रबुद्धस्वरूपत्वात् अनिमिषः; मत्स्यरूपतया वा आत्मरूपतया वा अनिमिषः ।

नित्य-प्रबुद्धस्वरूप होनेके कारण अनिमिष हैं; अथवा मत्स्यरूप या आत्मरूप होनेसे अनिमिष हैं ।

भूततन्मात्ररूपां वैजयन्त्याख्यां स्रजं नित्यं बिभर्तीति स्रग्वी ।

सर्वदा भूततन्मात्ररूप वैजयन्तीमाला धारण करते हैं, इसलिये स्रग्वी हैं ।

वाचो विद्याया: पति: वाचस्पति:; सर्वार्थविषया धीर्बुद्धिरस्येत्युदारधी:, वाचस्पतिरुदारधी: इत्येकं नाम ॥ ३६ ॥

वाक् अर्थात् विद्याके पति होनेसे वाचस्पति हैं। भगवान्‌की बुद्धि सर्व-पदार्थोंको प्रत्यक्ष करनेवाली है, इसलिये वे उदारधी हैं। इस प्रकार **वाचस्पतिरुदारधी** यह एक नाम है ॥ ३६ ॥

अग्रणीर्ग्रामणीः श्रीमान् न्यायो नेता समीरणः ।
सहस्रमूर्धा विश्वात्मा सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥ ३७ ॥

२१८ अग्रणी:, २१९ ग्रामणी:, २२० श्रीमान्, २२१ न्याय:, २२२ नेता, २२३ समीरण:। २२४ सहस्रमूर्धा, २२५ विश्वात्मा, २२६ सहस्राक्ष:, २२७ सहस्रपात् ॥

अग्रं प्रकृष्टं पदं नयति मुमुक्षूनिति अग्रणी:।

मुमुक्षुओंको अग्र अर्थात् उत्तम पद-पर ले जाते हैं, इसलिये **अग्रणी** हैं।

भूतग्रामस्य नेतृत्वाद् ग्रामणी:।

भूतग्रामका नेतृत्व करनेके कारण **ग्रामणी** हैं।

श्री: कान्ति: सर्वातिशायिन्यस्येति श्रीमान्।

भगवान्‌की श्री अर्थात् कान्ति सबसे बढ़ी-चढ़ी है, इसलिये वे **श्रीमान्** हैं।

प्रमाणानुग्राहकोऽभेदकारकस्तर्को न्याय:।

प्रमाणोंका आश्रयभूत अभेदबोधक तर्क **न्याय** कहलाता है [इसलिये भगवान्‌का नाम न्याय है]।

जगद्यन्त्रनिर्वाहको नेता।

जगत्-रूप यन्त्रको चलानेवाले होनेसे **नेता** हैं।

श्वसनरूपेण भूतानि चेष्टयतीति समीरण:।

श्वासरूपसे प्राणियोंसे चेष्टा कराते हैं, इसलिये **समीरण** हैं।

सहस्राणि मूर्धानोऽस्येति सहस्रमूर्धा ।

भगवान्‌के सहस्र मूर्धा (शिर) हैं, इसलिये वे सहस्रमूर्धा हैं ।

विश्वस्यात्मा विश्वात्मा ।

विश्वके आत्मा होनेसे विश्वात्मा हैं।

सहस्राण्यक्षीण्यक्षाणि वा यस्य स सहस्राक्षः ।

जिनके सहस्र अक्षि (आँखें) या सहस्र अक्ष (इन्द्रियाँ) हैं, वे भगवान् सहस्राक्ष हैं ।

सहस्राणि पादा अस्येति सहस्रपात् । 'सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् (पु० सू० १) इति श्रुतेः ॥ ३७ ॥

भगवान्‌के सहस्र पाद (चरण) हैं, इसलिये वे सहस्रपात् हैं । श्रुति कहती है—'पुरुष सहस्र सिर, सहस्र नेत्र और सहस्र पादवाला है' ॥३७॥

आवर्तनो निवृत्तात्मा संवृतः सम्प्रमर्दनः ।
अहःसंवर्तको वह्निरनिलो धरणीधरः ॥ ३८ ॥

२२८ आवर्तनः, २२९ निवृत्तात्मा, २३० संवृतः, २३१ सम्प्रमर्दनः । २३२ अहःसंवर्तकः, २३३ वह्निः, २३४ अनिलः २३५ धरणीधरः ॥

आवर्तयितुं संसारचक्रं शीलमस्येति आवर्तनः ।

संसारचक्रका आवर्तन करने (घुमाने) का भगवान्‌का स्वभाव है, इसलिये वे आवर्तन हैं ।

संसारबन्धान्निवृत्त आत्मास्वरूपमस्येति निवृत्तात्मा ।

उनका आत्मा अर्थात् स्वरूप संसारबन्धनसे निवृत्त (छूटा हुआ) है, इसलिये वे निवृत्तात्मा हैं ।

आच्छादिकया अविद्यया संवृतत्वात् संवृतः ।

आच्छादन करनेवाली अविद्यासे संवृत (ढके हुए) होनेके कारण संवृत हैं ।

सम्यक् प्रमर्दयतीति रुद्रकालाद्याभिर्विभूतिभिरिति सम्प्रमर्दनः ।

भगवान् अपनी रुद्र और काल आदि विभूतियोंसे सबका सब ओरसे मर्दन करते हैं, इसलिये सम्प्रमर्दन हैं ।

सम्यगह्नां प्रवर्तनात् सूर्यः अहःसंवर्तकः ।

सम्यगरूपसे दिनके प्रवर्तक होनेके कारण सूर्य भगवान् अहःसंवर्तक हैं ।

हविर्वहनात् वह्निः ।

हविका वहन करनेके कारण वह्नि हैं ।

अनिलयः अनिलः, अनादित्वाद् अनिलः अनादानाद्वा, अननाद्वा अनिलः ।

[कोई निश्चित] निवासस्थान न होनेके कारण भगवान् अनिल हैं अथवा अनादि होनेसे अनिल हैं । अथवा ग्रहण न करनेके कारण या चेष्टा करनेसे अनिल हैं ।

शेषदिग्गजादिरूपेण वराहरूपेण च धरणीं धत्त इति धरणीधरः ॥ ३८ ॥

शेष और दिग्गजादिरूपसे अथवा वराहरूपसे पृथ्वीको धारण करते हैं, इसलिये धरणीधर हैं ॥ ३८ ॥



सुप्रसादः प्रसन्नात्मा विश्वधृग् विश्वभुग् विभुः ।
सत्कर्ता सत्कृतः साधुर्जह्नुर्नारायणो नरः ॥ ३९ ॥

२३६ सुप्रसादः, २३७ प्रसन्नात्मा, २३८ विश्वधृक्, २३९ विश्वभुक्, २४० विभुः । २४१ सत्कर्ता, २४२ सत्कृतः, २४३ साधुः, २४४ जह्नुः, २४५ नारायणः, २४६ नरः ॥

शोभनः प्रसादो यस्यापकारवतामपि शिशुपालादीनां मोक्षप्रदातृत्वादिति सुप्रसादः ।

अपना अपकार करनेवाले शिशुपालादिको भी मोक्ष देनेके कारण जिनका प्रसाद (कृपा) अति सुन्दर है, वे भगवान् सुप्रसाद हैं ।

रजस्तमोभ्यामकलुषित आत्मान्तःकरणमस्येति प्रसन्नात्मा। करुणार्द्रस्वभावत्वाद्वा, यद्वा प्रसन्नस्वभावः कारुणिक इत्यर्थः अवाप्तसर्वकामत्वाद्वा।	भगवान्का अन्तःकरण रज और तमसे दूषित नहीं है, इसलिये वे **प्रसन्नात्मा** हैं अथवा करुणार्द्रस्वभाव होनेसे प्रसन्नात्मा हैं। या प्रसन्नस्वभाव यानी करुणा करनेवाले हैं। अथवा उन्हें सब प्रकारकी कामनाएँ प्राप्त हैं, इसलिये वे प्रसन्नात्मा हैं।
विश्वं धृष्णोतीति विश्वधृक्। ञिधृषा प्रागल्भ्ये।	भगवान् विश्वको धारण करते हैं, इसलिये वे **विश्वधृक्** हैं। प्रगल्भतावाचक 'ञिधृषा' धातुसे धृक् बनता है।
विश्वं भुङ्क्ते भुनक्ति पालयतीति वा विश्वभुक्।	विश्वको भक्षण करते अथवा भोगते यानी पालन करते हैं, इसलिये **विश्वभुक्** हैं।
हिरण्यगर्भादिरूपेण विविधं भवतीति विभुः, 'नित्यं विभुम्' (मु० उ० १।५।६) इति मन्त्रवर्णात्।	हिरण्यगर्भादिरूपसे विविध होते हैं, इसलिये **विभु** हैं। मन्त्रवर्ण कहता है 'नित्य और विभुको।'
सत्करोति पूजयतीति सत्कर्ता।	सत्कार करते अर्थात् पूजते हैं, इसलिये **सत्कर्ता** हैं।
पूजितैरपि पूजितः सत्कृतः।	पूजितोंसे भी पूजित हैं, इसलिये **सत्कृत** हैं।
न्यायप्रवृत्ततया साधुः; साधयतीति वा साध्यभेदान्, उपादानात् साध्यमात्रसाधको वा।	न्यायानुकूल प्रवृत्त होते हैं, इसलिये **साधु** हैं। अथवा समस्त साध्यभेदोंका साधन करते हैं या उपादान कारण होनेसे साध्यमात्रके साधक हैं, इसलिये साधु हैं।

जनान् संहारसमये अपह्नुते अपनयतीति जह्नुः जहात्यविदुषो भक्तान्नयति परम्पदमिति वा ।

नर आत्मा, ततो जातान्याकाशादीनि नाराणि कार्याणि तानि अयं कारणात्मना व्याप्नोति, अतश्च तान्ययनमस्येति नारायणः—

'यच्च किञ्चिज्जगत्सर्वं
दृश्यते श्रूयतेऽपि वा ।
अन्तर्बहिश्च तत्सर्वं
व्याप्य नारायणः स्थितः ॥'
(ना० उ० १३ । १-२)

इति मन्त्रवर्णात् ।

'नराज्जातानि तत्त्वानि
नारायणीति ततो विदुः ।
तान्येव चायनं तस्य
तेन नारायणः स्मृतः ॥'

इति महाभारते ।

नाराणां जीवानामयनत्वात्प्रलय इति वा नारायणः, 'यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति' (तै० उ० ३ । १) इति श्रुतेः । नाराणामयनं यस्मात्तस्मान्नारायणः स्मृतः' इति ब्रह्मवैवर्तात्

'संहारके समय जनों (जीवों) का अपह्नव (लय) या अपनयन (वहन) करते हैं, इसलिये जह्नु हैं। अथवा अज्ञानियोंको त्यागते और भक्तोंको परमपदपर ले जाते हैं, इसलिये जह्नु हैं।

नर आत्माको कहते हैं, उससे उत्पन्न हुए आकाशादि नार हैं। उन कार्यरूप नारोंको कारणरूपसे व्याप्त करते हैं, इसलिये वे उनके अयन (घर) हैं, अतः भगवान्‌का नाम नारायण है। मन्त्रवर्ण कहता है—'जो कुछ भी जगत् दिखायी या सुनायी देता है, उस सबको नारायण बाहर-भीतरसे व्याप्त करके स्थित हैं।' महाभारतमें कहा है—'तत्त्व नरसे उत्पन्न हुए हैं' इसलिये वे नार कहलाते हैं। वे ही पहले भगवान्‌के अयन थे, इसलिये भगवान् नारायण कहलाते हैं।'

अथवा प्रलय-कालमें नार अर्थात् जीवोंके अयन होनेके कारण नारायण हैं। श्रुति कहती है—'जिसमें कि सब जीव मरकर प्रविष्ट होते हैं।' ब्रह्मवैवर्तपुराणमें कहा है—क्योंकि [भगवान्] नारोंके अयन हैं, इसलिये नारायण कहलाते हैं।' अथवा 'अप्

'आपो नारा इति प्रोक्ता
आपो वै नरसूनवः ।
ता यदस्यायनं पूर्वं
तेन नारायणः स्मृतः ॥'
(मनु० १ । १०)

इति मनुवचनाद् वा नारायणः ।

'नारायणाय नम इत्ययमेव सत्यः
संसारघोरविषसंहरणाय मन्त्रः ।
शृण्वन्तु भव्यमतयो यतयोऽस्तरागा
उच्चैस्तरामुपदिशाम्यहमूर्ध्वबाहुः ॥'

इति श्रीनारसिंहपुराणे ।

'नयतीति नरः प्रोक्तः
परमात्मा सनातनः ।'

इति व्यासवचनम् ॥ ३९ ॥

(जल) नार कहलाता है; क्योंकि वह नर (परमात्मा) का पुत्र है, और पहले वह (नार) ही परमात्मा का अयन था, इसलिये वे नारायण कहलाते हैं।' इस मनुजीके वाक्यसे भी वे नारायण हैं। श्रीनारसिंहपुराणमें कहा है—'हे सुमति और विरक्त यतिजन! आपलोग सुनिये, मैं बाँह उठाकर बड़े जोरसे उपदेश करता हूँ कि नारायणाय नमः—यही संसाररूपी सर्पके घोर विषका नाश करनेके लिये सच्चा मन्त्र है।'

'नयन करता (ले जाता) है, इसलिये सनातन परमात्मा नर कहलाता है' इस व्यासजीके वचनानुसार [भगवान् नर हैं] ॥ ३९ ॥

असंख्येयोऽप्रमेयात्मा विशिष्टः शिष्टकृच्छुचिः ।
सिद्धार्थः सिद्धसङ्कल्पः सिद्धिदः सिद्धिसाधनः ॥ ४० ॥

२४७ असंख्येयः, २४८ अप्रमेयात्मा, २४९ विशिष्टः, २५० शिष्टकृत्, २५१ शुचिः, २५२ सिद्धार्थः, २५३ सिद्धसङ्कल्पः, २५४ सिद्धिदः, २५५ सिद्धिसाधनः।

यस्मिन् संख्या नामरूपभेदादिः न विद्यत इति असंख्येयः ।

जिनमें संख्या अर्थात् नाम-रूप भेदादि नहीं है, वे भगवान् असंख्येय हैं।

अप्रमेय आत्मा स्वरूपमस्येति अप्रमेयात्मा ।

उनका आत्मा अर्थात् स्वरूप अप्रमेय है, इसलिये वे अप्रमेयात्मा हैं।

अतिशेते सर्वमतो विशिष्टः ।

शिष्टं शासनं तत् करोतीति शिष्टकृत्; शिष्टान् करोति पालयतीति वा । सामान्यवचनो धातुर्विशेषवचनो दृष्टः कुरु काष्ठानीत्याहरणे यथा, तद्वदिति वा शिष्टकृत् ।

निरञ्जनः शुचिः ।

सिद्धो निर्वृत्तः अर्थ्यमानोऽर्थोऽस्येति सिद्धार्थः 'सत्यकामः' (छा० उ० ८ । ७ । १) इति श्रुतेः ।

सिद्धो निष्पन्नः सङ्कल्पोऽस्येति सिद्धसङ्कल्पः, 'सत्यसङ्कल्पः' (छा० उ० ८ । ७ । १) इति श्रुतेः ।

सिद्धिं फलं कर्तृभ्यः स्वाधिकारानुरूपतो ददातीति सिद्धिदः ।

सिद्धेः क्रियायाः साधकत्वात् सिद्धिसाधनः ॥ ४० ॥

सबसे अतिशय (बढ़े-चढ़े) हैं, इसलिये विशिष्ट हैं ।

शिष्ट शासनको कहते हैं, भगवान् शासन करते हैं, इसलिये वे शिष्टकृत् हैं । अथवा भगवान शिष्टों (साधुओं) को करते अर्थात् पालते हैं, इसलिये शिष्टकृत् हैं । यहाँ 'कृ' धातुका अर्थ पालन इसलिये किया गया है कि कहीं सामान्यार्थवाचक धातुको विशेष अर्थ बोधन करते भी देखा जाता है, जैसे 'कुरु काष्ठानि' इस वाक्यमें [कृ धातु] आहरण (लाने) के अर्थमें प्रयुक्त हुआ है ।

मलहीन होनेसे शुचि हैं ।

भगवान्‌का इच्छित अर्थ सिद्ध अर्थात् निर्वृत्त (सम्पन्न) हो गया है, इसलिये 'सत्यकाम' आदि श्रुतिके अनुसार वे सिद्धार्थ हैं ।

उनका संकल्प सिद्ध अर्थात् पूर्ण हो गया है, इसलिये वे 'सत्यसङ्कल्प' आदि श्रुतिके अनुसार सिद्धसङ्कल्प हैं ।

कर्ताओंको उनके अधिकारानुसार सिद्धि यानी फल देते हैं, इसलिये सिद्धिद हैं ।

सिद्धिरूप क्रियाके साधक होनेके कारण सिद्धिसाधन हैं ॥ ४० ॥

वृषाही वृषभो विष्णुर्वृषपर्वा वृषोदरः ।
वर्धनो वर्धमानश्च विविक्तः श्रुतिसागरः ॥ ४१ ॥

२५६ वृषाही, २५७ वृषभः, २५८ विष्णुः, २५९ वृषपर्वा, २६० वृषोदरः।
२६१ वर्धनः, २६२ वर्धमानः, च, २६३ विविक्तः, २६४ श्रुतिसागरः॥

वृषो धर्मः पुण्यम्, तदेवाहः प्रकाशसाधर्म्यात्, द्वादशाहप्रभृतिर्वृषाहः; सोऽस्यास्तीति वृषाही। वृषाह इत्यत्र 'राजाहःसखिभ्यष्टच्' (पा० सू० ५। ४। ९१) इति टच्प्रत्ययः समासान्तः।

वृष धर्म या पुण्यको कहते हैं, प्रकाशस्वरूपतामें समानता होनेके कारण वही अहः (दिन) है। अतः द्वादशाह आदि यज्ञोंको वृषाह कहते हैं। वे द्वादशाहादि यज्ञ भगवान्में स्थित हैं। अतः वे वृषाही हैं। वृषाह शब्दमें 'राजाहःसखिभ्यष्टच्' इस पाणिनिसूत्रके अनुसार समासान्त टच् प्रत्यय हुआ है।

वर्षत्येष भक्तेभ्यः कामानिति वृषभः।

भक्तोंके लिये भगवान् कामों (इच्छित वस्तुओं) की वर्षा करते हैं, इसलिये वे वृषभ हैं।

विष्णुः 'विष्णुर्विक्रमणात्' (महा० उद्योग० ७० । १३) इति व्यासोक्तेः।

'सब ओर जाने (व्याप्त होने) के कारण विष्णु हैं' इस व्यासजीकी उक्तिके अनुसार भगवान् विष्णु हैं।

वृषरूपाणि सोपानपर्वाण्याहुः परं धामारुरुक्षोरित्यतो वृषपर्वा।

परमधाममें आरूढ़ होनेकी इच्छावालेके लिये वृष (धर्म) रूप पर्व (सीढ़ियाँ) बतलाये गये हैं। इसलिये भगवान् वृषपर्वा हैं।

प्रजा वर्षतीव उदरमस्येति वृषोदरः।

भगवान्‌का उदर मानो प्रजाकी वर्षा करता है, इसलिये वे वृषोदर हैं।

वर्धयतीति वर्धनः।

बढ़ाते हैं, इसलिये वर्धन हैं।

प्रपञ्चरूपेण वर्धत इति

प्रपञ्चरूपसे बढ़ाते हैं, इसलिये

वर्धमानः । | वर्धमान हैं ।

इत्थं वर्धमानोऽपि पृथगेव तिष्ठतीति विविक्तः । | इस प्रकार बढ़ते हुए भी पृथक् ही रहते हैं, इसलिये विविक्त हैं ।

श्रुतयः सागर इवात्र निधीयन्ते इति श्रुतिसागरः ॥ ४१ ॥ | समुद्रमें जलके समान भगवान्में श्रुतियाँ रखी हुई हैं, इसलिये वे श्रुतिसागर हैं ॥ ४१ ॥



सुभुजो दुर्धरो वाग्मी महेन्द्रो वसुदो वसुः ।
नैकरूपो बृहद्रूपः शिपिविष्टः प्रकाशनः ॥ ४२ ॥

२६५ सुभुजः, २६६ दुर्धरः, २६७ वाग्मी, २६८ महेन्द्रः, २६९ वसुदः, २७० वसुः । २७१ नैकरूपः, २७२ बृहद्रूपः, २७३ शिपिविष्टः, २७४ प्रकाशनः ॥

शोभना भुजा जगद्रक्षाकरा अस्येति सुभुजः । | भगवान्की जगत्की रक्षा करनेवाली भुजाएँ अति सुन्दर हैं, अतः वे सुभुज हैं ।

पृथिव्यादीन्यपि लोकधारकाण्यन्यैर्धारयितुमशक्यानि धारयन् न केनचिद् धारयितुं शक्य इति दुर्धरः; दुःखेन ध्यानसमये मुमुक्षुभिर्हृदये धारयत इति वा दुर्धरः । | जो दूसरोंसे धारण नहीं किये जा सकते, उन पृथ्वी आदि लोकधारक पदार्थोंको भी धारण करते हैं और स्वयं किसीसे धारण नहीं किये जा सकते, इसलिये दुर्धर हैं । अथवा ध्यानके समय मुमुक्षुओंद्वारा अति कठिनतासे हृदयमें धारण किये जाते हैं, इसलिये वे दुर्धर हैं ।

यतो निःसृता ब्रह्ममयी वाक् तस्माद् वाग्मी । | क्योंकि भगवान्से वेदमयी वाणीका प्रादुर्भाव हुआ है, इसलिये वे वाग्मी हैं ।

महांश्चासाविन्द्रश्चेति महेन्द्रः, ईश्वराणामपीश्वरः ।

वसु धनं ददातीति वसुदः 'अन्नादो वसुदानः' (बृ० उ० ४ । ४ । २४) इति श्रुतेः ।

दीयमानं तद् वस्वपि स एवेति वा वसुः आच्छादयत्यात्मस्वरूपं माययेति वा वसुः; अन्तरिक्ष एव वसति नान्यत्रेति असाधारणेन वसनेन वायुर्वा वसुः, 'वसुरन्तरिक्षसत्' (क० उ० २ । ५ । २) इति श्रुतेः ।

एकं रूपमस्य न विद्यत इति नैकरूपः 'इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते' (बृ० उ० २ । ५ । १९) इति श्रुतेः। 'ज्योतींषि विष्णुः' (विष्णु० २।१२।३८) इत्यादिस्मृतेश्च ।

बृहन्महद् वराहादिरूपमस्येति बृहद्रूपः ।

शिपयः पशवः, तेषु विशति प्रतितिष्ठति यज्ञरूपेणेति शिपिविष्टः यज्ञमूर्तिः 'यज्ञो वै विष्णुः पशवः शिपिर्यज्ञ एव पशुषु प्रतितिष्ठति' (तै० सं० १ । ७ । ४) इति श्रुतेः । शिपयो रश्मयस्तेषु निविष्ट इति वा ।

*

महान् इन्द्र अर्थात् ईश्वरोंके भी ईश्वर होनेके कारण महेन्द्र हैं ।

वसु अर्थात् धन देते हैं, इसलिये वसुद हैं । श्रुति कहती है—'अन्नका भोक्ता और वसुका देनेवाला है ।'

दिया जानेवाला वसु (धन) भी वे ही हैं, इसलिये वसु हैं; अथवा मायासे अपने स्वरूपको ढक लेते हैं, इसलिये वसु हैं । अथवा अन्तरिक्षमें ही बसते हैं, अन्यत्र नहीं; इस प्रकार अपने असाधारण वासके कारण वायु ही वसु है । श्रुति कहती है—'अन्तरिक्षमें रहनेवाला वसु ।'

इनका एक ही रूप नहीं है, इसलिये ये नैकरूप हैं । श्रुति कहती है- 'इन्द्र (परमात्मा) मायासे अनेक रूपसे चेष्टा करता है ।' तथा 'ज्योतियाँ विष्णु हैं' आदि स्मृतिका भी यही अभिप्राय है ।

भगवान्‌के वराह आदि रूप बृहत् अर्थात् महान् हैं, इसलिये वे बृहद्रूप हैं।

शिपि पशुको कहते हैं, उनमें यज्ञरूपसे स्थित होते हैं, इसलिये भगवान् यज्ञमूर्ति शिपिविष्ट हैं । श्रुति कहती है—'यज्ञ ही विष्णु है, पशुओंको शिपि कहते हैं और यज्ञ ही पशुओंमें स्थित होता है ।' अथवा शिपि किरणोंको भी कहते हैं, उनमें स्थित हैं, इसलिये शिपिविष्ट हैं ।

'शैत्याच्छयनयोगाच्च
शीति वारि प्रचक्षते ।
तत्पानाद् रक्षणाच्चैव
शिपयो रश्मयो मताः ॥
तेषु प्रवेशाद् विश्वेशः
शिपिविष्ट इहोच्यते ।'

सर्वेषां प्रकाशनशीलत्वात् प्रकाशनः ॥ ४२ ॥

'शीतलता और विष्णुभगवान्‌के शयनके कारण जलको शि कहते हैं, उसका पान तथा रक्षा करनेके कारण रश्मियों (किरणों)का नाम शिपि है, तथा उनमें प्रविष्ट होनेके कारण श्रीविश्वेश्वर लोकमें शिपिविष्ट कहलाते हैं ।'

सबको प्रकाशित करनेवाले होनेके कारण भगवान् **प्रकाशन** हैं ॥ ४२ ॥



ओजस्तेजोद्युतिधरः प्रकाशात्मा प्रतापनः ।
ऋद्धः स्पष्टाक्षरो मन्त्रश्चन्द्रांशुर्भास्करद्युतिः ॥ ४३ ॥

२७५ ओजस्तेजोद्युतिधरः, २७६ प्रकाशात्मा, २७७ प्रतापनः । २७८ ऋद्धः, २७९ स्पष्टाक्षरः, २८० मन्त्रः, २८१ चन्द्रांशुः, २८२ भास्करद्युतिः ॥

ओजः प्राणबलम्; तेजः शौर्यादयो गुणाः; द्युतिर्दीप्तिः; ताः धारयतीति ओजस्तेजोद्युतिधरः । **अथवा,** ओजस्तेज **इति नामद्वयम्,** 'बलं बलवतां चाहम्' (गीता ७ । ११) 'तेजस्तेजस्विनामहम्' (गीता ७ । १०) **इति भगवद्वचनात् । द्युतिं ज्ञानलक्षणां दीप्तिं धारयतीति** द्युतिधरः ।

प्रकाशस्वरूप आत्मा यस्य स प्रकाशात्मा ।

ओज प्राण और बलको, तेज शूरवीरता आदि गुणोंको तथा द्युति दीप्ति (कान्ति) को कहते हैं, भगवान् उन्हें धारण करते हैं, इसलिये वे **ओजस्तेजोद्युतिधर** कहलाते हैं । अथवा **'मैं बलवानोंका बल हूँ' और 'तेजस्वियोंका तेज हूँ'** भगवान्‌के इन वचनोंके अनुसार **ओज** और **तेज** ये दो नाम हैं, ज्ञानस्वरूप दीप्तिको धारण करते हैं, इसलिये **द्युतिधर** हैं ।

जिनका आत्मा (शरीर) प्रकाशस्वरूप है, वे भगवान् **प्रकाशात्मा** कहलाते हैं ।

सवित्रादिविभूतिभिः विश्वं प्रतापयतीति प्रतापनः ।

सविता (सूर्य) आदि अपनी विभूतियोंसे विश्वको तप्त करते हैं, इसलिये **प्रतापन** हैं ।

धर्मज्ञानवैराग्यादिभिरुपेतत्वाद् ऋद्धः ।

धर्म, ज्ञान और वैराग्यादिसे सम्पन्न होनेके कारण **ऋद्ध** हैं ।

स्पष्टमुदात्तम् ओङ्कारलक्षणमक्षरमस्येति स्पष्टाक्षरः ।

भगवान्का ओंकाररूप अक्षर स्पष्ट अर्थात् उदात्त है, इसलिये वे **स्पष्टाक्षर** हैं ।

ऋग्यजुःसामलक्षणो मन्त्रः; मन्त्रबोध्यत्वाद् वा मन्त्रः ।

[भगवान् साक्षात्] ऋक्, साम और यजुरूप **मन्त्र** हैं, अथवा मन्त्रोंसे जानने योग्य होनेके कारण मन्त्र हैं ।

संसारतापतिग्मांशुतापतापितचेतसां चन्द्रांशुरिवाह्लादकरत्वात् चन्द्रांशुः ।

संसारतापरूप सूर्यके तापसे सन्तप्तचित्त पुरुषोंको चन्द्रमाकी किरणोंके समान आह्लादित करनेवाले हैं इसलिये **चन्द्रांशु** हैं ।

भास्करद्युतिसाधर्म्याद् भास्करद्युतिः ॥ ४३ ॥

भास्करद्युति (सूर्यके तेज) के समान धर्मवाले होनेके कारण **भास्करद्युति** हैं ॥ ४३ ॥



अमृतांशूद्भवो भानुः शशबिन्दुः सुरेश्वरः ।
औषधं जगतः सेतुः सत्यधर्मपराक्रमः ॥ ४४ ॥

२८३ अमृतांशूद्भवः, २८४ भानुः, २८५ शशबिन्दुः, २८६ सुरेश्वरः, २८७ औषधम्, २८८ जगतः सेतुः, २८९ सत्यधर्मपराक्रमः

मथ्यमाने पयोनिधावमृतांशोश्चन्द्रस्य उद्भवो यस्मात्स अमृतांशूद्भवः ।

[अमृतके लिये] समुद्रमन्थन करते समय अमृतांशु—चन्द्रमाकी उत्पत्ति जिन [कारणरूप परमात्मा] से हुई थी, वे भगवान् **अमृतांशूद्भव** हैं

भातीति भानुः 'तमेव भान्तमनुभाति सर्वम्' (क० उ० २।५।१५) इति श्रुतेः ।

शश इव बिन्दुर्लाञ्छनमस्येति शशबिन्दुश्चन्द्रः तद्वत् प्रजाः पुष्णातीति शशबिन्दुः । 'पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः' (गीता १५।१३) इति भगवद्वचनात् ।

सुराणां देवानां शोभनदातॄणां चेश्वरः सुरेश्वरः ।

संसाररोगभेषजत्वाद् औषधम् ।

जगतां समुत्तारणहेतुत्वादसम्भेदकारणत्वाद् वा सेतुवद् वर्णाश्रमादीनां जगतः सेतुः, 'एष सेतुर्विधरण एषां लोकानामसम्भेदाय' (बृ० उ० ४।४।२२) इति श्रुतेः ।

सत्या अवितथा धर्मा ज्ञानादयो गुणाः पराक्रमश्च यस्य सः सत्यधर्मपराक्रमः ॥ ४४ ॥

भासित होनेके कारण **भानु** हैं । श्रुति कहती है—'उसीके भासित होनेपर सब भासते हैं ।'

शश (खरगोश) के समान जिसमें बिन्दु अर्थात् चिह्न है, उस चन्द्रमाका नाम शशबिन्दु है । उसके समान सम्पूर्ण प्रजाका पोषण करते हैं, इसलिये **शशबिन्दु** हैं । भगवान्‌का वचन है—'मैं रसस्वरूप चन्द्रमा होकर सब ओषधियोंका पोषण करता हूँ ।'

सुरों अर्थात् देवताओं और शुभदाताओंके ईश्वर होनेके कारण **सुरेश्वर** हैं ।

संसाररोगका औषध होनेके कारण **औषध** हैं ।

संसारको पार करनेके हेतु होनेके तथा सेतुके समान वर्णाश्रमोंके असम्भेद (परस्पर न मिलने) के कारण होनेसे **जगत्सेतु** हैं । श्रुति कहती है कि—'इन लोकोंके पारस्परिक असम्भेद (न मिलने) के लिये वही इनको धारण करनेवाला सेतु है ।'

जिनके धर्म-ज्ञानादि गुण और पराक्रम सत्य हैं—मिथ्या नहीं हैं, वे भगवान् **सत्यधर्मपराक्रम** हैं ॥४४॥

भूतभव्यभवन्नाथः पवनः पावनोऽनलः ।
कामहा कामकृत् कान्तः कामः कामप्रदः प्रभुः॥ ४५॥

२९० भूतभव्यभवन्नाथः, २९१ पवनः, २९२ पावनः, २९३ अनलः, २९४ कामहा, २९५ कामकृत, २९६ कान्तः, २९७ कामः, २९८ कामप्रदः, २९९ प्रभुः ॥

भूतभव्यभवतां भूतग्रामाणां नाथः, तैर्याच्यते तानुपतपति तेषामीष्टे शास्तीति वा भूत-भव्यभवन्नाथः ।

भूत, भव्य (भविष्य) और भवत् (वर्तमान) प्राणियोंके नाथ हैं, उनसे याचना किये जाते हैं, उन्हें ताप देते हैं, उनके ईश्वर हैं, अथवा उनका शासन करते हैं, इसलिये **भूतभव्यभवन्नाथ** हैं।

पवत इति पवनः, 'पवनः पवतामस्मि' (गीता १० । ३१) **इति भगवद्वचनात् ।**

पवित्र करते हैं, इसलिये **पवन** हैं। भगवान्‌का वचन है—**'पवित्र करनेवालोंमें मैं पवन हूँ ।'**

पावयतीति पावनः । 'भीषास्माद्वातः पवते' (तै० उ० २ । ८) **इति श्रुतेः ।**

चलाते हैं, इसलिये **पावन** हैं। जैसा कि श्रुति कहती है--**'इसके भयसे वायु चलता है ।'**

अनान् प्राणान् आत्मत्वेन लातीति जीवः अनलः, **णलते-र्गन्धवाचिनो नञ्पूर्वाद् वा** 'अगन्धमरसम्' **इति श्रुतेः; न अलं पर्याप्तमस्य विद्यत इति वानलः ।**

अन अर्थात् प्राणोंको आत्मभावसे ग्रहण करता है, इसलिये जीवका नाम **अनल** है । अर्थात् नञ्पूर्वक गन्धवाचक णल्धातुसे अनल रूप बनता है, अतः **'अगन्ध है, अरस है'** इत्यादि श्रुतिके अनुसार गन्धहीन होनेके कारण परमात्माका नाम अनल है । अथवा भगवान्‌का अलं अर्थात् पर्याप्तभाव (अन्त) नहीं है, इसलिये वे अनल हैं ।

कामान् हन्ति मुमुक्षूणां भक्तानां हिंसकानां चेति कामहा ।

मोक्षकामी भक्तजनों तथा हिंसकोंकी कामनाओंको नष्ट कर देते हैं, इसलिये **कामहा** हैं ।

सात्त्विकानां कामान् करोतीति कामकृत्; कामः प्रद्युम्नः तस्य जनकत्वाद् वा ।

सात्त्विक भक्तोंकी कामनाओंको पूरा करते हैं, इसलिये **कामकृत्** हैं । अथवा काम प्रद्युम्नको कहते हैं, उनके जनक होनेके कारण कामकृत् हैं ।*

अभिरूपतमः कान्तः ।

अत्यन्त रूपवान् हैं, इसलिये **कान्त** हैं ।

काम्यते पुरुषार्थाभिकाङ्क्षिभिरिति कामः ।

पुरुषार्थकी आकांक्षावालोंसे कामना किये जाते हैं, इसलिये **काम** हैं ।†

भक्तेभ्यः कामान् प्रकर्षेण ददातीति कामप्रदः ।

भक्तोंको प्रकर्षतासे उनकी कामना की हुई वस्तुएँ देते हैं, इसलिये **कामप्रद** हैं ।

प्रकर्षेण भवनात् प्रभुः ॥४५॥

प्रकर्ष (अतिशयता) से हैं, इसलिये **प्रभु** हैं ॥ ४५ ॥

युगादिकृद् युगावर्तो नैकमायो महाशनः ।
अदृश्यो व्यक्तरूपश्च सहस्रजिदनन्तजित् ॥ ४६ ॥

२०० युगादिकृत्, २०१ युगावर्तः, २०२ नैकमायः, २०३ महाशनः । २०४ अदृश्यः, २०५ व्यक्तरूपः, च, २०६ सहस्रजित्, २०७ अनन्तजित् ॥

---

* 'कामान् कृन्ततीति कामकृत्' इस व्युत्पत्तिके अनुसार कामनाओंको काटते हैं, इसलिये कामकृत् हैं, ऐसा अर्थ भी है ।

† क=ब्रह्मा+अ=विष्णु+म=महादेव--इस विग्रहके अनुसार त्रिदेवरूप होनेसे भी भगवान् काम हैं ।

युगादेः कालभेदस्य कर्तृत्वाद् युगादिकृत्; युगानामादिमारम्भं करोतीति वा ।

युगादि कालभेदके कर्ता होनेके कारण युगादिकृत हैं । अथवा युगादिका आरम्भ करते हैं, इसलिये युगादिकृत हैं ।

इति नाम्नां तृतीयं शतं विवृतम् ।

यहाँतक सहस्रनामके तीसरे शतकका विवरण हुआ ।

युगानि कृतादीन्यावर्तयति कालात्मनेति युगावर्तः ।

कालरूपसे सत्ययुग आदि युगोंका आवर्तन करते हैं, इसलिये युगावर्त हैं ।

एका माया न विद्यते बह्वीर्माया वहतीति नैकमायः । 'नलोपो नञः' (पा० सू० ६ । ३ । ७३) इति नकारलोपो न भवति, ञकारानुबन्धरहितस्यापि नकारस्य प्रतिषेधवाचिनो विद्यमानत्वात् ।

जिनकी एक ही माया नहीं है बल्कि जो अनेकों मायाओंको धारण करते हैं, वे भगवान् नैकमाय हैं । 'नलोपो नञः' इस पाणिनि-सूत्रसे यहाँ नकारका लोप नहीं होता, क्योंकि ञकारानुबन्धसे रहित 'न' भी प्रतिषेध अर्थमें होता है ।

महदशनमस्येति महाशनः ।

कल्पान्ते सर्वग्रसनात् ।

कल्पान्तमें सबको ग्रस लेते हैं इसलिये भगवान्का महान् अशन (भोजन) है, अतः वे महाशन कहलाते हैं ।

सर्वेषां बुद्धीन्द्रियाणामगम्यः अदृश्यः ।

समस्त ज्ञानेन्द्रियोंके अविषय हैं इसलिये अदृश्य हैं ।

स्थूलरूपेण व्यक्तं स्वरूपमस्येति व्यक्तरूपः; स्वयंप्रकाशमानत्वाद् योगिनां व्यक्तरूप इति वा ।

स्थूलरूपसे भगवान्का स्वरूप व्यक्त है, इसलिये वे व्यक्तरूप हैं । अथवा स्वयंप्रकाश होनेसे योगियोंके लिये व्यक्तरूप हैं ।

सुरारीणां सहस्राणि युद्धे जयतीति सहस्रजित् ।

युद्धमें सहस्रों देवशत्रुओंको जीतते हैं, इसलिये सहस्रजित् हैं ।

सर्वाणि भूतानि युद्धक्रीडादिषु सर्वत्राचिन्त्यशक्तितया जयतीति अनन्तजित् ॥ ४६ ॥

अचिन्त्यशक्ति होनेके कारण युद्ध और क्रीड़ा आदिमें सर्वत्र समस्त भूतोंको जीतते हैं, इसलिये अनन्तजित् हैं ॥ ४६ ॥

इष्टोऽविशिष्टः शिष्टेष्टः शिखण्डी नहुषो वृषः ।
क्रोधहा क्रोधकृत्कर्ता विश्वबाहुर्महीधरः ॥ ४७ ॥

३०८ इष्टः, ३०९ अविशिष्टः, ३१० शिष्टेष्टः, ३११ शिखण्डी, ३१२ नहुषः, ३१३ वृषः । ३१४ क्रोधहा, ३१५ क्रोधकृत्कर्ता, ३१६ विश्वबाहुः, ३१७ महीधरः ॥

परमानन्दात्मकत्वेन प्रिय इष्टः, यज्ञेन पूजित इति वा इष्टः ।

परमानन्दस्वरूप होनेके कारण प्रिय हैं, इसलिये इष्ट हैं, अथवा यज्ञद्वारा पूजे जाते हैं, इसलिये इष्ट हैं ।

सर्वेषामन्तर्यामित्वेन अविशिष्टः ।

सबके अन्तर्यामी होनेसे अविशिष्ट हैं ।

शिष्टानां विदुषामिष्टः शिष्टेष्टः; शिष्टा इष्टा अस्येति वा, 'प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः ॥' (गीता ७ । १७) इति भगवद्वचनात्; शिष्टैरिष्टः पूजित इति वा शिष्टेष्टः ।

शिष्ट अर्थात् विद्वानोंके इष्ट हैं, इसलिये शिष्टेष्ट हैं। अथवा भगवान्के शिष्टजन इष्ट (प्रिय) हैं, इसलिये वे शिष्टेष्ट हैं; जैसा कि भगवान्ने कहा है—'**मैं ज्ञानीको अत्यन्त प्रिय हूँ और वह मुझे प्रिय है** ।' अथवा शिष्टोंसे इष्ट अर्थात् पूजित होनेके कारण शिष्टेष्ट हैं।

शिखण्डः कलापोऽलङ्कारोऽस्येति शिखण्डी यतो गोपवेषधरः ।

शिखण्ड—कलाप अर्थात् मोरपंख भगवान्का शिरोभूषण है अतः वे शिखण्डी हैं, क्योंकि वे गोपवेषधारी हुए थे ।

नह्यति भूतानि माययातो नहुषः, णह बन्धने ।

भूतोंको मायासे नद्ध करते (बाँधते) हैं, इसलिये नहुष हैं । णह् धातु बाँधने अर्थमें है ।

कामानां वर्षणाद् वृषः **धर्मः** 'वृषो हि भगवान् धर्मः

स्मृतो लोकेषु भारत ।

नैघण्टुकपदाख्यानै-

र्विद्धि मां वृषमुत्तमम् ॥'

इति महाभारते (शान्ति० ३४२ । ८८) ।

कामनाओंकी वर्षा करनेके कारण धर्मको **वृष** कहते हैं । महाभारतमें कहा है—'हे भारत ! लोकोंमें निघण्टुकी पदाख्यातिके अनुसार भगवान् धर्मको वृष कहते हैं, अतः मुझे भी उत्तम वृष ही जान ।'

साधूनां क्रोधं हन्तीति क्रोधहा ।

साधुओंका क्रोध नष्ट कर देते हैं इसलिये **क्रोधहा** हैं ।

असाधुषु क्रोधं करोतीति क्रोधकृत् ।

असाधुओंपर क्रोध करते हैं इसलिये **क्रोधकृत्** हैं ।

क्रियत इति कर्म जगत्तस्य कर्ता 'यो वै बलाक एतेषां पुरुषाणां कर्ता यस्य वै तत् कर्म स वेदितव्यः' (कौ० उ० ४ । १८) **इति श्रुतेः** ।

जो किया जाय उसे कर्म कहते हैं इस प्रकार जगत् कर्म है और भगवान् उसके **कर्ता** हैं, जैसा कि श्रुति कहती है 'हे बलाके ! इन पुरुषोंका जो करनेवाला है, अथवा जिसके ये सब कर्म हैं, उसे जानना चाहिये ।'

क्रोधकृतां दैत्यादीनां कर्ता छेदक इत्येकं वा नाम ।

अथवा क्रोध करनेवाले दैत्यादिकोंके कर्तन करनेवाले हैं, इसलिये क्रोधकृत्कर्ता यह एक ही नाम है ।

विश्वेषामालम्बनत्वेन, विश्वे बाहवोऽस्येति विश्वतो बाहवोऽस्येति वा विश्वबाहुः 'विश्वतो-बाहुः' (श्वे० उ० ३ । ३) **इति श्रुतेः** ।

सबके आलम्बन (आश्रयस्थान) होनेके कारण या सभी भगवान्के बाहु हैं, इसलिये अथवा उनके बाहु सब ओर हैं, इसलिये **'विश्वतोबाहुः'** इस श्रुतिके अनुसार वे **विश्वबाहु** हैं ।

महीं पूजां धरणीं वा धरतीति महीधरः ॥ ४७ ॥

मही—पूजा या पृथ्वीको धारण करते हैं, इसलिये **महीधर** हैं ॥ ४७ ॥

अच्युतः प्रथितः प्राणः प्राणदो वासवानुजः ।
अपां निधिरधिष्ठानमप्रमत्तः प्रतिष्ठितः ॥ ४८ ॥

३१८ अच्युतः, ३१९ प्रथितः, ३२० प्राणः, ३२१ प्राणदः, ३२२ वासवानुजः ।
३२३ अपाम्, निधिः, ३२४ अधिष्ठानम्, ३२५ अप्रमत्तः, ३२६ प्रतिष्ठितः ॥

षड्भावविकाररहितत्वाद् अच्युतः 'शाश्वतꣳशिवमच्युतम्' (ना० उ० १३ । १) **इति श्रुतेः ।**

छः भावविकारोंसे रहित होनेके कारण **अच्युत** हैं । श्रुति कहती है— **'शाश्वत शिव और अच्युत हैं ।'**

जगदुत्पत्त्यादिकर्मभिः प्रख्यातः प्रथितः ।

जगत्‌की उत्पत्ति आदि कर्मोंके कारण प्रसिद्ध हैं, इसलिये **प्रथित** हैं ।

सूत्रात्मना प्रजाः प्राणयतीति प्राणः 'प्राणो वा अहमस्मि' **इति बह्वृचाः ।**

हिरण्यगर्भरूपसे प्रजाको जीवन देते हैं, इसलिये **प्राण** हैं । इस विषयमें **'अथवा मैं प्राण हूँ'** यह बह्वृच श्रुति प्रमाण है ।

सुराणामसुराणां च प्राणं बलं ददाति द्यति वेति प्राणदः ।

देवताओं और दैत्योंको क्रमशः प्राण अर्थात् बल देते या नष्ट करते हैं, इसलिये **प्राणद** हैं ।

अदित्यां कश्यपाद् वासवस्यानुजो जात इति वासवानुजः ।

[वामनावतारमें] कश्यपजीद्वारा अदितिसे वासव (इन्द्र) के अनुजरूपसे उत्पन्न हुए थे, इसलिये **वासवानुज** हैं ।

आपो यत्र निधीयन्ते सः अपां निधिः, 'सरसामस्मि सागरः' (गीता १० । २४) **इति भगवद्वचनात् ।**

जिसमें अप् (जल) एकत्रित रहता है, उस (समुद्र) को **अपां निधि** कहते हैं । **'सरोंमें मैं सागर हूँ'** इस भगवान्‌के वचनानुसार [समुद्र भगवान्‌की विभूति होनेके कारण उनका नाम अपां निधि है] ।

अधितिष्ठन्ति भूतानि उपादानकारणत्वेन ब्रह्मेति अधिष्ठानम्. 'मत्स्थानि सर्वभूतानि' (गीता ९ । ४) इति भगवद्वचनात् ।

उपादान कारणरूपसे सब भूत ब्रह्ममें स्थित हैं, इसलिये वह अधिष्ठान है; जैसा कि भगवान् कहते हैं— 'सब भूत मुझहीमें स्थित हैं।'

अधिकारिभ्यः कर्मानुरूपं फलं प्रयच्छन्न प्रमाद्यतीति अप्रमत्तः ।

अधिकारियोंको उनके कर्मानुरूप फल देते हुए कभी प्रमाद (चूक) नहीं करते, इसलिये अप्रमत्त हैं।

स्वे महिम्नि स्थितः प्रतिष्ठितः, 'स भगवः कस्मिन् प्रतिष्ठित इति । स्वे महिम्नि' (छा० उ० ७ । २४ । १) इति श्रुतेः ॥ ४८ ॥

अपनी महिमामें स्थित हैं, इसलिये प्रतिष्ठित हैं । श्रुति कहती है— 'भगवन् ! वह किसमें स्थित है अपनी महिमामें' ॥ ४८ ॥

स्कन्दः स्कन्दधरो धुर्यो वरदो वायुवाहनः ।
वासुदेवो बृहद्भानुरादिदेवः पुरन्दरः ॥ ४९

३२७ स्कन्दः, ३२८ स्कन्दधरः, ३२९ धुर्यः ३३० वरदः, ३३१ वायुवाहनः । ३३२ वासुदेवः, ३३३ बृहद्भानुः, ३३४ आदिदेवः, ३३५ पुरन्दरः

स्कन्दत्यमृतरूपेण गच्छति वायुरूपेण शोषयतीति वा स्कन्दः ।

स्कन्दन करते हैं, अर्थात् अमृतरूपसे बहते अथवा वायुरूपसे सुखाते हैं, इसलिये स्कन्द हैं ।

स्कन्दं धर्मपथं धारयतीति स्कन्दधरः ।

स्कन्द अर्थात् धर्ममार्गको धारण करते हैं, इसलिये स्कन्दधर हैं ।

धुरं वहति समस्तभूतजन्मादिलक्षणामिति धुर्यः ।

समस्त भूतोंके जन्मादिरूप धुर (बोझे) को धारण करते हैं, इसलिये धुर्य हैं ।

अभिमतान्वरान्ददातीति, वरं गां दक्षिणां ददाति यजमानरूपेणेति वा वरदः 'गौर्वै वरः' इति श्रुतेः ।

इच्छित वर देते हैं, अथवा यजमान-रूपसे दक्षिणामें वर अर्थात् गौ देते हैं, इसलिये **वरद** हैं । श्रुति कहती है **'गौ ही वर है ।'**

मरुतः सप्त आवहादीन् वाहयतीति वायुवाहनः ।

आवह आदि सात वायुओंको चलाते हैं, इसलिये **वायुवाहन** हैं ।*

वसति वासयति आच्छादयति सर्वमिति वा वासुः, दीव्यति क्रीडते विजिगीषते व्यवहरति द्योतते स्तूयते गच्छतीति वा देवः, वासुश्चासौ देवश्चेति वासुदेवः ।

'छादयामि जगत् सर्वं
भूत्वा सूर्य इवांशुभिः ।
सर्वभूताधिवासश्च
वासुदेवस्ततः स्मृतः ॥'
(महा० शान्ति० ३४१ । ४१)

'वासनात् सर्वभूतानां
वसुत्वाद् देवयोनितः ।
वासुदेवस्ततो वेद्यः.......... ॥'

इति उद्योगपर्वणि (७० । ३) ।

बसते हैं अथवा सबको वासित यानी आच्छादित करते हैं, इसलिये वासु हैं तथा दीव्यति अर्थात् क्रीडा करते, जीतनेकी इच्छा करते, व्यवहार करते, प्रकाशित होते, स्तुति किये जाते अथवा जाते हैं, इसलिये देव हैं । इस प्रकार जो वासु भी हैं और देव भी हैं, वे भगवान् **वासुदेव** हैं । यथा—**'मैं सूर्यके समान होकर अपनी किरणोंसे सम्पूर्ण जगत्‌को ढक लेता हूँ तथा समस्त भूतोंका निवासस्थान भी हूँ, इसलिये वासुदेव कहलाता हूँ ।'** तथा उद्योगपर्वमें कहा है—**'समस्त प्राणियोंको बसानेसे, वसुरूप होनेसे और देवताओंका उद्भवस्थान होनेसे भगवान्‌को वासुदेव जानना चाहिये ।'**

* आवह, प्रवह, अनुवह, संवह, विवह, परावह और परिवह—ये वायुके सात भेद हैं । इनमेंसे मेघ और पृथ्वीके बीचमें आवह, मेघ और सूर्यके बीचमें प्रवह, सूर्य और चन्द्रके बीचमें अनुवह, चन्द्र और नक्षत्रोंके बीचमें संवह, नक्षत्रों और ग्रहोंके बीचमें विवह, ग्रहों और सप्तर्षियोंके बीचमें परावह तथा सप्तर्षियों और ध्रुवके बीचमें परिवह रहता है ।

'सर्वत्रासौ समस्तं च
वसत्यत्रेति वै यतः ।
ततः स वासुदेवेति
विद्वद्भिः परिपठ्यते ॥'
(१ । २ । १२)
'सर्वाणि तत्र भूतानि
वसन्ति परमात्मनि ।
भूतेषु च स सर्वात्मा
वासुदेवस्ततः स्मृतः ॥'
(६ । ५ । ८०)

इति च विष्णुपुराणे ।

'बृहन्तो भानवो यस्य
चन्द्रसूर्यादिगामिनः ।
तैर्विश्वं भासयति यः
स बृहद्भानुरुच्यते ॥'

आदिः कारणम्, स चासौ देवश्चेति आदिदेव; **द्योतनादि-गुणवान् देवः ।**

सुरशत्रूणां पुराणां दारणात् पुरन्दरः 'वाचं यमपुरन्दरौ च' (पा० सू० ६ । ३ । ६९) **इति पाणिनिना निपातनात्** ॥ ४९ ॥

विष्णुपुराणमें कहा है—'वह (परमात्मा) इस सम्पूर्ण लोकमें सर्वत्र सब वस्तुओंमें बसता है, इसलिये विद्वज्जन उसे वासुदेव कहते हैं, सब भूत उस परमात्मामें बसते हैं तथा सब भूतोंमें वह सर्वात्मा बसता है, इसलिये वह वासुदेव कहलाता है ।'

'जिसकी सूर्य और चन्द्रमा आदिमें जानेवाली अति बृहत् (महान्) भानु (किरणें) हैं और जो उन (किरणों) से सम्पूर्ण जगत्को प्रकाशित करता है, वह परमात्मा बृहद्भानु कहलाता है ।'

सबके आदि अर्थात् कारण हैं और देव भी हैं, इसलिये आदिदेव हैं अथवा द्योतन (प्रकाशन) आदि गुणवाले होनेसे ही देव हैं ।

देवशत्रुओंके पुरों (नगरों) का ध्वंस करनेके कारण पुरन्दर हैं । 'वाचं यमपुरन्दरौ च' इस सूत्रसे भगवान् पाणिनिने पुरन्दर शब्दका निपातन किया है ॥ ४९ ॥

अशोकस्तारणस्तारः शूरः शौरिर्जनेश्वरः ।
अनुकूलः शतावर्तः पद्मी पद्मनिभेक्षणः ॥ ५० ॥

३३६ अशोकः, ३३७ तारणः, ३३८ तारः, ३३९ शूरः, ३४० शौरिः, ३४१ जनेश्वरः । ३४२ अनुकूलः, ३४३ शतावर्तः, ३४४ पद्मी, ३४५ पद्मनिभेक्षणः ॥

शोकादिषड्रूर्मिवर्जितः अशोकः ।

शोकादि छः ऊर्मियोंसे रहित हैं, इसलिये **अशोक** हैं ।

संसारसागरात्तारयतीति तारणः ।

संसार-सागरसे तारते हैं, इसलिये **तारण** हैं ।

गर्भजन्मजरामृत्युलक्षणाद्भया-त्तारयतीति तारः ।

गर्भ-जन्म-जरा-मृत्युरूप भयसे तारते हैं, इसलिये **तार** हैं ।

विक्रमणात् शूरः ।

विक्रम यानी पुरुषार्थ करनेके कारण **शूर** हैं ।

शूरस्यापत्यं वसुदेवस्य सुतः शौरिः ।

शूरकी सन्तान अर्थात् वसुदेवके पुत्र होनेसे **शौरि** हैं ।

जनानां जन्तूनामीश्वरो जनेश्वरः ।

जन अर्थात् जीवोंके ईश्वर होनेसे **जनेश्वर** हैं ।

आत्मत्वेन हि सर्वेषाम् अनुकूलः, **न हि स्वस्मिन् प्राति-कूल्यं स्वयमाचरति** ।

सबके आत्मारूप होनेसे **अनुकूल** हैं, क्योंकि कोई भी अपने प्रतिकूल आचरण नहीं करता, [इसलिये भगवान् आत्मभावसे अनुकूल हैं] ।

धर्मत्राणाय शतमावर्तनानि प्रादुर्भावा अस्येति शतावर्तः **नाडीशते प्राणरूपेण वर्तत इति वा** ।

धर्मरक्षाके लिये भगवान्‌के सैकड़ों आवर्तन अर्थात् अवतार हुए हैं, इस लिये वे **शतावर्त** हैं । अथवा प्राणरूप-से [हृदयदेशसे निकलनेवाली] सौ नाड़ियोंमें आवर्तन करते हैं, इसलिये **शतावर्त** हैं ।

पद्मं हस्ते विद्यत इति पद्मी ।

भगवान्‌के हाथमें पद्म है, इसलिये वे **पद्मी** हैं ।

पद्मनिभे ईक्षणे दृशावस्येति पद्मनिभेक्षणः ॥ ५० ॥

उनके ईक्षण अर्थात् नेत्र पद्मके समान हैं, इसलिये वे **पद्मनिभेक्षण** हैं ॥ ५० ॥

पद्मनाभोऽरविन्दाक्षः पद्मगर्भः शरीरभृत् ।
महर्द्धिरृद्धो वृद्धात्मा महाक्षो गरुडध्वजः ॥ ५१ ॥

३४६ पद्मनाभः, ३४७ अरविन्दाक्षः, ३४८ पद्मगर्भः, ३४९ शरीरभृत्। ३५० महर्द्धिः, ३५१ ऋद्धः, ३५२ वृद्धात्मा, ३५३ महाक्षः, ३५४ गरुडध्वजः।

पद्मस्य नाभौ मध्ये कर्णिकायां स्थित इति पद्मनाभः ।

[हृदयरूप] पद्मकी नाभि अर्थात् कर्णिकाके बीचमें स्थित हैं, इसलिये **पद्मनाभ** हैं ।

अरविन्दसदृशे अक्षिणी अस्येति अरविन्दाक्षः ।

भगवान्‌की अक्षि (आँख) अरविन्द (कमल) के समान है, इसलिये वे **अरविन्दाक्ष** हैं ।

पद्मस्य हृदयाख्यस्य मध्ये उपास्यत्वात् पद्मगर्भः ।

हृदयरूप पद्मके मध्यमें उपासना किये जानेके कारण **पद्मगर्भ** हैं ।

पोषयन्नन्नरूपेण प्राणरूपेण वा शरीरिणां शरीराणि धारयतीति शरीरभृत् । स्वमायया शरीराणि बिभर्तीति वा ।

अन्नरूपसे अथवा प्राणरूपसे देहधारियोंके शरीरोंका पोषण करते हुए उन्हें धारण करनेके कारण **शरीरभृत्** हैं । अथवा अपनी मायासे शरीर धारण करते हैं, इसलिये शरीरभृत् हैं ।

महती ऋद्धिर्विभूतिरस्येति महर्द्धिः ।

भगवान्‌की ऋद्धि अर्थात् विभूति महान् है, इसलिये वे **महर्द्धि** हैं ।

प्रपञ्चरूपेण वर्तमानत्वाद् ऋद्धः ।

प्रपञ्चरूप होनेसे वे **ऋद्ध** हैं ।

वृद्धः पुरातन आत्मा यस्येति वृद्धात्मा ।

जिनका आत्मा (देह) वृद्ध अर्थात् पुरातन है, वे भगवान् **वृद्धात्मा** हैं

महती अक्षिणी महान्त्यक्षीणि वा अस्येति महाक्षः ।

भगवान्‌की दो अथवा अनेकों महान् अक्षि (आँखें) हैं, इसलिये वे **महाक्ष** हैं ।

गरुडाङ्को ध्वजो यस्येति गरुडध्वजः ॥ ५१ ॥

उनकी ध्वजा गरुड़के चिह्नवाली है, इसलिये वे **गरुडध्वज** हैं ॥ ५१ ॥



अतुलः शरभो भीमः समयज्ञो हविर्हरिः ।
सर्वलक्षणलक्षण्यो लक्ष्मीवान् समितिञ्जयः ॥ ५२ ॥

३५५ अतुलः, ३५६ शरभः, ३५७ भीमः (अभीमः), ३५८ समयज्ञः, ३५९ हविर्हरिः । ३६० सर्वलक्षणलक्षण्यः, ३६१ लक्ष्मीवान्, ३६२ समितिञ्जयः ॥

तुलोपमानमस्य न विद्यत इति अतुलः, 'न तस्य प्रतिमास्ति यस्य नाम महद्यशः' (श्वे० उ० ४ । १९) इति श्रुतेः । 'न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यः' (गीता ११ । ४३) इति स्मृतेश्च ।

भगवान्‌की कोई तुलना अर्थात् उपमा नहीं है, इसलिये वे **अतुल** हैं । श्रुति कहती है—**'जिसका नाम ही महान् यश है, उस परमात्माकी कोई तुलना नहीं है ।'** स्मृति (श्रीभगवद्गीता) में भी कहा है—**'आपके समान ही कोई नहीं है, फिर अधिक तो कहाँसे आया ?'**

शराः शरीराणि शीर्यमाणत्वात्तेषु प्रत्यगात्मतया भातीति शरभः ।

शीर्यमाण (नाशवान्) होनेके कारण शरीरको ही शर कहते हैं; उनमें प्रत्यगात्मारूपसे भासते हैं, इसलिये **शरभ** हैं ।

बिभेत्यस्मात्सर्वमिति भीमः । 'भीमादयोऽपादाने' (पा० सू० ३ । ४ । ७४) इति पाणिनिस्मृतेः

भगवान्‌से सब भय मानते हैं, इसलिये वे **भीम** हैं । **'भीमादयोऽपादाने'** इस पाणिनिसूत्रसे अपादान कारकमें भीम शब्दका निपातन हुआ है ।

सन्मार्गवर्तिनाम् अभीमः इति वा ।

अथवा उत्तम मार्गका अवलम्बन करने वालोंके लिये 'अभीम' हैं ।

सृष्टिस्थितिसंहारसमयवित्, षट्समयाञ्जानातीति वा समयज्ञः । सर्वभूतेषु समत्वं यजनं साध्वस्येति वा, 'समत्वमाराधनमच्युतस्य' (विष्णु० १ । १७ । ९०) इति प्रह्लादवचनात् ।

सृष्टि, स्थिति और संहारके समय जाननेवाले हैं अथवा छः समय (ऋतुओं) को जानते हैं, इसलिये समयज्ञ हैं, अथवा समस्त भूतोंमें समभाव रखना ही भगवान्का यज्ञ (पूजा) है, इसलिये समयज्ञ हैं; प्रह्लादजीका कथन है कि 'समत्व ही श्रीअच्युतकी आराधना है ।'

यज्ञेषु हविर्भागं हरतीति हविर्हरिः, 'अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च' (गीता ९ । २४) इति भगवद्वचनात् । अथवा हूयते हविषेति हविः, 'अबध्नन् पुरुषं पशुम्' (पु० सू० १५) इति हविष्ट्वं श्रूयते । स्मृतिमात्रेण पुंसां पापं संसारं वा हरतीति, हरिद्वर्णत्वाद् वा हरिः ।

'हराम्यघं च स्मर्तॄणां
हविर्भागं क्रतुष्वहम् ।
वर्णश्च मे हरिः श्रेष्ठ-
स्तस्माद्धरिरहं स्मृतः ॥'*

इति भगवद्वचनात् ।

यज्ञोंमें हविका भाग हरण करते हैं, इसलिये हविर्हरि हैं । भगवान्ने कहा है—'समस्त यज्ञोंका भोक्ता और प्रभु मैं ही हूँ ।' अथवा हविद्वारा हवन किये जाते हैं, इसलिये हवि हैं । 'पुरुषरूप पशुको बाँधा' इस श्रुतिमें भगवान्‌का हवनीयत्व प्रतिपादन किया गया है तथा स्मरणमात्रसे पुरुषोंके पाप अथवा [जन्म-मरणरूप] संसारको हर लेते हैं, इसलिये या हरित (श्याम) वर्ण हैं, इसलिये भगवान् हरि हैं । भगवान्‌का कथन है 'मैं अपना स्मरण करनेवालोंके पाप और यज्ञोंमें हविर्भागका हरण करता हूँ, तथा मेरा अति सुन्दर हरितवर्ण है, इसलिये मैं 'हरि' कहलाता हूँ ।'

* इस श्लोकका हमें पता नहीं लगा । थोड़ेसे पाठभेदसे एक श्लोक महाभारत शान्तिपर्वमें मिलता है, वह इस प्रकार है--

इलोपहूतयोगेन हरे भागं क्रतुष्वहम् । वर्णश्च मे हरिः श्रेष्ठस्तस्माद्धरिरहं स्मृतः ॥ (३४२ । ६८)

*

सर्वैर्लक्षणैः प्रमाणैर्लक्षणं ज्ञानं जायते यत्तद्विनिर्दिष्टं सर्वलक्षण-लक्षणम्, तत्र साधुः सर्वलक्षण-लक्षण्यः, तस्यैव परमार्थत्वात् ।

सब लक्षणों अर्थात् प्रमाणोंसे जो लक्षण —ज्ञान होता है, वह सर्वलक्षण-लक्षण कहलाता है, उस ज्ञानमें जो साधु अर्थात् परम उत्तम हैं, वह परमात्मा ही सर्वलक्षणलक्षण्य हैं, क्योंकि वे ही परमार्थस्वरूप हैं ।

लक्ष्मीरस्य वक्षसि नित्यं वसतीति लक्ष्मीवान् ।

भगवान्के वक्षःस्थलमें लक्ष्मीजी नित्य निवास करती हैं, अतः वे लक्ष्मीवान् हैं ।

समितिं युद्धं जयतीति समितिञ्जयः ॥ ५२ ॥

समिति अर्थात् युद्धको जीतते हैं, इसलिये समितिञ्जय हैं ॥ ५२ ॥

विक्षरो रोहितो मार्गो हेतुर्दामोदरः सहः ।
महीधरो महाभागो वेगवानमिताशनः ॥ ५३ ॥

३६३ विक्षरः, ३६४ रोहितः, ३६५ मार्गः, ३६६ हेतुः, ३६७ दामोदरः, ३६८ सहः । ३६९ महीधरः, ३७० महाभागः, ३७१ वेगवान्, ३७२ अमिताशनः ॥

विगतः क्षरो नाशो यस्यासौ विक्षरः ।

जिनका क्षर अर्थात् नाश नहीं है, वे भगवान् विक्षर हैं ।

स्वच्छन्दतया रोहितां मूर्तिं मत्स्यविशेषमूर्तिं वा वहन् रोहितः ।

अपनी इच्छासे रोहितवर्ण मूर्ति अथवा [रोहित नामक] एक मत्स्यविशेषका स्वरूप धारण करनेके कारण रोहित हैं ।

मुमुक्षवस्तं देवं मार्गयन्ति इति मार्गः; परमानन्दो येन प्राप्यते स मार्ग इति वा ।

मुमुक्षुजन उन परमात्मदेवका मार्गण (खोज) करते हैं, इसलिये वे मार्ग हैं; अथवा जिस [साधन] से परमानन्द प्राप्त होता है, वह मार्ग है ।

उपादानं निमित्तं च कारणं स एव वेति हेतुः ।

संसारके निमित्त और उपादान-कारण वे ही हैं, इसलिये हेतु हैं ।

दमादिसाधनेनोदारोत्कृष्टमतिर्या

दम आदि साधनोंसे जो मति उदार

तया गम्यत इति दामोदरः, 'दमाद्दामोदरो विभुः' **इति महाभारते** (उद्योग० ७० । ८) । **यशोदया दाम्नोदरे बद्ध इति वा दामोदरः,**

'ददर्श चाल्पदन्तास्यं
स्मितहासं च बालकम् ।
तयोर्मध्यगतं बद्धं
दाम्ना गाढं तथोदरे ।
ततश्च दामोदरतां
स ययौ दामबन्धनात् ॥'
(ब्रह्म० ७६ । १३-१४)

इति ब्रह्मपुराणे ।

'दामानि लोकनामानि
तानि यस्योदरान्तरे ।
तेन दामोदरो देवः
श्रीधरः श्रीसमाश्रितः ॥'

इति व्यासवचनाद् वा दामोदरः ।

सर्वानभिभवति क्षमत इति वा सहः ।

महीं गिरिरूपेण धरतीति महीधरः, 'वनानि विष्णुर्गिरयो दिशश्च' (विष्णु० २ । १२ । ३८) इति **पराशरोक्तेः ।**

स्वेच्छया धारयन् देहं महान्ति उत्कृष्टानि भोजनानि भागजन्यानि

अर्थात् उत्कृष्ट हो जाती है, उसीसे भगवान् जाने जाते हैं, इसलिये वे दामोदर हैं । महाभारतमें कहा है—'दमके कारण भगवान् दामोदर [कहे गये] हैं ।' अथवा यशोदाजीद्वारा दाम (रस्सी) से उदरप्रदेश (कमर) में बाँध दिये गये थे, इसलिये दामोदर हैं । ब्रह्मपुराणमें कहा है—'व्रजके मनुष्योंने उन दोनों (यमलार्जुनों) के बीचमें गये हुए बालकको रस्सीसे उदरदेशमें खूब कसकर बँधे तथा थोड़े दाँतोंवाले मुखसे मन्द-मन्द मुसकराते देखा; तबसे दाम (रस्सी) से बाँधे जानेके कारण वह दामोदर कहलाया ।' अथवा 'दाम लोकोंका नाम है, वे जिसके उदर (पेट) में हैं, वे रमानिवास श्रीधरदेव इसी कारणसे दामोदर कहलाते हैं' इस व्यासजीके वचनानुसार ही दामोदर हैं ।

सबको नीचा दिखाते अथवा सबको सहन करते हैं, इसलिये सह हैं ।

पर्वतरूप होकर मही (पृथ्वी) को धारण करते हैं, इसलिये महीधर हैं, जैसा कि श्रीपराशरजीका वचन है—'वन, पर्वत और दिशाएँ विष्णु ही हैं ।'

स्वेच्छासे देह धारण करके भाग-जनित महान्—उत्कृष्ट भोजनोंको (परम ऐश्वर्यको) भोगते हैं, इसलिये

भुङ्क्ते इति महाभागः । महान् भागः-भाग्यमस्यावतारेषु इति वा महाभागः ।

वेगो जवस्तद्वान् वेगवान्, 'अनेजदेकं मनसो जवीयः' (ई० उ० ४) इति श्रुतेः ।

संहारसमये विश्वमश्नातीति अमिताशनः ॥ ५३ ॥

महाभाग हैं । अथवा अवतारोंमें इनका महान् भाग—भाग्य है, इसलिये ये महाभाग हैं ।

वेग जव (तीव्र गति) को कहते हैं, तीव्र गतिवाले होनेके कारण भगवान् वेगवान् हैं; श्रुति कहती है—'आत्मा चलता नहीं, वह एक है और मनसे भी अधिक वेगवाला है ।'

संहारके समय सारे विश्वको खा जाते हैं, इसलिये अमिताशन हैं ॥५३॥

उद्भवः क्षोभणो देवः श्रीगर्भः परमेश्वरः ।
करणं कारणं कर्ता विकर्ता गहनो गुहः ॥ ५४ ॥

३७३ उद्भवः, ३७४ क्षोभणः, ३७५ देवः, ३७६ श्रीगर्भः, ३७७ परमेश्वरः । ३७८ करणम्, ३७९ कारणम्, ३८० कर्ता, ३८१ विकर्ता, ३८२ गहनः, ३८३ गुहः ॥

प्रपञ्चोत्पत्त्युपादानकारणत्वात् उद्भवः, उद्गतो भवात्संसारादिति वा ।

सर्गकाले प्रकृतिं पुरुषं च प्रविश्य क्षोभयामासेति क्षोभणः ।

'प्रकृतिं पुरुषं चैव
प्रविश्यात्मेच्छया हरिः ।
प्रविश्य क्षोभयामास
सर्गकाले व्ययाव्ययौ ॥'

इति विष्णुपुराणे (१ । २ । २९) ।

यतो दीव्यति क्रीडति सर्गा-

प्रपञ्चकी उत्पत्तिके उपादान कारण होनेसे उद्भव हैं अथवा भव यानी संसारसे ऊपर हैं, इसलिये उद्भव हैं ।

जगत्की उत्पत्तिके समय प्रकृति और पुरुषमें प्रविष्ट होकर उन्हें क्षुब्ध किया था, इसलिये क्षोभण हैं । विष्णुपुराणमें कहा है—'अव्यय भगवान् श्रीहरिने सर्गकालमें अपनी इच्छासे विकारी प्रकृति और अविकारी पुरुषमें प्रविष्ट होकर उन्हें क्षुब्ध किया था ।'

क्योंकि दीव्यति अर्थात् सृष्टि आदिसे क्रीडा करते हैं । दैत्यादिकोंको जीतना

दिभिः, विजिगीषतेऽसुरादीन्, व्यवहरति सर्वभूतेषु, आत्मतया द्योतते, स्तूयते स्तुत्यैः, सर्वत्र गच्छति तस्मात् देवः 'एको देवः' (श्वे० उ० ६ । ११) इति मन्त्रवर्णात् ।

चाहते हैं, समस्त भूतोंमें व्यवहार करते हैं, अन्तरात्मारूपसे प्रकाशित होते हैं, स्तुत्य पुरुषोंसे स्तवन किये जाते हैं और सर्वत्र जाते हैं, इसलिये देव हैं, जैसा कि 'एक देव है' इस मन्त्रवर्णसे सिद्ध होता है ।

श्रीर्विभूतिर्यस्योदरान्तरे जगद्रूपा यस्य गर्भे स्थिता स श्रीगर्भः ।

जिनके उदर-गर्भमें संसाररूप श्री—विभूति स्थित है, वे भगवान् श्रीगर्भ हैं ।

परमश्चासावीशनशीलश्चेति परमेश्वरः ।

'समं सर्वेषु भूतेषु
तिष्ठन्तं परमेश्वरम् ।'
(गीता १३ । २७)

इति भगवद्वचनात् ।

परम हैं और ईशनशील हैं, इसलिये परमेश्वर हैं । श्रीभगवान् कहते हैं—'समस्त भूतोंमें समानभावसे स्थित परमेश्वरको [जो पुरुष देखता है, वही देखता है] ।'

जगदुत्पत्तौ साधकतमं करणम् ।

संसारकी उत्पत्तिके सबसे बड़े साधन हैं, इसलिये करण हैं ।

उपादानं निमित्तं च कारणम् ।

जगत्के उपादान और निमित्त कारण हैं, इसलिये कारण हैं ।

कर्ता स्वतन्त्रः ।

स्वतन्त्र होनेसे कर्ता हैं ।

विचित्रं भुवनं क्रियते इति विकर्ता स एव भगवान् विष्णुः ।

विचित्र भुवनोंकी रचना करते हैं, इसलिये वे भगवान् विष्णु ही विकर्ता हैं ।

स्वरूपं सामर्थ्यं चेष्टितं वा तस्य ज्ञातुं न शक्यत इति गहनः ।

उनका स्वरूप, सामर्थ्य अथवा कृत्य जाना नहीं जाता, इसलिये गहन हैं ।

गूहते संवृणोति स्वरूपादि निजमाययेति गुहः ।

अपनी मायासे स्वरूप आदिको ग्रस्त करते हैं अर्थात् ढक लेते हैं, इसलिये गुह हैं । भगवान्का कथन

'नाहं प्रकाशः सर्वस्य
योगमायासमावृतः ।'
(गीता ७ । २५)
इति भगवद्वचनात् ॥ ५४ ॥

है—योगमायासे आवृत होनेके कारण मैं सबको प्रकट नहीं होता हूँ ॥५४॥



व्यवसायो व्यवस्थानः संस्थानः स्थानदो ध्रुवः ।
परर्द्धिः परमस्पष्टस्तुष्टः पुष्टः शुभेक्षणः ॥ ५५ ॥

३८४ व्यवसायः, ३८५ व्यवस्थानः, ३८६ संस्थानः, ३८७ स्थानदः, ३८८ ध्रुवः । ३८९ परर्द्धिः, ३९० परमस्पष्टः, ३९१ तुष्टः, ३९२ पुष्टः, ३९३ शुभेक्षणः ॥

संविन्मात्रस्वरूपत्वात् व्यवसायः ।

अस्मिन् व्यवस्थितिः सर्वस्येति व्यवस्थानः; लोकपालाद्यधिकारजरायुजाण्डजोद्भिज्जब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्रावान्तरवर्णब्रह्मचारिगृहस्थवानप्रस्थसंन्यासलक्षणाश्रमतद्धर्मादिकान् विभज्य करोति इति वा व्यवस्थानः । 'कृत्यल्युटो बहुलम्' (पा० सू० ३ । ३ । ११३) इति बहुलग्रहणात् कर्तरि ल्युट् प्रत्ययः ।

अत्र भूतानां संस्थितिः प्रलयात्मिका, समीचीनं स्थानमस्येति वा संस्थानः ।

ध्रुवादीनां कर्मानुरूपं स्थानं ददातीति स्थानदः ।

ज्ञानमात्रस्वरूप होनेसे व्यवसाय हैं ।

जिनमें सबकी व्यवस्था है, वे भगवान् व्यवस्थान हैं । अथवा लोकपालादि अधिकारोंको, जरायुज, अण्डज, उद्भिज्ज आदि जीवोंको, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अवान्तर वर्णोंको, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रमोंको तथा उनके धर्म आदिको विभक्त करके रचते हैं, इसलिये व्यवस्थान हैं, यहाँ 'कृत्यल्युटो बहुलम्' इस सूत्रमें बहुल शब्दका ग्रहण (उच्चारण) होनेसे कर्ता-अर्थमें ल्युट प्रत्यय हुआ है ।

भगवान्में प्राणियोंकी प्रलयरूप स्थिति है, अथवा वे उस (प्रलय) के सम्यक् स्थान हैं, इसलिये वे संस्थान हैं ।

ध्रुवादिकोंको उनके कर्मोंके अनुसार स्थान देते हैं, इसलिये स्थानद हैं ।

अविनाशित्वात् ध्रुवः ।
परा ऋद्धिर्विभूतिरस्येति परर्द्धिः ।

परा मा शोभा अस्येति परमः, सर्वोत्कृष्टो वा अनन्याधीनसिद्धित्वात्, संविदात्मतया स्पष्टः परमस्पष्टः ।

परमानन्दैकरूपत्वात् तुष्टः ।

सर्वत्र सम्पूर्णत्वात् पुष्टः ।

ईक्षणं दर्शनं यस्य शुभं शुभकरं मुमुक्षूणां मोक्षदं भोगार्थिनां भोगदं सर्वसन्देहविच्छेदकारणं पापिनां पावनं हृदयग्रन्थेर्विच्छेदकरं सर्वकर्मणां क्षपणम् अविद्यायाश्च निवर्तकं स शुभेक्षणः, 'भिद्यते हृदयग्रन्थिः' (मु० उ० २ । २ । ८) इत्यादि श्रुतेः ॥ ५५ ॥

अविनाशी होनेके कारण ध्रुव हैं।
भगवान्की ऋद्धि अर्थात् विभूति परा (श्रेष्ठ) है, इसलिये वे परर्द्धि हैं।
उनकी मा अर्थात् लक्ष्मी—शोभा परा (श्रेष्ठ) है, इसलिये वे परम हैं अथवा बिना किसी अन्यके आश्रय ही सिद्ध होनेके कारण सर्वश्रेष्ठ हैं तथा ज्ञानस्वरूप होनेसे स्पष्ट हैं; इस प्रकार [परम और स्पष्ट होनेसे] परमस्पष्ट हैं ।

एकमात्र परमानन्दस्वरूप होनेके कारण तुष्ट हैं ।

सर्वत्र परिपूर्ण होनेसे पुष्ट हैं ।

जिनका ईक्षण अर्थात् दर्शन सदा शुभ यानी मनुष्योंका शुभ करनेवाला है, मुमुक्षुओंको मोक्ष देनेवाला, भोगार्थियोंको भोग देनेवाला, समस्त सन्देहोंका उच्छेद करनेवाला, पापियोंको पवित्र करनेवाला, हृदयग्रन्थिको काटनेवाला, समस्त कर्मोंका नाश करनेवाला और अविद्याको दूर करनेवाला है, वे भगवान् शुभेक्षण हैं। **'हृदयकी ग्रन्थि टूट जाती है'** इत्यादि श्रुतिसे यही बात सिद्ध होती है ॥५५॥

रामो विरामो विरतो मार्गो नेयो नयोऽनयः ।
वीरः शक्तिमतां श्रेष्ठो धर्मो धर्मविदुत्तमः ॥ ५६ ॥

३९४ रामः, ३९५ विरामः, ३९६ विरतः, ३९७ मार्गः, ३९८ नेयः, ३९९ नयः, ४०० अनयः । ४०१ वीरः, ४०२ शक्तिमतां श्रेष्ठः, ४०३ धर्मः, ४०४ धर्मविदुत्तमः ॥

नित्यानन्दलक्षणेऽस्मिन् योगिनो रमन्त इति रामः;

'रमन्ते योगिनो यस्मिन्
नित्यानन्दे चिदात्मनि ।
इति रामपदेनैतत्
परं ब्रह्माभिधीयते ॥'

इति पद्मपुराणे; स्वेच्छया रमणीयं वपुर्वहन्वा दाशरथी रामः ।

नित्यानन्दस्वरूप भगवान्‌में योगिजन रमण करते हैं, इसलिये वे राम हैं । पद्मपुराणमें कहा है—'जिस नित्यानन्दस्वरूप चिदात्मामें योगिजन रमण करते हैं, वह परब्रह्म 'राम' इस पदसे कहा जाता है ।' अथवा अपनी ही इच्छासे रमणीय शरीर धारण करनेवाले दशरथनन्दन ही राम हैं ।

विरामोऽवसानं प्राणिनामस्मिन्निति विरामः ।

भगवान्‌में प्राणियोंका विराम अर्थात् अन्त होता है, इसलिये वे विराम हैं ।

विगतं रतमस्य विषयसेवायामिति विरतः ।

विषयसेवनमें जिनका राग नहीं रहा है, वे भगवान् विरत हैं ।

यं विदित्वा अमृतत्वाय कल्पन्ते योगिनो मुमुक्षवः स एव पन्थाः मार्गः । 'नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय' (श्वे० उ० ६ । १५) इति श्रुतेः ।

जिन्हें जानकर मुमुक्षुजन अमर हो जाते हैं, वे ही पथ—मार्ग हैं । श्रुति कहती है—'मोक्षका [आत्मज्ञानके अतिरिक्त] और कोई पथ नहीं है ।'

मार्गेण सम्यग्ज्ञानेन जीवः परमात्मतया नीयत इति नेयः ।

मार्ग अर्थात् सम्यक् ज्ञानसे जीव परमात्मभावको ले जाया जाता है, इसलिये वह (जीव) नेय है ।

नयतीति नयः नेता । मार्गो नेयो नय इति त्रिरूपः परिकल्प्यते ।

जो ले जाता है, वह [सम्यक्ज्ञानरूप] नेता नय कहलाता है । इस प्रकार मार्ग, नेय और नय—इन तीन रूपोंसे भगवान्‌की कल्पना की जाती है ।

नास्य नेता विद्यते इति अनयः ।	भगवान्‌का कोई और नेता नहीं है, इसलिये वे अनय हैं ।
इति नाम्नां चतुर्थं शतं विवृतम् ।	यहाँतक सहस्रनामके चौथे शतकका विवरण हुआ ।
विक्रमशालित्वात् वीरः ।	विक्रमशाली होनेके कारण भगवान् वीर हैं ।
शक्तिमतां विरिञ्च्यादीनामपि शक्तिमत्त्वात् शक्तिमतां श्रेष्ठः ।	ब्रह्मा आदि शक्तिमानोंमें भी शक्तिमान् होनेके कारण शक्तिमतां श्रेष्ठ हैं।
सर्वभूतानां धारणाद् धर्मः, 'अणुरेष धर्मः' (क० उ० १ । १ । २१) इति श्रुतेः; धर्मैराराध्यत इति वा धर्मः ।	समस्त भूतोंको धारण करनेके कारण धर्म हैं । श्रुति कहती है—'यह धर्म अति सूक्ष्म है ।' अथवा धर्महीसे आराधन किये जाते हैं, इसलिये धर्म हैं ।
श्रुतयः स्मृतयश्च यस्याज्ञाभूताः स एव सर्वधर्मविदामुत्तमः इति धर्मविदुत्तमः ॥ ५६ ॥	श्रुतियाँ और स्मृतियाँ जिसकी आज्ञास्वरूप हों, वही समस्त धर्मवेत्ताओंमें उत्तम होना चाहिये । इसलिये भगवान् धर्मविदुत्तम हैं ॥ ५६ ॥

वैकुण्ठः पुरुषः प्राणः प्राणदः प्रणवः पृथुः ।
हिरण्यगर्भः शत्रुघ्नो व्यासो वायुरधोक्षजः ॥ ५७ ॥

४०५ वैकुण्ठः, ४०६ पुरुषः, ४०७ प्राणः, ४०८ प्राणदः, ४०९ प्रणवः, ४१० पृथुः । ४११ हिरण्यगर्भः, ४१२ शत्रुघ्नः, ४१३ व्यासः, ४१४ वायुः, ४१५ अधोक्षजः ॥

विविधा कुण्ठा गतेः प्रतिहतिः । विकुण्ठा, विकुण्ठायाः कर्तेति	विविध कुण्ठा अर्थात् गतियोंके अवरोधको विकुण्ठा कहते हैं, उस

वैकुण्ठः; **जगदारम्भे विश्लिष्टानि भूतानि परस्परं संश्लेषयन् तेषां गतिं प्रतिबध्नातीति ।**

'मया संश्लेषिता भूमि-
रद्भिर्व्योम च वायुना ।
वायुश्च तेजसा सार्धं
वैकुण्ठत्वं ततो मम ॥'

इति शान्तिपर्वणि । (३४२ । ८०)

सर्वस्मात्पुरा सदनात्सर्वपापस्य सादनाद्वा पुरुषः, 'स यत्पूर्वोऽस्मात्सर्वस्मात्सर्वान्पाप्मन औषत्तस्मात्पुरुषः' (बृ० उ० १ । ४ । १) **इति श्रुतेः; पुरि शयनाद्वा पुरुषः,** 'स वा अयं पुरुषः सर्वासु पूर्षु पुरिशयः' (बृ० उ० २ । ५ । १८) **इति श्रुतेः ।**

प्राणिति क्षेत्रज्ञरूपेण प्राणात्मना चेष्टयन् वा प्राणः । 'चेष्टां करोति श्वसनस्वरूपी' **इति विष्णुपुराणे ।**

खण्डयति प्राणिनां प्राणान् प्रलयादिष्विति प्राणदः ।

विकुण्ठाके करनेवाले होनेसे भगवान् **वैकुण्ठ** हैं; क्योंकि जगत्के आरम्भमें ये बिखरे हुए भूतोंको परस्पर मिलाकर उनकी गतिको रोक दिया करते हैं । महाभारत शान्तिपर्वमें कहा है—**'मैंने पृथ्वीको जलके साथ, आकाशको वायुके साथ और वायुको तेजके साथ मिलाया था, इसीलिये मुझमें वैकुण्ठता है ।'***

सबसे पहले होनेके कारण अथवा सब पापोंका उच्छेद करनेवाले होनेसे **पुरुष** हैं । श्रुति कहती है—**'वह जो सबसे पहले था, सब पापोंको भस्म कर देता है, इसलिये पुरुष है ।'** अथवा पुर यानी शरीरमें शयन करनेके कारण पुरुष हैं । श्रुति कहती है—**'वह यह पुरुष सब पुरोंमें पुरिशय (पुरियोंमें शयन करनेवाला) है ।'**

क्षेत्रज्ञरूपसे जीवित रहते हैं अथवा प्राणवायुरूपसे चेष्टा करते हैं, इसलिये **प्राण** हैं । विष्णुपुराणमें कहा है—**'प्राण-वायुरूप होकर चेष्टा करते हैं ।'**

प्रलय आदिके समय प्राणियोंके प्राणोंका खण्डन करते हैं, इसलिये **प्राणद** हैं ।

---

* विगता कुण्ठा यस्य स विकुण्ठो विकुण्ठ एवं वैकुण्ठः 'स्वार्थेऽन्' इस विग्रहके अनुसार जिसका कुण्ठा अर्थात् रोक-टोक न हो उसका नाम वैकुण्ठ है; भगवान् भी किसी प्रकार प्रतिबद्ध नहीं हैं, इसलिये वे वैकुण्ठ हैं ।

प्रणौतीति प्रणवः, 'तस्मादोमिति प्रणौति' इति श्रुतेः। प्रणम्यते इति वा प्रणवः;

'प्रणमन्तीह वै वेदा-
स्तस्मात् प्रणव उच्यते'

इति सनत्कुमारवचनात्।

[ॐ कहकर] स्तुति अथवा प्रणाम करते हैं, इसलिये (ओंकार) प्रणव हैं। श्रुतिमें कहा है—'अतः ओम् ऐसा [कहकर] प्रणाम करता है।' अथवा प्रणाम किये जाते हैं, इसलिये (भगवान् ही) प्रणव हैं। श्रीसनत्कुमारजीका कथन है—'उन्हें वेद प्रणाम करते हैं, इसलिये वे प्रणव कहे जाते हैं।'

प्रपञ्चरूपेण विस्तृतत्वात् पृथुः।

प्रपञ्चरूपसे विस्तृत होनेके कारण पृथु हैं।

हिरण्यगर्भसम्भूतिकारणं हिरण्मयमण्डं यद्वीर्यसम्भूतम्, तदस्य गर्भ इति हिरण्यगर्भः।

हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा) की उत्पत्तिका कारण हिरण्मय अण्ड जिनके वीर्यसे उत्पन्न हुआ है, वे भगवान् उसके गर्भ हैं, इसलिये हिरण्यगर्भ हैं।

त्रिदशशत्रून् हन्तीति शत्रुघ्नः।

देवताओंके शत्रुओंको मारते हैं। इसलिये शत्रुघ्न हैं।

कारणत्वेन सर्वकार्याणां व्यापनाद् व्याप्तः।

कारणरूपसे सब कार्योंको व्याप्त करनेके कारण व्याप्त हैं।

वाति गन्धं करोतीति वायुः 'पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च' (गीता ७। ९) इति भगवद्वचनात्।

वाति अर्थात् गन्ध करते हैं, इसलिये वायु हैं। भगवान्का कथन है—'पृथिवीमें पुण्य गन्ध मैं हूँ।'

'अधो न क्षीयते जातु
यस्मात्तस्मादधोक्षजः'

इति उद्योगपर्वणि; (७० । १०) द्यौरक्षं पृथिवी चाधः, तयोर्यस्मादजायत मध्ये वैराजरूपेण इति वा अधोक्षजः अधोभूते प्रत्यक् प्रवाहिते अक्षगणे जायत इति वा अधोक्षजः।

महाभारत उद्योगपर्वमें कहा है—'कभी नीचे [अर्थात् अपने स्वरूपसे] क्षीण नहीं होते, इसलिये अधोक्षज हैं।' अथवा द्यौ (आकाश) अक्ष है और पृथिवी अधः है, भगवान् उनके मध्यमें विराट्‌रूपसे प्रकट होते हैं, इसलिये अधोक्षज हैं। अथवा अक्ष-

'अधोभूते ह्यक्षगणे
प्रत्यग्रूपप्रवाहिते ।
जायते तस्य वै ज्ञानं
तेनाधोक्षज उच्यते ॥'

इति ॥ ५७ ॥

गण (इन्द्रियों) के अधोमुख अर्थात् अन्तर्मुख होनेपर प्रकट होते हैं, इसलिये अधोक्षज हैं । 'इन्द्रियोंके अधोभूत होनेपर अर्थात् उन्हें भीतरकी ओर प्रवृत्त करनेपर भगवान्‌का ज्ञान होता है, इसलिये वे अधोक्षज कहलाते हैं' ॥ ५७ ॥

ऋतुः सुदर्शनः कालः परमेष्ठी परिग्रहः ।
उग्रः संवत्सरो दक्षो विश्रामो विश्वदक्षिणः ॥ ५८ ॥

४१६ ऋतुः, ४१७ सुदर्शनः, ४१८ कालः, ४१९ परमेष्ठी, ४२० परिग्रहः । ४२१ उग्रः, ४२२ संवत्सरः, ४२३ दक्षः, ४२४ विश्रामः, ४२५ विश्वदक्षिणः ॥

कालात्मना ऋतुशब्देन लक्ष्यत इति ऋतुः ।

शोभनं निर्वाणफलं दर्शनं ज्ञानमस्येति, शुभे दर्शने ईक्षणे पद्मपत्रायते अस्येति, सुखेन दृश्यते भक्तैरिति वा सुदर्शनः ।

कलयति सर्वमिति कालः, 'कालः कलयतामहम्' (गीता १० । ३०) इति भगवद्वचनात् ।

परमे प्रकृष्टे स्वे महिम्नि हृदयाकाशे स्थातुं शीलमस्येति परमेष्ठी,

ऋतुशब्दद्वारा कालरूपसे लक्षित होते हैं, इसलिये ऋतु हैं ।

भगवान्‌का दर्शन अर्थात् ज्ञान अति सुन्दर—निर्वाणरूप फल देनेवाला है अथवा उनके नेत्र अति सुन्दर—पद्मपत्रके समान विशाल हैं अथवा भक्तोंको सुगमतासे ही दिखलायी दे जाते हैं, इसलिये वे सुदर्शन हैं ।

सबकी कलना (गणना) करनेके कारण काल हैं । भगवान्‌ने कहा है—'कलना करनेवालोंमें मैं काल हूँ ।'

हृदयाकाशके भीतर परम अर्थात् अपनी प्रकृष्ट महिमामें स्थित रहनेका स्वभाव होनेके कारण वे परमेष्ठी हैं ।

'परमेष्ठी बिभ्राजते' इति मन्त्रवर्णात् ।

मन्त्रवर्ण कहता है— 'परमेष्ठीरूपसे सुशोभित हैं ।'

शरणार्थिभिः परितो गृह्यते सर्वगतत्वात् परितो ज्ञायते इति वा, पत्रपुष्पादिकं भक्तैरर्पितं परिगृह्णातीति वा परिग्रहः ।

सर्वगत होनेके कारण शरणार्थियोंद्वारा सब ओरसे ग्रहण किये जाते हैं या सब ओरसे जाने जाते हैं, अथवा भक्तोंके अर्पण किये हुए पत्र-पुष्पादिको ग्रहण करते हैं, इसलिये परिग्रह हैं ।

सूर्यादीनामपि भयहेतुत्वात् उग्रः, 'भीषोदेति सूर्यः' (तै० उ० २ । ८) इति श्रुतेः ।

सूर्यादिके भी भयके कारण होनेसे उग्र हैं । श्रुति कहती है—'इसके भयसे सूर्य निकलता है ।

संवसन्ति भूतान्यस्मिन्निति संवत्सरः ।

सब भूत इनमें बसते हैं, इसलिये संवत्सर हैं ।

जगद्रूपेण वर्धमानत्वात् सर्वकर्माणि क्षिप्रं करोतीति वा दक्षः

जगत्‌रूपसे बढ़नेके कारण, अथवा सब कार्य बड़ी शीघ्रतासे करते हैं, इसलिये दक्ष हैं ।

संसारसागरे क्षुत्पिपासादिषडूर्मिभिस्तरङ्गिते अविद्याद्यैर्महाक्लेशैः मदादिभिरुपक्लेशैश्च वशीकृतानां विश्रान्तिं काङ्क्षमाणानां विश्रामं मोक्षं करोतीति विश्रामः ।

क्षुधा-पिपासा आदि छः ऊर्मियोंसे तरङ्गित संसारसागरमें अविद्या आदि महान् क्लेशों और मद आदि उपक्लेशोंसे वशीभूत किये हुए विश्रामकी इच्छावाले मुमुक्षुओंको विश्राम अर्थात् मोक्ष देते हैं, इसलिये विश्राम हैं ।

विश्वस्मात् दक्षिणः शक्तः, विश्वेषु कर्मसु दाक्षिण्याद्वा विश्वदक्षिणः ॥ ५८ ॥

सबसे दक्ष अर्थात् समर्थ अथवा समस्त कार्योंमें कुशल होनेके कारण भगवान् विश्वदक्षिण हैं* ॥ ५८ ॥

* अथवा समस्त विश्व इन्हें बलिके यज्ञमें दक्षिणारूपसे मिला था, इसलिये विश्वदक्षिण हैं ।

विस्तारः स्थावरस्थाणुः प्रमाणं बीजमव्ययम् ।
अर्थोऽनर्थो महाकोशो महाभोगो महाधनः ॥ ५९ ॥

४२६ विस्तारः, ४२७ स्थावरस्थाणुः, ४२८ प्रमाणम्, ४२९ बीजमव्ययम् । ४३० अर्थः, ४३१ अनर्थः, ४३२ महाकोशः, ४३३ महाभोगः, ४३४ महाधनः ॥

विस्तीर्यन्ते समस्तानि जगन्त्यस्मिन्निति विस्तारः ।

स्थितिशीलत्वात् स्थावरः; स्थितिशीलानि पृथिव्यादीनि तिष्ठन्त्यस्मिन्निति स्थाणुः स्थावरश्चासौ स्थाणुश्च स्थावरस्थाणुः ।

संविदात्मना प्रमाणम् ।

अन्यथाभावव्यतिरेकेण कारणमिति बीजमव्ययम्, सविशेषणमेकं नाम ।

सुखरूपत्वात् सर्वैरर्थ्यत इति अर्थः ।

न विद्यते प्रयोजनम् आप्तकामत्वात् अस्येति अनर्थः ।

महान्तः कोशा अन्नमयादयः आच्छादका अस्येति महाकोशः ।

महान् भोगः सुखरूपोऽस्येति महाभोगः ।

भगवान्‌में समस्त लोक विस्तार पाते हैं; इसलिये वे **विस्तार** हैं ।

स्थितिशील होनेके कारण स्थावर हैं तथा पृथ्वी आदि स्थितिशील पदार्थ उनमें स्थित हैं, इसलिये स्थाणु हैं । इस प्रकार स्थावर और स्थाणु होनेसे भगवान् **स्थावरस्थाणु** हैं ।

संवित्स्वरूप होनेसे **प्रमाण** हैं ।

बिना अन्यथाभावके ही संसारके कारण हैं, इसलिये उनका **बीजमव्ययम्** यह विशेषणसहित एक ही नाम है ।

सुखस्वरूप होनेके कारण सबसे प्रार्थना किये जाते हैं, इसलिये **अर्थ** हैं ।

आप्त (पूर्ण) काम होनेके कारण उनका कोई अर्थ यानी प्रयोजन नहीं है, इसलिये वे **अनर्थ** हैं ।

अन्नमय आदि महान् कोश भगवान्‌को ढकनेवाले हैं, इसलिये वे **महाकोश** हैं ।

भगवान्‌का सुखरूप महान् भोग है, इसलिये वे **महाभोग** हैं ।

महत् भोगसाधनलक्षणं धनमस्येति महाधनः ॥ ५९ ॥

उनका भोगसाधनरूप महान् धन है, इसलिये वे महाधन हैं ॥ ५९ ॥

अनिर्विण्णः स्थविष्ठोऽभूर्धर्मयूपो महामखः ।
नक्षत्रनेमिर्नक्षत्री क्षमः क्षामः समीहनः ॥ ६० ॥

४३५ अनिर्विण्णः, ४३६ स्थविष्ठः, ४३७ अभूः (भूः), ४३८ धर्मयूपः, ४३९ महामखः । ४४० नक्षत्रनेमिः, ४४१ नक्षत्री, ४४२ क्षमः, ४४३ क्षामः, ४४४ समीहनः ॥

आप्तकामत्वात् निर्वेदोऽस्य न विद्यत इति अनिर्विण्णः ।

सम्पूर्ण कामनाएँ प्राप्त होनेके कारण भगवान्को निर्वेद (उदासीनता) नहीं है, इसलिये वे अनिर्विण्ण हैं।

वैराजरूपेण स्थितः स्थविष्ठः; 'अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ' (मु० उ० २ । १ । ४) इति श्रुतेः ।

वैराजरूपसे स्थित होनेके कारण स्थविष्ठ हैं । श्रुति कहती है—'अग्नि उसका सिर है तथा सूर्य और चन्द्रमा नेत्र हैं।'

अजन्मा अभूः; अथवा भवतीति भूः 'भू सत्तायाम्' इत्यस्य सम्पदादित्वात् क्विप्; मही वा ।

अजन्मा होनेसे अभू हैं, अथवा हैं; इसलिये भू हैं । 'भू सत्तायाम्' यह सम्पदादिगणमें होनेके कारण भू धातुसे क्विप् प्रत्यय हुआ है । अथवा भू पृथ्वीको भी कहते हैं ।

यूपे पशुवत् तत्समाराधनात्मका धर्मास्तत्र बध्यन्त इति धर्मयूपः ।

यूपमें जिस प्रकार पशु बाँधा जाता है, उसी प्रकार आराधनारूप धर्म भगवान्में बाँधे जाते हैं, इसलिये वे धर्मयूप हैं ।

यस्मिन्नर्पिता मखा यज्ञा निर्वाणलक्षणफलं प्रयच्छन्तो महान्तो जायन्ते स महामखः ।

जिनको अर्पित किये हुए मख (यज्ञ) निर्वाणरूप फल देते हुए महान् हो जाते हैं, वे भगवान् महामख हैं।

'नक्षत्रतारकैः सार्धं
चन्द्रसूर्यादयो ग्रहाः ।
वायुपाशमयैर्बन्धै-
र्निबद्धा ध्रुवसंज्ञिते ॥'

'नक्षत्र और तारोंके सहित चन्द्र-सूर्य आदि ग्रहगण वायुपाशरूप बन्धनोंसे ध्रुवके साथ बँधे हुए हैं ।'

सज्योतिषां चक्रं भ्रामयंस्तारामयस्य शिशुमारस्य पुच्छदेशे व्यवस्थितो ध्रुवः । तस्य शिशुमारस्य हृदये ज्योतिश्चक्रस्य नेमिवत्प्रवर्तकः स्थितो विष्णुरिति नक्षत्रनेमिः; **शिशुमारवर्णने** 'विष्णुर्हृदयम्' **इति स्वाध्यायब्राह्मणे श्रूयते ।**

इस वचनके अनुसार ज्योतिश्चक्रके सहित सम्पूर्ण नक्षत्रमण्डलको भ्रमाता हुआ ध्रुव तारामय शिशुमारचक्रके पुच्छदेशमें स्थित है । उस शिशुमारके हृदय (मध्य) में ज्योतिश्चक्रकी नेमि (केन्द्र)के समान प्रवर्त्तकरूपसे भगवान् विष्णु वर्तमान हैं, अतः वे **नक्षत्रनेमि** कहलाते हैं । स्वाध्याय-ब्राह्मणमें शिशुमारका वर्णन करते हुए **'विष्णु उसका हृदय है'** ऐसी श्रुति है ।

चन्द्ररूपेण नक्षत्री, 'नक्षत्राणामहं शशी' (गीता १० । २१) **इति भगवद्वचनात् ।**

चन्द्ररूप होनेसे भगवान् नक्षत्री हैं; जैसा कि भगवान्का कथन है— **'नक्षत्रोंमें मैं चन्द्रमा'** हूँ ।

समस्तकार्येषु समर्थः क्षमः, **क्षमत इति वा,** 'क्षमया पृथिवीसमः' (वा० रा० १ । १ । १८) **इति वाल्मीकिवचनात् ।**

समस्त कार्योंमें समर्थ होनेके कारण क्षम हैं; अथवा सहन करते हैं इसलिये क्षम हैं । वाल्मीकिजीका वचन है कि **'[राम] क्षमामें पृथिवीके समान हैं ।'**

सर्वविकारेषु क्षपितेषु स्वात्मनावस्थित इति क्षामः । 'क्षायो मः' (पा० सू० ८ । २ । ५३) **इति निष्ठा तकारस्य मकारादेशः ।**

समस्त विकारोंके क्षीण हो जानेपर भगवान् आत्मभावसे स्थित रहते हैं, इसलिये **क्षाम** हैं । **'क्षायो मः'** इस सूत्रके अनुसार निष्ठासंज्ञक क्तके तकारको मकार आदेश हुआ है ।

सृष्ट्याद्यर्थं सम्यगीहत इति समीहनः ॥ ६० ॥

सृष्टि आदिके लिये सम्यक् ईहा (चेष्टा) करते हैं, इसलिये **समीहन** हैं ॥ ६० ॥

यज्ञ इज्यो महेज्यश्च क्रतुः सत्रं सतां गतिः ।
सर्वदर्शी विमुक्तात्मा सर्वज्ञो ज्ञानमुत्तमम् ॥ ६१ ॥

४४५ यज्ञः, ४४६ इज्यः, ४४७ महेज्यः, च, ४४८ क्रतुः, ४४९ सत्रम्, ४५० सतां गतिः । ४५१ सर्वदर्शी, ४५२ विमुक्तात्मा, ४५३ सर्वज्ञः, ४५४ ज्ञानमुत्तमम् ॥

सर्वयज्ञस्वरूपत्वाद् यज्ञः; सर्वेषां देवानां तुष्टिकारको यज्ञाकारेण प्रवर्तत इति वा, 'यज्ञो वै विष्णुः' (तै० सं० १ । ७ । ४) इति श्रुतेः ।

यष्टव्योऽप्ययमेवेति इज्यः ।

'ये यजन्ति मखैः पुण्यै-
र्देवतादीन् पितॄनपि ।
आत्मानमात्मना नित्यं
विष्णुमेव यजन्ति ते ॥'

इति हरिवंशे (३ । ४० । २७)

सर्वासु देवतासु यष्टव्यासु प्रकर्षेण यष्टव्यो मोक्षफलदातृत्वादिति महेज्यः ।

यूपसहितो यज्ञः क्रतुः ।

आसत्युपैति चोदनालक्षणं सत्रम्; सतस्त्रायत इति वा ।

सतां मुमुक्षूणां नान्या गतिरिति सतां गतिः ।

*

सर्वयज्ञरूप होनेके कारण यज्ञ हैं । अथवा यज्ञरूपसे समस्त देवताओंको सन्तुष्ट करनेवाले हैं, इसलिये यज्ञ हैं । श्रुति कहती है—'यज्ञ ही विष्णु है ।'

यष्टव्य (पूजनीय) भी भगवान् ही हैं इसलिये वे इज्य हैं । हरिवंशमें कहा है—'जो लोग पवित्र यज्ञोंद्वारा देवता और पितृ आदिका पूजन करते हैं, वे सर्वदा स्वयं अपने आत्मा विष्णुका ही पूजन करते हैं ।'

समस्त यष्टव्य देवताओंमें मोक्षरूप फल देनेवाले होनेसे भगवान् ही सबसे अधिक यष्टव्य हैं, इसलिये वे महेज्य हैं ।

यूपसहित यज्ञ क्रतु कहलाता है [तद्रूप होनेसे भगवान् क्रतु हैं] ।

जो विधिरूप धर्मको प्राप्त करता है, वह सत्र है । अथवा सत् (कार्यरूप जगत्) से रक्षा करते हैं, इसलिये भगवान् सत्र हैं ।

सत्पुरुषों अर्थात् मुमुक्षुओंकी [भगवान्को छोड़कर] कोई और गति नहीं है, इसलिये वे सतां गति हैं ।

सर्वेषां प्राणिनां कृताकृतं सर्वं पश्यति स्वाभाविकेन बोधेनेति सर्वदर्शी ।

अपने स्वाभाविक बोधसे समस्त प्राणियोंके सम्पूर्ण कर्माकर्मको देखते हैं, इसलिये सर्वदर्शी हैं ।

स्वभावेन विमुक्त आत्मा यस्येति, विमुक्तश्चासावात्मा चेति वा विमुक्तात्मा, 'विमुक्तश्च विमुच्यते' (क० उ० २ । ५ । १) इति श्रुतेः ।

स्वभावसे ही जिनकी आत्मा मुक्त है अथवा जो विमुक्त भी हैं और आत्मा भी हैं, वे भगवान् विमुक्तात्मा हैं । श्रुति कहती है—'मुक्त हुआ ही मुक्त होता है ।'

सर्वश्चासौ ज्ञश्चेति सर्वज्ञः, 'इदꣳ सर्वं यदयमात्मा' (बृ० उ० २ । ४ । ६) इति श्रुतेः ।

जो सर्व है और ज्ञाता है, वह परमात्मा सर्वज्ञ है । श्रुति कहती है—'यह जो कुछ है, सब आत्मा ही है ।'

ज्ञानमुत्तममित्येतत्सविशेषणमेकं नाम; ज्ञानं प्रकृष्टमजन्यमनवच्छिन्नं सर्वस्य साधकतममिति ज्ञानमुत्तमं ब्रह्म, 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' (तै० उ० २ । १) इति श्रुतेः ॥ ६१ ॥

ज्ञानमुत्तमम् यह विशेषणसहित एक नाम है । जो प्रकृष्ट (सर्वोत्तम), अजन्य (नित्यसिद्ध), अनवच्छिन्न (देश, काल तथा वस्तुकी सीमासे परे) और सबका अत्यन्त साधक ज्ञान है, वह ज्ञानमुत्तमम् कहलाता है । श्रुति कहती है—'ब्रह्म सत्य, ज्ञान और अनन्तरूप है ॥ ६१ ॥

सुव्रतः सुमुखः सूक्ष्मः सुघोषः सुखदः सुहृत् ।
मनोहरो जितक्रोधो वीरबाहुर्विदारणः ॥ ६२ ॥

४५५ सुव्रतः, ४५६ सुमुखः, ४५७ सूक्ष्मः, ४५८ सुघोषः, ४५९ सुखदः, ४६० सुहृत् । ४६१ मनोहरः, ४६२ जितक्रोधः, ४६३ वीरबाहुः, ४६४ विदारणः ॥

शोभनं व्रतमस्येति सुव्रतः ।

'सकृदेव प्रपन्नाय
तवास्मीति च याचते ।

भगवान्‌का शुभ व्रत है, इसलिये वे सुव्रत हैं । रामायणमें रामचन्द्रजीका वाक्य है—'जो एक बार भी

अभयं सर्वभूतेभ्यो
ददाम्येतद् व्रतं मम ॥'
(वा० रा० ६ । १८ । ३३)

इति श्रीरामायणे रामवचनम् ।

शोभनं मुखमस्येति सुमुखः ।

'प्रसन्नवदनं चारु-
पद्मपत्रायतेक्षणम् ।'

इति श्रीविष्णुपुराणे (६ । ७ । ८०) । वनवाससुमुखत्वाद् वा दाशरथी रामः सुमुखः ।

'स्वपितुर्वचनं श्रीमा-
नभिषेकात् परं प्रियम् ।
मनसा पूर्वमासाद्य
वाचा प्रतिगृहीतवान् ॥'

'इमानि तु महारण्ये
विहृत्य नव पञ्च च ।
वर्षाणि परमप्रीतः
स्थास्यामि वचने तव ॥'
(वा० रा० २ । २४ । १७)

'न वनं गन्तुकामस्य
त्यजतश्च वसुन्धराम ॥
सर्वलोकातिगस्येव
मनो रामस्य विव्यथे ॥'*
(वा० रा० २ । १९ । ३३)

इति रामायणे । सर्वविद्योपदेशेन

मेरी शरण आकर 'मैं तुम्हारा हूँ' ऐसा कहकर माँगता है, उसे मैं सब प्राणियोंसे अभय कर देता हूँ—यह मेरा व्रत है ।'

उनका मुख सुन्दर है, इसलिये वे सुमुख हैं । विष्णुपुराणमें कहा है—'प्रसन्न मुखवाले और सुन्दर कमल-दलके समान विशाल नयनवाले ।' अथवा वनवासके समय भी सुमुख (प्रसन्नवदन) रहनेके कारण दशरथ-कुमार राम ही सुमुख हैं । रामायणमें कहा है—'श्रीमान् रामने अपने पिताके उन अभिषेकसे भी अधिक प्रिय [वनवासविषयक] वचनोंको प्रथम मनसे ग्रहण कर फिर वाणीसे भी स्वीकार किया ।' '[वे बोले—] इन चौदह वर्षोंतक वनमें घूम-फिरकर मैं बड़ी प्रसन्नतासे आपके वचनोंका पालन करूँगा ।' 'भगवान् राम उस समय वनको जानेके लिये तैयार थे और पृथ्वीका राज्य छोड़ रहे थे; तो भी सम्पूर्ण लोकैषणाओंके पार पहुँचे हुए योगीके समान उनका चित्त तनिक भी दुखी नहीं हुआ ।' अर्थात् समस्त विद्याओंका

* वाल्मीकिरामायणमें इस श्लोकके चौथे चरणका पाठ इस प्रकार है—लक्ष्यते चित्तविक्रिया ।

वा सुमुखः, 'यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै' (श्वे० उ० ६ । १८) इत्यादिश्रुतेः ।

उपदेश करनेके कारण सुमुख हैं; जैसा कि श्रुति कहती है—'जो पहले ब्रह्माको रचता है और जो उसे वेद प्रदान करता है ।'

शब्दादिस्थूलकारणरहितत्वात्- शब्दादयो ह्याकाशादीनामुत्तरोत्तर-स्थूलत्वकारणानि, तदभावात्— सूक्ष्मः, 'सर्वगतं सुसूक्ष्मम्' (मु० उ० १ । १ । ६) इति श्रुतेः ।

शब्दादि स्थूल कारणोंसे रहित होनेके कारण [भगवान् सूक्ष्म हैं] । शब्दादि विषय ही आकाशादि भूतोंकी उत्तरोत्तर स्थूलताके कारण हैं; उनका भगवान्में अभाव होनेसे वे सूक्ष्म हैं । श्रुति कहती है—'सर्वगत और अति सूक्ष्म हैं ।'

शोभनो घोषो वेदात्मकोऽस्येति, मेघगम्भीरघोषत्वाद् वा सुघोषः ।

भगवान्का वेदरूप सुन्दर घोष है अथवा वे मेघके समान गम्भीर घोष-वाले हैं, इसलिये सुघोष हैं ।

सद्वृत्तानां सुखं ददाति, असद्-वृत्तानां सुखं द्यति खण्डयतीति वा सुखदः ।

सदाचारियोंको सुख देते हैं, अथवा दुराचारियोंके सुखका दान अर्थात् खण्डन करते हैं, इसलिये सुखद हैं ।

प्रत्युपकारानिरपेक्षतयोपकारित्वात् सुहृत् ।

बिना प्रत्युपकारकी इच्छाके ही उपकार करनेवाले होनेसे सुहृत् हैं ।

निरतिशयानन्दरूपत्वात् मनो हरतीति मनोहरः, 'यो वै भूमा तत् सुखं नाल्पे सुखमस्ति' (छा० उ० ७ । २३ । १) इति श्रुतेः ।

अत्यन्त आनन्दस्वरूप होनेके कारण मनका हरण करते हैं, इसलिये मनोहर हैं । श्रुति कहती है—'जो भूमा है, निश्चय वही सुख है, अल्पमें सुख नहीं है ।'

जितः क्रोधो येन स जितक्रोधः; वेदमर्यादास्थापनार्थं सुरारीन् हन्ति न तु कोपवशादिति ।

जिन्होंने क्रोधको जीत लिया है, वे भगवान् जितक्रोध हैं, क्योंकि वे वेदकी मर्यादा स्थापित करनेके लिये ही देवताओंके शत्रुओंको मारते हैं—क्रोधवश नहीं ।

त्रिदशशत्रून्निघ्नन् वेदमर्यादां स्थापयन् विक्रमशाली बाहुरस्येति वीरबाहुः ।

अधार्मिकान् विदारयतीति विदारणः ॥ ६२ ॥

देव-शत्रुओंको मारकर वेदकी मर्यादाको स्थापित करनेवाली भगवान्‌की बाहु अति विक्रमशालिनी है, इसलिये वे वीरबाहु हैं ।

अधार्मिकोंको विदीर्ण करनेके कारण भगवान् विदारण हैं ॥ ६२ ॥

स्वापनः स्ववशो व्यापी नैकात्मा नैककर्मकृत् ।
वत्सरो वत्सलो वत्सी रत्नगर्भो धनेश्वरः ॥ ६३ ॥

४६५ स्वापनः, ४६६ स्ववशः, ४६७ व्यापी, ४६८ नैकात्मा, ४६९ नैककर्मकृत् ।
४७० वत्सरः, ४७१ वत्सलः, ४७२ वत्सी, ४७३ रत्नगर्भः, ४७४ धनेश्वरः ॥

प्राणिनः स्वापयन् आत्मसम्बोधविधुरान् मायया कुर्वन् स्वापनः ।

स्वतन्त्रः स्ववशः, जगदुत्पत्तिस्थितिलयहेतुत्वात् ।

आकाशवत् सर्वगतत्वात् व्यापी, 'आकाशवत् सर्वगतश्च नित्यः' इति श्रुतेः; कारणत्वेन सर्वकार्याणां व्यापनाद् वा व्यापी ।

जगदुत्पत्त्यादिषु आविर्भूतनिमित्तशक्तिभिर्विभूतिभिरनेकधा तिष्ठन् नैकात्मा ।

प्राणियोंको सुलाने यानी जीवोंको मायासे आत्मज्ञानरूप जागृतिसे रहित करनेके कारण स्वापन हैं ।

जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और लयके कारण होनेसे स्वतन्त्र हैं, इसलिये स्ववश हैं ।

आकाशके समान सर्वव्यापी होनेसे व्यापी हैं । श्रुति कहती है—'आकाशके समान सर्वगत और नित्य हैं ।' अथवा कारणरूपसे समस्त कार्योंको व्याप्त करनेके कारण व्यापी हैं ।

जगत्‌की उत्पत्ति आदिमें नैमित्तिक शक्तियोंको प्रकट करनेवाली विभूतियोंके द्वारा नाना प्रकारसे स्थित हैं, इसलिये नैकात्मा हैं ।

जगदुत्पत्तिसम्पत्तिविपत्तिप्रभृति-कर्माणि करोतीति नैककर्मकृत् ।

संसारकी उत्पत्ति, सम्पत्ति (उन्नति) और विपत्ति आदि [अनेक] कर्म करते हैं, इसलिये **नैककर्मकृत्** हैं ।

वसत्यत्राखिलमिति वत्सरः ।

सब कुछ उन्हींमें बसा हुआ है, इसलिये वे **वत्सर** हैं ।

भक्तस्नेहित्वात् वत्सलः, 'वत्सांसाभ्यां कामबले' (पा० सू० ५ । २ । ९८) इति लच्प्रत्ययः ।

भक्तोंके स्नेही होनेके कारण **वत्सल** हैं । **'वत्सांसाभ्यां कामबले'** इस सूत्रके अनुसार वत्सशब्दसे लच् प्रत्यय हुआ है ।

वत्सानां पालनात् वत्सी, जगत-पितुस्तस्य वत्सभूताः प्रजा इति वा वत्सी ।

वत्सोंका पालन करनेके कारण **वत्सी** हैं । अथवा जगत्पिता होनेसे प्रजा उनकी वत्सस्वरूपा है, इसलिये वत्सी हैं ।

रत्नानि गर्भभूतानि अस्येति समुद्रो रत्नगर्भः ।

रत्न जिसके गर्भरूप हैं, उस समुद्र-का नाम **रत्नगर्भ** है ।

धनानामीश्वरः धनेश्वरः ॥ ६३ ॥

धनोंके स्वामी होनेके कारण **धनेश्वर** हैं ॥ ६३ ॥



धर्मगुब्धर्मकृद्धर्मी सदसत् क्षरमक्षरम् ।
अविज्ञाता सहस्रांशुर्विधाता कृतलक्षणः ॥ ६४ ॥

४७५ धर्मगुप्, ४७६ धर्मकृत्, ४७७ धर्मी, ४७८ सत्, ४७९ असत्, ४८० क्षरम्, ४८१ अक्षरम् । ४८२ अविज्ञाता, ४८३ सहस्रांशुः, ४८४ विधाता, ४८५ कृतलक्षणः ॥

धर्मं गोपयतीति धर्मगुप्,

'धर्मसंस्थापनार्थाय
सम्भवामि युगे युगे ॥'
(गीता ४ । ८)

इति भगवद्वचनात् ।

धर्मका गोपन (रक्षा) करते हैं, इसलिये **धर्मगुप्** हैं । भगवान्का वाक्य है—'धर्मकी स्थापनाके लिये मैं युग-युगमें अवतार लेता हूँ ।'

धर्माधर्मविहीनोऽपि धर्ममर्यादास्थापनार्थं धर्ममेव करोतीति धर्मकृत् ।

धर्माधर्मसे रहित होनेपर भी धर्मकी मर्यादा स्थापित करनेके लिये धर्म ही करते हैं, इसलिये **धर्मकृत्** हैं ।

धर्मान् धारयतीति धर्मी ।

धर्मोंको धारण करनेवाले हैं; इसलिये **धर्मी** हैं ।

अवितथं परं ब्रह्म सत् 'सदेव सोम्येदम्' (छा० उ० ६।२।१) **इति श्रुतेः** ।

सत्यस्वरूप **परब्रह्म** ही **सत्** हैं । श्रुति कहती है—'हे **सोम्य ! यह सत्** ही [**पहले था**] ।'

अपरं ब्रह्म असत्, 'वाचारम्भणं विकारो नामधेयम्' (छा० उ० ६।१।४) **इति श्रुतेः** ।

[प्रपञ्चरूप होनेसे] अपर ब्रह्म **असत्** है; जैसा कि श्रुति कहती है—**'विकार केवल नाममात्र और वाणीका विलास ही है ।'**

सर्वाणि भूतानि क्षरम् । **कूटस्थः** अक्षरम् ।

'क्षरः सर्वाणि भूतानि
कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥'
(गीता १५।१६)

इति भगवद्वचनात् ।

'सब भूत क्षर हैं और कूटस्थ अक्षर कहलाता है ।' भगवान्‌के इस कथनानुसार समस्त भूत **क्षर** हैं और कूटस्थ **अक्षर** है ।

आत्मनि कर्तृत्वादिविकल्पविज्ञानं कल्पितमिति तद्वासनावगुण्ठितो जीवो विज्ञाता, तद्विलक्षणो विष्णुः अविज्ञाता ।

आत्मामें कर्तृत्व आदि विकल्प-विज्ञान कल्पित हैं, उसकी वासनासे ढका हुआ जीव विज्ञाता है और उससे विलक्षण विष्णु **अविज्ञाता** हैं ।

आदित्यादिगता अंशवोऽस्यैत्यमेव मुख्यः सहस्रांशुः, 'येन सूर्यस्तपति तेजसेद्धः' (तै० ब्रा० ३।१२।७९।७) **इति श्रुतेः**, 'यदादित्यगतं तेजः' (गीता १५।१२) **इति स्मृतेश्च** ।

सूर्य आदिकी किरणें वास्तवमें भगवान्‌की ही हैं, इसलिये ये ही मुख्य **सहस्रांशु** हैं । श्रुति कहती है—**'जिस तेजसे प्रज्वलित होकर सूर्य तपता है'** तथा स्मृति भी कहती है—**'आदित्यमें जो तेज है ।'**

विशेषेण शेषदिग्गजभूधरान् सर्वभूतानां धातॄन् दधातीति विधाता ।

समस्त भूतोंको धारण करनेवाले शेष, दिग्गज और पर्वतोंको विशेषरूपसे धारण करते हैं, इसलिये विधाता हैं ।

नित्यनिष्पन्नचैतन्यरूपत्वात् कृतलक्षणः, कृतानि लक्षणानि शास्त्राण्यनेनेति वा;

'वेदाः शास्त्राणि विज्ञान-
मेतत् सर्वं जनार्दनात् ॥'
(वि० स० १३९)

इत्यत्रैव वक्ष्यति; सजातीय-विजातीयव्यवच्छेदकं लक्षणं सर्वभावानां कृतमनेनेति वा; आत्मनः श्रीवत्सलक्षणं वक्षसि तेन कृतमिति वा कृतलक्षणः ॥६४॥

नित्यसिद्ध चैतन्यस्वरूप होनेके कारण कृतलक्षण हैं । अथवा इन्होंने लक्षण यानी शास्त्रोंकी रचना की है, इसलिये कृतलक्षण हैं । इसी ग्रन्थमें आगे चलकर कहेंगे कि—'वेद, शास्त्र और यह सम्पूर्ण विज्ञान जनार्दनसे ही हुए हैं ।' अथवा भगवान्ने ही समस्त भाव-पदार्थोंके सजातीय-विजातीय भेदोंका विभाग करनेवाला लक्षण (चिह्न) बनाया है, इसलिये या अपने वक्षःस्थलमें श्रीवत्सरूप लक्षण (चिह्न) धारण किये हैं, इसलिये कृतलक्षण हैं ॥ ६४ ॥

गभस्तिनेमिः सत्त्वस्थः सिंहो भूतमहेश्वरः ।
आदिदेवो महादेवो देवेशो देवभृद्गुरुः ॥ ६५ ॥

४८६ गभस्तिनेमिः, ४८७ सत्त्वस्थः, ४८८ सिंहः, ४८९ भूतमहेश्वरः । ४९० आदिदेवः, ४९१ महादेवः, ४९२ देवेशः, ४९३ देवभृद्गुरुः ॥

गभस्तिचक्रस्य मध्ये सूर्यात्मना स्थित इति गभस्तिनेमिः ।

गभस्तियों (किरणों) के चक्रके बीचमें सूर्यरूपसे स्थित हैं, इसलिये गभस्तिनेमि हैं ।

सत्त्वं गुणं प्रकाशकं प्राधान्येनाधितिष्ठतीति, सर्वप्राणिषु तिष्ठतीति वा सत्त्वस्थः ।

प्रकाशस्वरूप सत्त्वगुणमें प्रधानतासे रहते हैं, अथवा समस्त प्राणियोंमें स्थित हैं, इसलिये सत्त्वस्थ हैं ।

विक्रमशालित्वात् सिंहवत् सिंहः, नृशब्दलोपेन 'सत्यभामा भामा' इतिवद् वा सिंहः।

सिंहके समान पराक्रमी होनेसे सिंह हैं। अथवा सत्यभामा--भामाके समान नृ शब्दका लोप होनेसे नृसिंह ही सिंह हैं।

भूतानां महानीश्वरः भूतेन सत्येन स एव परमो महानीश्वरः इति वा भूतमहेश्वरः।

भूतोंके महान् ईश्वर हैं अथवा भूत-सत्यरूपसे वे ही अति महान् ईश्वर हैं, इसलिये भूतमहेश्वर हैं।

सर्वभूतान्यादीयन्तेऽनेनेति आदिः। आदिश्चासौ देवश्चेति आदिदेवः।

भगवान् सब भूतोंका आदान (ग्रहण) करते, हैं, इसलिये आदि हैं, इस प्रकार वे आदि हैं और देव भी हैं, इसलिये आदिदेव हैं।

सर्वान् भावान् परित्यज्य, आत्मज्ञानयोगैश्वर्ये महति महीयते तस्मादुच्यते महादेवः।

समस्त भावोंको छोड़कर अपने महान् ज्ञानयोग और ऐश्वर्यसे महिमान्वित हैं, इसलिये महादेव कहलाते हैं।

प्राधान्येन देवानामीशो देवेशः।

[देवताओंमें] प्रधान होनेसे देवोंके ईश अर्थात् देवेश हैं।

देवान् बिभर्तीति देवभृत् शक्रः, तस्यापि शासितेति देवभृद्गुरुः; देवानां भरणात्, सर्वविद्यानां च निगरणाद् वा देवभृद्गुरुः ॥६५॥

देवताओंका पालन करते हैं, इसलिये इन्द्र देवभृत् हैं; उनके भी शासक होनेसे भगवान् देवभृद्गुरु हैं। अथवा देवताओंका भरण करनेसे या सब विद्याओंका वक्ता होनेसे देवभृद्गुरु हैं ॥ ६५ ॥

उत्तरो गोपतिर्गोप्ता ज्ञानगम्यः पुरातनः।
शरीरभूतभृद्भोक्ता कपीन्द्रो भूरिदक्षिणः ॥ ६६ ॥

४९४ उत्तरः, ४९५ गोपतिः, ४९६ गोप्ता, ४९७ ज्ञानगम्यः, ४९८ पुरातनः ।
४९९ शरीरभूतभृत्, ५०० भोक्ता, ५०१ कपीन्द्रः, ५०२ भूरिदक्षिणः ॥

जन्मसंसारबन्धनादुत्तरतीति उत्तरः; सर्वोत्कृष्ट इति वा; 'विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः' इति श्रुतेः ।

जन्मरूप संसारबन्धनसे उत्तीर्ण (मुक्त) होते हैं, इसलिये **उत्तर** हैं । अथवा सर्वश्रेष्ठ हैं, इसलिये उत्तर हैं । श्रुति कहती है—'इन्द्र (परमेश्वर) सबसे श्रेष्ठ है ।'

गवां पालनाद् गोपवेषधरो गोपतिः, गौर्मही; तस्याः पतित्वाद् वा ।

गौओंका पालन करनेसे गोपवेषधारी कृष्ण **गोपति** हैं अथवा गो पृथ्वीका नाम है, उसके स्वामी होनेसे भगवान् गोपति हैं ।*

समस्तभूतानि पालयन् रक्षको जगतः इति गोप्ता ।

समस्त भूतोंका पालन करनेवाले भगवान् जगत्के रक्षक हैं, इसलिये **गोप्ता** हैं ।

न कर्मणा न ज्ञानकर्मभ्यां वा गम्यते, किन्तु ज्ञानेन गम्यत इति ज्ञानगम्यः ।

कर्मसे अथवा ज्ञान और कर्म [दोनोंके समुच्चय] से नहीं जाने जाते, केवल ज्ञानसे ही जाने जाते हैं, इसलिये **ज्ञानगम्य** हैं ।

कालेनापरिच्छिन्नत्वात् पुरापि भवतीति पुरातनः ।

कालसे अपरिच्छिन्न होनेके कारण सबसे पहले भी रहते हैं, इसलिये **पुरातन** हैं ।

शरीरारम्भकभूतानां भरणात् प्राणरूपधरः शरीरभूतभृत् ।

शरीरकी रचना करनेवाले भूतोंका प्राणरूपसे पालन करते हैं, इसलिये **शरीरभूतभृत्** हैं ।

पालकत्वाद् भोक्ता; परमानन्दसन्दोहसम्भोगाद् वा भोक्ता ।

पालन करनेवाले होनेसे **भोक्ता** हैं; अथवा निरतिशय आनन्दपुञ्जका सम्भोग करनेसे भोक्ता हैं ।

* गो इन्द्रियको भी कहते हैं, अतः इन्द्रियोंका पालन करनेवाला प्राण भी गोपति है ।

इति नाम्नां पञ्चमं शतं विवृतम् ।

यहाँतक सहस्रनामके पाँचवें शतकका विवरण हुआ ।

कपिश्चासाविन्द्रश्चेति कपिर्वराहः, वराहं वपुरास्थितः कपीन्द्रः; कपीनां वानराणामिन्द्रः कपीन्द्रः राघवो वा ।

कपि वराहको कहते हैं, जो कपि और इन्द्र भी हैं, वे वराहरूपधारी भगवान् कपीन्द्र हैं । वे अथवा कपियों—वानरादिके इन्द्र (स्वामी) श्रीरघुनाथजी ही कपीन्द्र हैं ।

भूरयः बह्वयः यज्ञदक्षिणाः धर्ममर्यादां दर्शयतो यज्ञं कुर्वतो विद्यन्त इति भूरिदक्षिणः ॥ ६६ ॥

धर्ममर्यादा दिखाते हुए यज्ञानुष्ठान करते समय भगवान्‌की बहुत-सी दक्षिणाएँ रहती हैं, इसलिये वे भूरिदक्षिण हैं ॥ ६६ ॥

सोमपोऽमृतपः सोमः पुरुजित् पुरुसत्तमः ।
विनयो जयः सत्यसन्धो दाशार्हः सात्वतां पतिः ॥ ६७ ॥

५०३ सोमपः, ५०४ अमृतपः, ५०५ सोमः, ५०६ पुरुजित्, ५०७ पुरुसत्तमः । ५०८ विनयः, ५०९ जयः, ५१० सत्यसन्धः, ५११ दाशार्हः, ५१२ सात्वतां पतिः ॥

सोमं पिबति सर्वयज्ञेषु यष्टव्यदेवतारूपेणेति सोमपः; धर्ममर्यादां दर्शयन् यजमानरूपेण वा सोमपः ।

समस्त यज्ञोंमें यष्टव्य (पूजनीय) देवतारूपसे सोमपान करते हैं, इसलिये सोमप हैं । अथवा यजमानरूपसे धर्ममर्यादा दिखलाते हुए सोमपान करनेके कारण सोमप हैं ।

स्वात्मामृतरसं पिबन् अमृतपः; असुरैः ह्रियमाणममृतं रक्षित्वा देवान् पाययित्वा स्वयमप्यपिबदिति वा ।

अपने आत्मारूप अमृतरसका पान करनेके कारण अमृतप हैं । अथवा असुरोंद्वारा हरे हुए अमृतकी रक्षा करके उसे देवताओंको पिलाया और स्वयं भी पिया, इसलिये अमृतप हैं

सोमरूपेणौषधीः पोषयन् सोमः;

सोम (चन्द्रमा) रूपसे ओषधियों-का पोषण करनेके कारण सोम हैं।

उमया सहितः शिवो वा।

अथवा उमाके साथ रहनेके कारण शिवरूपसे ही सोम हैं।

पुरून् बहून् जयतीति पुरुजित्।

पुरु अर्थात् बहुतोंको जीतते हैं, इसलिये पुरुजित् हैं।

विश्वरूपत्वात् पुरुः, उत्कृष्टत्वात् सत्तमः; पुरुश्चासौ सत्तमश्चेति पुरुसत्तमः।

विश्वरूप होनेसे पुरु हैं और उत्कृष्ट होनेके कारण सत्तम हैं। पुरु हैं और सत्तम हैं, इसलिये पुरुसत्तम हैं।

विनयं दण्डं करोति दुष्टानामिति विनयः।

दुष्टोंको विनय अर्थात् दण्ड देते हैं, इसलिये विनय हैं।

समस्तानि भूतानि जयतीति जयः।

सब भूतोंको जीतते हैं, इसलिये जय हैं।

सत्या सन्धा सङ्कल्पः अस्येति सत्यसन्धः, 'सत्यसङ्कल्पः' (छा० उ० ८। १। ५) इति श्रुतेः।

जिन भगवान्‌की सन्धा अर्थात् सङ्कल्प सत्य है, वे 'सत्यसङ्कल्प' इस श्रुतिके अनुसार सत्यसन्ध हैं।

दाशो दानं तमर्हतीति दाशार्हः;

दाश दानको कहते हैं, भगवान् दानके योग्य हैं, इसलिये दाशार्ह हैं,

दशार्हकुलोद्भवत्वाद् वा।

अथवा दशार्हकुलमें उत्पन्न होनेके कारण दशार्ह हैं।

सात्वतं नाम तन्त्रम्, 'तत् करोति तदाचष्टे' (चुरादिगणसूत्रम्) इति णिचि कृते क्विप्प्रत्यये णिलोपे च कृते पदं सात्वत्, तेषां पतिः योगक्षेमकर इति सात्वतां पतिः॥ ६७॥

सात्वत् नामका एक तन्त्र है 'उसे रचता है या उसकी व्याख्या करता है' इस अर्थमें 'तत् करोति तदाचष्टे' इस गणसूत्रसे णिच्प्रत्यय करनेपर फिर क्विप् प्रत्यय करके णिका लोप कर देनेपर सात्वत् पद बनता है, उन सात्वतोंके पति अर्थात् योगक्षेम करनेवाले होनेसे भगवान् सात्वतां पति हैं*॥ ६७॥

* सात्वतवंशीय यादवोंके अथवा सात्वतों (वैष्णवों) के स्वामी होनेसे भी भगवान् सात्वतां पति हैं।

जीवो विनयितासाक्षी मुकुन्दोऽमितविक्रमः ।
अम्भोनिधिरनन्तात्मा महोदधिशयोऽन्तकः ॥ ६८ ॥

५१३ जीवः, ५१४ विनयितासाक्षी (असाक्षी), ५१५ मुकुन्दः, ५१६ अमितविक्रमः । ५१७ अम्भोनिधिः, ५१८ अनन्तात्मा, ५१९ महोदधिशयः, ५२० अन्तकः ॥

प्राणान् क्षेत्रज्ञरूपेण धारयन्, जीवः उच्यते ।

क्षेत्रज्ञरूपसे प्राण धारण करनेके कारण **जीव** कहे जाते हैं ।

विनयित्वं विनयिता, तां च साक्षात् पश्यति प्रजानामिति विनयितासाक्षी; **अथवा, नयतेर्गतिवाचिनो रूपं विनयिता, असाक्षी असाक्षाद्द्रष्टा आत्मातिरिक्तं वस्तु न पश्यतीत्यर्थः ।**

विनयिता विनयित्वको कहते हैं । प्रजाकी विनयिताको साक्षात् देखते हैं, इसलिये **विनयितासाक्षी** हैं । गति-अर्थके वाचक नी धातुका रूप विनयिता है और साक्षात् न देखनेवाले अर्थात् आत्माके अतिरिक्त अन्य वस्तु न देखनेवालेको असाक्षी कहते हैं । [इस प्रकार विनयिता और असाक्षी—ये दो नाम भी हो सकते हैं] ।

मुक्तिं ददातीति मुकुन्दः, **पृषोदरादित्वात्साधुत्वम् । अक्षरसाम्यान्निरुक्तिवचनात् नैरुक्तानां मुकुन्द इति निरुक्तिः ।**

मुक्ति देते हैं, इसलिये **मुकुन्द** हैं । पृषोदरादिगणमें होनेके कारण [मुक्तिदके स्थानमें] मुकुन्दशब्दकी सिद्धि होती है । अक्षरोंकी समानता और निरुक्तिके वचनसे निरुक्तिकारोंने मुकुन्द कहा है ।

अमिता अपरिच्छिन्ना विक्रमास्त्रयः पादविक्षेपा अस्य, अमितं विक्रमणं शौर्यमस्येति वा अमितविक्रमः ।

भगवान्के विक्रम अर्थात् तीन पादविक्षेप अमित यानी अपरिमित हैं, इसलिये **अमितविक्रम** हैं । अथवा उनका विक्रम—शूरवीरता अतुलित है, इसलिये वे अमितविक्रम हैं ।

अम्भांसि देवादयोऽस्मिन्निधीयन्त इति अम्भोनिधिः, तानि वा एतानि चत्वार्यम्भांसि । देवा मनुष्याः पितरोऽसुराः' **इति श्रुतेः । सागरो** वा, 'सरसामस्मि सागरः' (गीता १० । २४)

इति भगवद्वचनात् ।

देशतः कालतो वस्तुतश्चापरिच्छिन्नत्वात् अनन्तात्मा ।

संहृत्य सर्वभूतान्एकार्णवं जगत् कृत्वा अधिशेते महोदधिमिति महोदधिशयः ।

अन्तं करोति भूतानामिति अन्तकः । 'तत् करोति तदाचष्टे' चुरादिगणसूत्रम् **इति णिचि** 'ण्वुल्-तृचौ (पा० सू० ३ । १ । १३३) इति-ण्वुलि** 'युवोरनाकौ' (पा० सू० ७ । १ । १) **इति अकादेशः** ॥६८॥

अम्भ अर्थात् देवता आदि भगवान्में रहते हैं, इसलिये वे **अम्भोनिधि हैं** । श्रुति कहती है—'वे ये चार अम्भ हैं—'देवता, मनुष्य, पितर और असुर ।' अथवा **'मैं सरोंमें सागर हूँ,** इस भगवान्के वचनानुसार समुद्र ही अम्भोनिधि है ।

देश, काल और वस्तुसे अपरिच्छिन्न होनेके कारण भगवान् **अनन्तात्मा** हैं ।

समस्त भूतोंका संहार कर सम्पूर्ण जगत्को जलमय करके महोदधि (समुद्र) में शयन करते हैं, इसलिये **महोदधिशय** हैं ।

भूतोंका अन्त करते हैं; इसलिये **अन्तक** हैं । **'तत् करोति तदाचष्टे'** इस गणसूत्रसे णिच् प्रत्यय करनेके अनन्तर **'ण्वुल्तृचौ'** सूत्रसे ण्वुल् प्रत्यय हो जाता है और [ण्ल्की इत्संज्ञा—लोप होनेपर] **'वु'** का **'युवोरनाकौ'** इस सूत्रसे अक आदेश हो जाता है ॥ ६८ ॥

अजो महार्हः स्वाभाव्यो जितामित्रः प्रमोदनः ।
आनन्दो नन्दनो नन्दः सत्यधर्मा त्रिविक्रमः ॥ ६९ ॥

५२१ अजः, ५२२ महार्हः, ५२३ स्वाभाव्यः, ५२४ जितामित्रः, ५२५ प्रमोदनः, ५२६ आनन्दः, ५२७ नन्दनः, ५२८ नन्दः (अनन्दः), ५२९ सत्यधर्मा, ५३० त्रिविक्रमः ॥

आत् विष्णोरजायत इति कामः अजः ।

अ अर्थात् विष्णुसे उत्पन्न हुआ है, इसलिये काम अज है ।

महः पूजा तदर्हत्वात् महार्हः ।

मह पूजाको कहते हैं, उसके योग्य होनेके कारण महार्ह हैं ।

स्वभावेनैवाभाव्यो नित्यनिष्पन्नरूपत्वाद् इति स्वाभाव्यः ।

नित्यसिद्ध होनेके कारण स्वभावसे ही उत्पन्न नहीं होते, इसलिये स्वाभाव्य हैं ।

जिता अमित्रा अन्तर्वर्तिनो रागद्वेषादयो बाह्याश्च रावणकुम्भकर्णशिशुपालादयो येनासौ जितामित्रः ।

जिन्होंने रागद्वेषादि आन्तरिक और रावण, कुम्भकर्ण, शिशुपाल आदि बाह्य अमित्र यानी शत्रु जीत लिये हैं, वे भगवान् जितामित्र हैं ।

स्वात्मामृतरसास्वादान्नित्यं प्रमोदते, ध्यायिनां ध्यानमात्रेण प्रमोदं करोतीति वा प्रमोदनः ।

अपने आत्मारूप अमृतरसका आस्वादन करनेसे नित्य प्रमुदित होते हैं, अथवा अपने ध्यानमात्रसे ध्यानियोंको प्रमुदित करते हैं, इसलिये प्रमोदन हैं ।

आनन्दः स्वरूपमस्येति आनन्दः, एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति' (बृ० उ० ४ । ३ । ३२) इति श्रुतेः ।

भगवान्‌का स्वरूप आनन्द है, इसलिये वे आनन्द हैं । श्रुति कहती है—**'इस आनन्दकी ही मात्राका आश्रय ले अन्य प्राणी जीवित रहते हैं ।'**

नन्दयतीति नन्दनः ।

आनन्दित करते हैं, इसलिये नन्दन हैं ।

सर्वाभिरुपपत्तिभिः समृद्धो नन्दः । सुखं वैषयिकं नास्य विद्यत इति आनन्दः; यो वै भूमा तत सुखं नाल्पे सुखमस्ति' (छा० उ० ७ । २३ । १) इति श्रुतेः ।

सब प्रकारकी सिद्धियोंसे सम्पन्न होनेसे नन्द हैं, अथवा भगवान्‌में विषयजन्य सुखका अभाव है, इसलिये वे आनन्द हैं । श्रुति कहती है—**'जो भूमा (पूर्णता) है वही सुख है, अल्पमें सुख नहीं है ।'**

सत्या धर्मा ज्ञानादयोऽस्येति सत्यधर्मा ।

त्रयो विक्रमास्त्रिषु लोकेषु क्रान्ता यस्य स त्रिविक्रमः, 'त्रीणि पदा विचक्रमे' इति श्रुतेः, त्रयो लोकाः क्रान्ता येनेति वा त्रिविक्रमः ।

'त्रिरित्येव त्रयो लोकाः
कीर्तिता मुनिसत्तमैः ॥
क्रमते तांस्त्रिधा सर्वां-
स्त्रिविक्रम इति श्रुतः ॥'
(३ । ८८ । ५१)

इति हरिवंशे ॥ ६९ ॥

भगवान्‌के ज्ञान आदि धर्म सत्य हैं, इसलिये वे **सत्यधर्मा** हैं ।

जिनके तीन विक्रम (डग) तीनों लोकोंमें क्रान्त (व्याप्त) हो गये, वे भगवान् **त्रिविक्रम** हैं । श्रुति कहती है—'अपने पैरसे तीन पग चले ।' अथवा जिन्होंने तीनों लोकोंका क्रमण (लङ्घन) किया है, वे भगवान् त्रिविक्रम हैं । हरिवंशमें कहा है—'मुनिश्रेष्ठोंने 'त्रि' शब्दसे तीन लोक कहे हैं, आप उनका तीन बार उल्लङ्घन कर जाते हैं, इसलिये त्रिविक्रम नामसे प्रसिद्ध हैं ॥ ६९ ॥

महर्षिः कपिलाचार्यः कृतज्ञो मेदिनीपतिः ।
त्रिपदस्त्रिदशाध्यक्षो महाशृङ्गः कृतान्तकृत् ॥ ७० ॥

५३१ महर्षिः कपिलाचार्यः, ५३२ कृतज्ञः, ५३३ मेदिनीपतिः ।
५३४ त्रिपदः, ५३५ त्रिदशाध्यक्षः, ५३६ महाशृङ्गः, ५३७ कृतान्तकृत् ॥

महर्षिः कपिलाचार्यः इति सविशेषणमेकं नाम । महांश्चासावृषिश्चेति महर्षिः; कृत्स्नस्य वेदस्य दर्शनात्; अन्ये तु वेदैकदेशदर्शनादृषयः; कपिलश्चासौ सांख्यस्य शुद्धतत्त्वविज्ञानस्याचार्यश्चेति कपिलाचार्यः ।

'शुद्धात्मतत्त्वविज्ञानं
सांख्यमित्यभिधीयते ।'

इति स्मृतेः ।

महर्षि कपिलाचार्य यह विशेषण-सहित एक नाम है । जो महान् ऋषि हो, उसे महर्षि कहते हैं । सम्पूर्ण वेदोंको जाननेके कारण [कपिल महर्षि हैं] और तो केवल वेदके एक-देशको जाननेके कारण ऋषि ही हैं । जो कपिल हैं और सांख्यरूप शुद्ध तत्त्व-विज्ञान-के आचार्य भी हैं, वे ही कपिलाचार्य हैं । स्मृति कहती है—'शुद्ध आत्म-तत्त्वका विज्ञान सांख्य कहलाता है ।'

'ऋषिं प्रसूतं कपिलम्'

(श्वे० उ० ५ । २)

इति श्रुतेश्च,

'सिद्धानां कपिलो मुनिः'

(गीता १० । २६)

इति स्मृतेश्च ।

कृतं कार्यं जगत्, ज्ञ आत्मा, कृतं च तज् ज्ञश्चेति कृतज्ञः ।

मेदिन्या भूम्याः पतिः मेदिनीपतिः ।

त्रीणि पदान्यस्येति त्रिपदः; 'त्रीणि पदा विचक्रमे' इति श्रुतेः ।

गुणावेशेन सञ्जातास्तिस्रो दशा अवस्था जाग्रदादयः, तासामध्यक्ष इति त्रिदशाध्यक्षः ।

मत्स्यरूपी महति शृङ्गे प्रलयाम्भोधौ नावं बद्ध्वा चिक्रीड इति महाशृङ्गः ।

कृतस्यान्तं संहारं करोतीति, कृतान्तं मृत्युं कृन्ततीति वा कृतान्तकृत् ॥ ७० ॥

श्रुतिमें भी कहा है—'ऋषिरूपसे उत्पन्न हुए कपिलको ।' तथा यह स्मृति (गीतावाक्य) भी है—'सिद्धोंमें मैं कपिलमुनि हूँ ।'

कृत कार्यरूप जगत् और ज्ञ आत्माको कहते हैं, कृत भी हैं और ज्ञ भी हैं, इसलिये भगवान् कृतज्ञ हैं ।

मेदिनी अर्थात् पृथ्वीके पति होनेसे मेदिनीपति हैं ।

भगवान्के तीन पद हैं, इसलिये वे त्रिपद हैं । श्रुति कहती है 'अपने पैरसे तीन पग चले ।'

गुणके आवेशसे जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति—ये तीन दशाएँ—अवस्थाएँ उत्पन्न हुईं; उनके अध्यक्ष (साक्षी) होनेसे त्रिदशाध्यक्ष हैं ।

भगवान्ने मत्स्यरूप होकर अपने महाशृङ्गमें नाव बाँधकर प्रलय-समुद्रमें क्रीड़ा की थी, इसलिये वे महाशृङ्ग हैं ।

कृत (कार्यरूप जगत्) का अन्त अर्थात् संहार करते हैं, इसलिये कृतान्तकृत् हैं । अथवा कृतान्त मृत्युको काटते हैं, इसलिये कृतान्तकृत् हैं* ॥ ७० ॥

* कृतान्त अर्थात् मृत्युके रचनेवाले होनेसे भी कृतान्तकृत् हैं ।

महावराहो गोविन्दः सुषेणः कनकाङ्गदी ।
गुह्यो गभीरो गहनो गुप्तश्चक्रगदाधरः ॥ ७१ ॥

५३८ महावराहः, ५३९ गोविन्दः, ५४० सुषेणः, ५४१ कनकाङ्गदी । ५४२ गुह्यः, ५४३ गभीरः, ५४४ गहनः, ५४५ गुप्तः, ५४६ चक्रगदाधरः ॥

महांश्चासौ वराहश्चेति महावराहः ।

गोभिर्वाणीभिर्विन्दते, वेत्ति वेदान्तवाक्यैरिति वा गोविन्दः ।

'गोभिरेव यतो वेद्यो
गोविन्दः समुदाहृतः ।'

इति श्रीविष्णुतिलके ।

शोभना सेना गणात्मिका यस्येति सुषेणः ।

कनकमयान्यङ्गदानि अस्येति कनकाङ्गदी ।

रहस्योपनिषद्वेद्यत्वाद् गुहायां हृदयाकाशे निहित इति वा गुह्यः ।

ज्ञानैश्वर्यबलवीर्यादिभिर्गम्भीरो गभीरः ।

दुष्प्रवेशत्वात् गहनः, अवस्थात्रयभावाभावसाक्षित्वाद् गहनो वा ।

महान् और वराह भी हैं, इसलिये **महावराह** हैं ।

भगवान्‌को गो अर्थात् वाणीसे प्राप्त करते हैं अथवा वेदान्तवाक्योंसे जानते हैं, इसलिये वे **गोविन्द** हैं । विष्णुतिलकमें कहा है—'क्योंकि वाणीहीसे वेद्य है, इसलिये वह गोविन्द कहलाता है ।'

जिनकी पार्षदरूप सुन्दर सेना है, वे भगवान् **सुषेण** हैं ।

जिनके कनकमय (सोनेके) अङ्गद (भुजबन्ध) हैं, वे भगवान् **कनकाङ्गदी** कहलाते हैं ।

गोपनीय उपनिषद्-विद्यासे बोध्य होनेके कारण अथवा गुहा यानी हृदयाकाशमें छिपे होनेके कारण **गुह्य** हैं ।

ज्ञान, ऐश्वर्य, बल और पराक्रम आदिके कारण गम्भीर होनेसे **गभीर** हैं ।

कठिनतासे प्रवेश किये जाने योग्य होनेसे **गहन** हैं, अथवा तीनों अवस्थाओंके भाव और अभावके साक्षी होनेसे गहन हैं ।

वाङ्मनसागोचरत्वात् गुप्तः, 'एष सर्वेषु भूतेषु गूढोत्मा न प्रकाशते ।' (क० उ० १ । ३ । १२) इति श्रुतेः ।

'मनस्तत्त्वात्मकं चक्रं बुद्धितत्त्वात्मिकां गदाम् ।
धारयन् लोकरक्षार्थमुक्तश्चक्रगदाधरः ॥'

इति चक्रगदाधरः ॥ ७१ ॥

वाणी और मनके अविषय होनेसे गुप्त हैं । श्रुति कहती है—'सब भूतोंमें छिपा हुआ यह आत्मा प्रकाशित नहीं होता ।'

'मनस्तत्त्वरूप चक्र और बुद्धितत्त्वरूप गदाको लोक-रक्षाके लिये धारण करनेसे भगवान् चक्रगदाधर कहलाते हैं, इस उक्तिके अनुसार भगवान् चक्रगदाधर हैं ॥ ७१ ॥

वेधाः स्वाङ्गोऽजितः कृष्णो दृढः सङ्कर्षणोऽच्युतः ।
वरुणो वारुणो वृक्षः पुष्कराक्षो महामनाः ॥७२॥

५४७ वेधाः, ५४८ स्वाङ्गः, ५४९ अजितः, ५५० कृष्णः, ५५१ दृढः, ५५२ सङ्कर्षणोऽच्युतः । ५५३ वरुणः, ५५४ वारुणः, ५५५ वृक्षः, ५५६ पुष्कराक्षः, ५५७ महामनाः ॥

विधाता वेधाः । पृषोदरादित्वात् साधुत्वम् ।

स्वयमेव कार्यकरणे अङ्गं सहकारीति स्वाङ्गः ।

न केनाप्यवतारेषु जित इति अजितः ।

कृष्णः कृष्णद्वैपायनः, 'कृष्णद्वैपायनं व्यासं विद्धि नारायणं प्रभुम् ।

विधान करनेवाले हैं, इसलिये वेधा हैं । पृषोदरादिगणमें होनेके कारण वेधा शब्द शुद्ध माना जाता है ।

कार्यके करनेमें स्वयं ही अङ्ग अर्थात् उसके सहकारी हैं, इसलिये स्वाङ्ग हैं ।

अपने अवतारोंमें किसीसे नहीं जीते गये, इसलिये अजित हैं ।

कृष्णद्वैपायन ही कृष्ण हैं; जैसा कि विष्णुपुराणमें कहा है—'कृष्णद्वैपायन व्यासको प्रभु नारायण ही

को ह्यन्यः पुण्डरीकाक्षा-
न्महाभारतकृद् भवेत् ॥'
(३ । ४ । ५)

इति विष्णुपुराणवचनात् ।

जानो, भला भगवान् पुण्डरीकाक्षको छोड़कर महाभारतका रचनेवाला और कौन हो सकता है ?'

स्वरूपसामर्थ्यादेः प्रच्युत्यभावात् दृढः ।

भगवान्के स्वरूप-सामर्थ्यादिकी कभी प्रच्युति (ह्रास) नहीं होती, इसलिये वे **दृढ** हैं ।

संहारसमये युगपत् प्रजाः सङ्कर्षतीति सङ्कर्षणः, न च्योतति स्वरूपादित्यच्युतः, सङ्कर्षणोऽच्युतः, इति नामैकं सविशेषणम् ।

संहारके समय एक साथ ही प्रजाका आकर्षण करते हैं, इसलिये संकर्षण हैं, तथा अपने पदसे च्युत नहीं होते इसलिये अच्युत हैं । इस प्रकार **सङ्कर्षणोऽच्युतः**—यह विशेषणसहित एक नाम है ।

स्वरश्मीनां संवरणात् सायङ्गतः सूर्यो वरुणः,

'इमं मे वरुण श्रुधी हवम्'

इति मन्त्रवर्णात् ।

अपनी किरणोंका संवरण (संकोच) करनेके कारण सायंकालीन सूर्य **वरुण** है । इस विषयमें मन्त्रवर्ण कहता है—**'हे वरुण ! मेरा यह आवाहन सुनो'** इति ।

वरुणस्यापत्यं वसिष्ठोऽगस्त्यो वा वारुणः ।

वरुणके पुत्र वसिष्ठ या अगस्त्य **वारुण** हैं ।

वृक्ष इवाचलतया स्थित इति वृक्षः, 'वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकः' (श्वे० उ० ३ । ९) इति श्रुतेः ।

वृक्षके समान अचल भावसे स्थित हैं; इसलिये **वृक्ष हैं** । श्रुति कहती है—**'स्वर्गमें वृक्षके समान स्तब्ध एक [परमात्मा] स्थित है ।'**

व्याप्त्यर्थादक्षतेर्धातोः पुष्करोपपदादण्प्रत्यये पुष्कराक्षः; हृदय-

जिसका उपपद (पूर्ववर्ती शब्द) पुष्कर है, उस व्याप्ति अर्थवाले अक्षू धातुसे अण्* प्रत्यय करनेपर **पुष्कराक्ष**

* 'कर्मण्यण्' (पा० सू० ३ । २ । १) सूत्रसे यहाँ अण् प्रत्यय हुआ है ।

पुण्डरीके चिन्तितः स्वरूपेण प्रकाशत इति वा पुष्कराक्षः ।

शब्द सिद्ध होता है । अथवा हृदय-कमलमें चिन्तन किये जानेपर चित्स्वरूप-से प्रकाशित होते हैं, इसलिये पुष्कराक्ष हैं ।*

सृष्टिस्थित्यन्तकर्माणि मनसैव करोतीति महामनाः;

'मनसैव जगत्सृष्टिं
संहारं च करोति यः ।'

इति विष्णुपुराणे ॥७२॥

सृष्टि, स्थिति और अन्त—ये तीनों कर्म मनसे ही करते हैं, इसलिये महामना हैं । विष्णुपुराणमें कहा है—'जो मनसे ही जगत्की उत्पत्ति और संहार करता है' ॥ ७२ ॥



भगवान् भगहानन्दी वनमाली हलायुधः ।
आदित्यो ज्योतिरादित्यः सहिष्णुर्गतिसत्तमः ॥ ७३ ॥

५५८ भगवान्, ५५९ भगहा, ५६० आनन्दी, ५६१ वनमाली, ५६२ हलायुधः । ५६३ आदित्यः, ५६४ ज्योतिरादित्यः, ५६५ सहिष्णुः, ५६६ गतिसत्तमः ।

'ऐश्वर्यस्य समग्रस्य
धर्मस्य यशसः श्रियः ।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव
षण्णां भग इतीरणा ॥'
(विष्णु० ६ । ५ । ७४)

सोऽस्यास्तीति भगवान् ।

'उत्पत्तिं प्रलयं चैव
भूतानामागतिं गतिम् ।
वेत्ति विद्यामविद्यां च
स वाच्यो भगवानिति ॥'
(६ । ५ । ७८)

इति विष्णुपुराणे ।

'सम्पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य—इन छःका नाम भग है' यह [इस वाक्यमें कहा हुआ] भग जिसमें है, वही भगवान् है अथवा विष्णुपुराणमें कहा है—'उत्पत्ति, प्रलय, प्राणियोंका आना और जाना तथा विद्या और अविद्याको जो जानता है, उसे भगवान् कहना चाहिये ।'

* पुष्कर अर्थात् कमलके समान नेत्रवाले हैं, इसलिये भी पुष्कराक्ष हैं ।

ऐश्वर्यादिकं संहारसमये हन्तीति भगहा ।

संहारके समय ऐश्वर्य आदिका हनन करते हैं, इसलिये **भगहा** हैं ।

सुखस्वरूपत्वात् आनन्दी; सर्व-सम्पत्समृद्धत्वादानन्दी वा ।

सुखरूप होनेसे **आनन्दी** हैं । अथवा सम्पूर्ण सम्पत्तियोंसे सम्पन्न होनेके कारण आनन्दी हैं ।

भूततन्मात्ररूपां वैजयन्त्याख्यां वनमालां वहन् वनमाली ।

भूततन्मात्राओंकी बनी हुई वैजयन्ती नामकी वनमाला धारण करनेसे भगवान् **वनमाली** कहलाते हैं ।

हलमायुधमस्येति हलायुधः, बलभद्राकृतिः ।

हल ही जिनका आयुध (शस्त्र) है वे बलभद्रस्वरूप भगवान् **हलायुध** हैं ।

अदित्यां कश्यपाद् वामनरूपेण जात आदित्यः ।

कश्यपजीके द्वारा वामनरूपसे अदितिके [गर्भसे] उत्पन्न हुए थे, इसलिये **आदित्य** हैं ।

ज्योतिषि सवितृमण्डले स्थितो ज्योतिरादित्यः ।

सूर्यमण्डलान्तर्गत ज्योतिमें स्थित हैं, इसलिये **ज्योतिरादित्य** हैं ।

द्वन्द्वानि शीतोष्णादीनि सहत इति सहिष्णुः ।

शीतोष्णादि द्वन्द्वोंको सहन करते हैं, इसलिये **सहिष्णु** हैं ।

गतिश्चासौ सत्तमश्चेति गतिसत्तमः ॥ ७३ ॥

गति हैं और सर्वश्रेष्ठ हैं, इसलिये **गतिसत्तम** हैं ॥ ७३ ॥



सुधन्वा खण्डपरशुर्दारुणो द्रविणप्रदः ।
दिवःस्पृक् सर्वदृग्व्यासो वाचस्पतिरयोनिजः ॥ ७४ ॥

५६७ सुधन्वा, ५६८ खण्डपरशुः, (अखण्डपरशुः), ५६९ दारुणः, ५७० द्रविण-प्रदः । ५७१ दिवःस्पृक्, ५७२ सर्वदृग्व्यासः, ५७३ वाचस्पतिरयोनिजः ॥

शोभनमिन्द्रियादिमयं शार्ङ्गं धनुरस्यास्तीति सुधन्वा ।

भगवान्‌का इन्द्रियादिमय सुन्दर शार्ङ्गधनुष है, इसलिये वे **सुधन्वा** हैं ।

शत्रूणां खण्डनात् खण्डः परशुरस्य जामदग्न्याकृतेरिति खण्डपरशुः; अखण्डः परशुरस्येति वा [अखण्डपरशुः]।

शत्रुओंका खण्डन करनेसे जिन परशुरामस्वरूप भगवान्‌का परशु खण्ड कहलाता है, वे खण्डपरशु हैं। अथवा जिनका परशु अखण्ड अर्थात् अखण्डित है, वे भगवान् अखण्डपरशु हैं।

सन्मार्गविरोधिनां दारुणत्वात् दारुणः।

सन्मार्गके विरोधियोंके लिये दारुण (कठोर) होनेके कारण दारुण हैं।

द्रविणं वाञ्छितं भक्तेभ्यः प्रददातीति द्रविणप्रदः।

भक्तोंको द्रविण अर्थात् इच्छित धन देते हैं, इसलिये द्रविणप्रद हैं।

दिवः स्पर्शनात् दिवःस्पृक्।

दिव् (स्वर्ग) का स्पर्श करनेसे दिवःस्पृक् हैं।

सर्वदृशां सर्वज्ञानानां विस्तारकृद् व्यासः सर्वदृग्व्यासः। अथवा, सर्वा च सा दृक् चेति सर्वदृक् सर्वाकारं ज्ञानम्; सर्वस्य दृष्टित्वाद् वा सर्वदृक्। ऋग्वेदादिविभागेन चतुर्धा वेदा व्यस्ताः कृताः, आद्यो वेद एकविंशतिधा कृतः, द्वितीय एकोत्तरशतधा कृतः, सामवेदः सहस्रधा कृतः, अथर्ववेदो नवधा शाखाभेदेन कृतः। एवम् अन्यानि च पुराणानि व्यस्तान्यनेनेति व्यासः ब्रह्मा।

सर्वदृक् अर्थात् सम्पूर्ण ज्ञानोंका विस्तार करनेवाले—व्यास हैं, इसलिये सर्वदृग्व्यास हैं। अथवा जो सर्व है और दृक् है; वह सर्वाकार ज्ञान ही सर्वदृक् है। अथवा सबकी दृष्टि होनेके कारण भगवान् सर्वदृक् हैं। जिन्होंने ऋग्वेदादि विभागसे वेदको चार भागोंमें विभक्त किया, फिर शाखा-भेदसे उनमेंसे प्रथम (ऋग्वेद) के इक्कीस भाग किये, दूसरे (यजुर्वेद) के एक सौ एक भाग किये, सामवेदको सहस्र भागोंमें बाँटा और अथर्ववेदके नौ शाखा-भेद किये; इसी प्रकार अन्य पुराणोंका भी विभाग किया; इसलिये ब्रह्माजी व्यास हैं।

वाचस्पतिरयोनिजः, वाचो विद्यायाः पतिः वाचस्पतिः, जनन्यां

वाक् अर्थात् विद्याके पति होनेसे वाचस्पति हैं और जननीसे जन्म नहीं

न जायत इति अयोनिजः; इति सविशेषणमेकं नाम ॥ ७४ ॥

लेते, इसलिये अयोनिज हैं। इस प्रकार वाचस्पतिरयोनिज यह विशेषण-सहित एक नाम है ॥ ७४ ॥



त्रिसामा सामगः साम निर्वाणं भेषजं भिषक् ।
संन्यासकृच्छमः शान्तो निष्ठा शान्तिः परायणम् ॥७५॥

५७४ त्रिसामा, ५७५ सामगः, ५७६ साम, ५७७ निर्वाणम्, ५७८ भेषजम्, ५७९ भिषक् । ५८० संन्यासकृत्, ५८१ शमः, ५८२ शान्तः, ५८३ निष्ठा, ५८४ शान्तिः, ५८५ परायणम् ॥

देवव्रतसमाख्यातैस्त्रिभिः सामभिः सामगैः स्तुत इति त्रिसामा ।

देवव्रत नामक तीन सामोंद्वारा सामगान करनेवालोंसे स्तुति किये जाते हैं, इसलिये त्रिसामा हैं।

साम गायतीति सामगः ।

सामगान करते हैं, इसलिये सामग हैं।

'वेदानां सामवेदोऽस्मि' (गीता १० । २२) इति भगवद्वचनात् सामवेदः साम ।

'वेदोंमें मैं सामवेद हूँ' भगवान्‌के इस वचनानुसार सामवेद ही साम है।

सर्वदुःखोपशमलक्षणं परमानन्दरूपं निर्वाणम् ।

सब दुःखोंसे रहित परमानन्दस्वरूप ब्रह्म ही निर्वाण है।

संसाररोगस्यौषधं भेषजम् ।

संसाररूप रोगकी औषध होनेसे भेषज हैं।

संसाररोगनिर्मोक्षकारिणीं परां विद्यामुपदिदेश गीतास्विति भिषक्, 'भिषक्तमं त्वा भिषजां शृणोमि' इति श्रुतेः ।

गीतामें संसाररूप रोगसे छुड़ानेवाली परा विद्याका उपदेश किया है, इसलिये भगवान् भिषक् हैं। श्रुति कहती है—'वैद्योंमें मैं तुम्हें सबसे बड़ा वैद्य सुनता हूँ।'

मोक्षार्थं चतुर्थमाश्रमं कृतवानिति संन्यासकृत्।

मोक्षके लिये चतुर्थाश्रम (संन्यास) की रचना की है, इसलिये संन्यासकृत् हैं।*

संन्यासिनां प्राधान्येन ज्ञानसाधनं शममाचष्ट इति शमः,

'यतीनां प्रशमो धर्मो
नियमो वनवासिनाम्।
दानमेव गृहस्थानां
शुश्रूषा ब्रह्मचारिणाम्॥'

इति स्मृतेः। 'तत् करोति तदाचष्टे' (चुरादिगणसूत्रम्) इति णिचि पचाद्यचि कृते रूपं शम इति। सर्वभूतानां शमयितेति वा शमः।

संन्यासियोंको ज्ञानके साधन शमका विशेषरूपसे उपदेश दिया, इसलिये भगवान् शम हैं। स्मृतिमें कहा है— 'यतियोंका धर्म शम है, वनवासियोंका नियम है, गृहस्थोंका दान है और ब्रह्मचारियोंका गुरु-शुश्रूषा ही परम धर्म है।' इस शम शब्दसे 'तत् करोति तदाचष्टे' इस गणसूत्रके अनुसार णिच् कर देनेपर [शमयति होता है] उसे पचादि मानकर अच् प्रत्यय करनेसे 'शम' पद सिद्ध होता है। अथवा सब प्राणियोंका शमन करनेवाले हैं, इसलिये शम हैं।

विषयसुखेष्वसङ्गतया शान्तः, 'निष्कलं निष्क्रियं शान्तम्' (श्वे० उ० ६। १९) इति श्रुतेः।

विषयसुखोंमें अनासक्त होनेके कारण शान्त हैं। श्रुति कहती है— 'परब्रह्म कलारहित, क्रियारहित और शान्त है।'

प्रलये नितरां तत्रैव तिष्ठन्ति भूतानीति निष्ठा।

प्रलयकालमें प्राणी सर्वथा भगवान्में ही स्थित रहते हैं, इसलिये वे निष्ठा हैं।

समस्ताविद्यानिवृत्तिः शान्तिः, सा ब्रह्मैव।

सम्पूर्ण अविद्याकी निवृत्ति ही शान्ति है, वह शान्ति ब्रह्मरूप ही है।

---

* नर-नारायणरूपसे भगवान्ने संन्यास ग्रहण किया था, इसलिये भी वे संन्यासकृत् हैं।

परमुत्कृष्टमयनं स्थानं पुनरावृत्तिशङ्कारहितमिति परायणम् । पुँल्लिङ्गपक्षे बहुव्रीहिः ॥७५॥

पुनरावृत्तिकी शंकासे रहित परम उत्कृष्ट अयन अर्थात् स्थान हैं, इसलिये परायण हैं। यदि ['परायणम्'के स्थानमें 'परायणः' ऐसा] पुँल्लिङ्ग पाठ हो तो बहुव्रीहि समास करना चाहिये *॥७५॥

शुभाङ्गः शान्तिदः स्रष्टा कुमुदः कुवलेशयः ।
गोहितो गोपतिर्गोप्ता वृषभाक्षो वृषप्रियः ॥ ७६ ॥

५८६ शुभाङ्गः, ५८७ शान्तिदः, ५८८ स्रष्टा, ५८९ कुमुदः, ५९० कुवलेशयः । ५९१ गोहितः, ५९२ गोपतिः, ५९३ गोप्ता, ५९४ वृषभाक्षः, ५९५ वृषप्रियः ॥

सुन्दरां तनुं धारयन् शुभाङ्गः ।

सुन्दर शरीर धारण करनेके कारण भगवान् शुभाङ्ग हैं।

रागद्वेषादिनिर्मोक्षलक्षणां शान्तिं ददातीति शान्तिदः ।

राग-द्वेषादिसे मुक्त हो जानारूप शान्ति देते हैं, इसलिये शान्तिद हैं।

सर्गादौ सर्वभूतानि ससर्जेति स्रष्टा ।

सर्गके आरम्भमें सब भूतोंको रचा है, इसलिये स्रष्टा हैं।

कौ भूम्यां मोदत इति कुमुदः ।

कु अर्थात् पृथ्वीमें मुदित होते हैं, इसलिये कुमुद हैं।

कोः क्षितेर्वलनात् संसरणात् कुवलं जलम्, तस्मिन् शेत इति कुवलेशयः; 'शयवासवासिष्वकालात्' (पा० सू० ६।३।१८) इति अलुक् सप्तम्याः; कुवलस्य बदरी-

कु अर्थात् पृथ्वीका वलन करने (घेरने) से जल कुवल कहलाता है, उसमें शयन करते हैं, इसलिये कुवलेशय हैं। 'शयवासवासिष्वकालात्' इस सूत्रके अनुसार यहाँ सप्तमीका लुक् (लोप) नहीं हुआ। अथवा कुवल अर्थात् बदरीफलके मध्यमें तक्षक शयन करता

* तब इसका विग्रह इस प्रकार होगा परम् अयनं यस्य सः, अर्थात् जिसका अयन (निवासस्थान) परम (उत्कृष्ट) हो, वह।

फलस्य मध्ये शेते तक्षकः; सोऽपि तस्य विभूतिरिति वा हरिः कुवलेशयः; कौ भूम्यां वलते संश्रयत इति सर्पाणामुदरं कुवलम् तस्मिन् शेषोदरे शेत इति कुवलेशयः।

है, वह भी भगवान्‌की विभूति ही है, इसलिये भी श्रीहरि कुवलेशय हैं। अथवा कु अर्थात् पृथ्वीका आश्रय लेनेके कारण सर्पोंका उदर कुवल कहलाता है, उसपर–शेषोदरपर शयन करते हैं, इसलिये कुवलेशय हैं।

गवां वृद्ध्यर्थं गोवर्धनं धृतवानिति गोभ्यो हितो गोहितः; गोर्भूमेः भारावतरणेच्छया शरीरग्रहणं कुर्वन् वा गोहितः।

गौओंकी वृद्धिके लिये गोवर्धन धारण किया था; अतः गौओंके हितकारी होनेसे भगवान् गोहित हैं। अथवा गो-पृथ्वीका भार उतारनेके लिये अपनी इच्छासे शरीर धारण करनेके कारण गोहित हैं।

गोर्भूम्याः पतिः गोपतिः।

गो अर्थात् भूमि आदिके पति होनेके कारण भगवान् गोपति हैं।

रक्षको जगत इति गोप्ता। स्वमायया स्वमात्मानं संवृणोतीति वा गोप्ता।

जगत्‌के रक्षक हैं; इसलिये गोप्ता हैं। अथवा अपनी मायासे अपनेको ढँक लेते हैं, इसलिये गोप्ता हैं।

सकलान् कामान् वर्षुके अक्षिणी अस्येति, वृषभो धर्मः स एव वा दृष्टिरस्येति वृषभाक्षः।

भगवान्‌की अक्षि (आँखें) सम्पूर्ण कामनाओंको बरसानेवाली हैं, इसलिये अथवा वृषभ धर्मको कहते हैं और वही उनकी दृष्टि है, इसलिये वे वृषभाक्ष हैं।

वृषो धर्मः प्रियो यस्य स वृषप्रियः; 'वा प्रियस्य' (वार्तिकम्) इति पूर्वनिपातविकल्पविधानात्

जिन्हें वृष अर्थात् धर्म प्रिय है, वे भगवान् वृषप्रिय हैं। 'वा प्रियस्य'* इस वार्तिकके अनुसार प्रिय शब्दके

* यह वार्तिक 'सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ' (पा० सू० २।२।३५) सूत्रके ऊपर है।

परनिपातः; वृषश्चासौ प्रियश्चेति वा ॥ ७६ ॥

परनिपात हुआ है। अथवा जो वृष एवं प्रिय भी हैं [वे भगवान् वृषप्रिय हैं] ॥ ७६ ॥

अनिवर्ती निवृत्तात्मा संक्षेप्ता क्षेमकृच्छिवः ।
श्रीवत्सवक्षाः श्रीवासः श्रीपतिः श्रीमतां वरः ॥ ७७ ॥

५९६ अनिवर्ती, ५९७ निवृत्तात्मा, ५९८ संक्षेप्ता, ५९९ क्षेमकृत्, ६०० शिवः।
६०१ श्रीवत्सवक्षाः, ६०२ श्रीवासः, ६०३ श्रीपतिः, ६०४ श्रीमतां वरः ॥

देवासुरसंग्रामान्न निवर्तत इति अनिवर्ती; वृषप्रियत्वाद्धर्मान्न निवर्तत इति वा ।

देवासुरसंग्रामसे पीछे नहीं हटते इसलिये अनिवर्ती हैं; अथवा धर्मप्रिय होनेके कारण धर्मसे विमुख नहीं होते, इसलिये अनिवर्ती हैं ।

स्वभावतो विषयेभ्यो निवृत्त आत्मा मनोऽस्येति निवृत्तात्मा ।

भगवान्‌का आत्मा यानी मन स्वभावसे ही विषयोंसे निवृत्त (हटा हुआ) है, इसलिये वे निवृत्तात्मा हैं ।

विस्तृतं जगत संहारसमये सूक्ष्मरूपेण संक्षिपन् संक्षेप्ता ।

संहारके समय विस्तृत जगत्‌को सूक्ष्मरूपसे संक्षिप्त करते हैं, इसलिये संक्षेप्ता हैं ।

उपात्तस्य परिरक्षणं करोतीति क्षेमकृत् ।

प्राप्त हुए पदार्थकी रक्षा [अर्थात् क्षेम] करते हैं, इसलिये क्षेमकृत् हैं ।

स्वनामस्मृतिमात्रेण पावयन् शिवः ।

अपने नामस्मरणमात्रसे पवित्र करनेके कारण शिव हैं ।

इति नाम्नां षष्ठं शतं विवृतम् ।

यहाँतक सहस्रनामके छठे शतकका विवरण हुआ ।

श्रीवत्ससंज्ञं चिह्नमस्य वक्षसि स्थितमिति श्रीवत्सवक्षाः ।

भगवान्‌के वक्षःस्थलमें श्रीवत्स नामक चिह्न है, इसलिये वे श्रीवत्सवक्षा हैं ।

अस्य वक्षसि श्रीरनपायिनी वसतीति श्रीवासः ।

उनके वक्षःस्थलमें कभी नष्ट न होनेवाली श्री निवास करती हैं, इसलिये वे श्रीवास हैं ।

अमृतमथने सर्वान् सुरासुरादीन् विहाय श्रीरेनं पतित्वेन वरयामासेति श्रीपतिः । श्रीः परा शक्तिः, तस्याः पतिरिति वा, 'परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते' (श्वे० उ० ६ । ८) इति श्रुतेः ।

अमृतमन्थनके समय श्रीने सुर-असुर सबको छोड़कर भगवान्‌को ही पतिरूपसे वरण किया था, इसलिये वे श्रीपति हैं । अथवा श्री परा शक्तिको कहते हैं, उसके पति होनेके कारण श्रीपति हैं, जैसा कि श्रुति कहती है—उस (ईश्वर) की पराशक्ति अनेक प्रकारकी ही सुनी जाती है ।'

ऋग्यजुः सामलक्षणा श्रीर्येषां तेषां सर्वेषां श्रीमतां विरिञ्चयादीनां प्रधानभूतः श्रीमतां वरः; 'ऋचः सामानि यजूंषि । सा हि श्रीरमृता सताम्' इति श्रुतेः ॥ ७७ ॥

जिनका ऋक्, यजुः और सामरूप श्री है, उस ब्रह्मा आदि श्रीमानोंमें प्रधान होनेसे भगवान् श्रीमतां वर हैं। श्रुति कहती है—'ऋक्, साम और यजुः ही सत्पुरुषोंकी अमर श्री है' ॥ ७७ ॥

श्रीदः श्रीशः श्रीनिवासः श्रीनिधिः श्रीविभावनः ।
श्रीधरः श्रीकरः श्रेयः श्रीमाँल्लोकत्रयाश्रयः ॥७८॥

६०५ श्रीदः, ६०६ श्रीशः, ६०७ श्रीनिवासः, ६०८ श्रीनिधिः, ६०९ श्रीविभावनः। ६१० श्रीधरः, ६११ श्रीकरः, ६१२ श्रेयः, ६१३ श्रीमान्, ६१४ लोकत्रयाश्रयः ॥

श्रियं ददाति भक्तानामिति श्रीदः ।

भक्तोंको श्री देते हैं, इसलिये श्रीद हैं।

श्रिय ईशः श्रीशः ।

श्रीके ईश होनेसे **श्रीश** हैं ।

श्रीमत्सु नित्यं वसतीति श्रीनिवासः । श्रीशब्देन श्रीमन्तो लक्ष्यन्ते ।

श्रीमानोंमें नित्य निवास करते हैं, इसलिये **श्रीनिवास** हैं । (यहाँ) श्री शब्दसे श्रीमान् लक्षित होते हैं ।

सर्वशक्तिमयेऽस्मिन्नखिलाः श्रियो निधीयन्त इति श्रीनिधिः ।

इन सर्वशक्तिमान् ईश्वरमें सम्पूर्ण श्रियाँ एकत्रित हैं, इसलिये ये **श्रीनिधि** हैं ।

कर्मानुरूपेण विविधाः श्रियः सर्वभूतानां विभावयतीति श्रीविभावनः ।

समस्त भूतोंको उनके कर्मानुसार विविध प्रकारकी श्रियाँ देते हैं, इसलिये **श्रीविभावन** हैं ।

सर्वभूतानां जननीं श्रियं वक्षसि वहन् श्रीधरः ।

सम्पूर्ण भूतोंकी जननी श्रीको छातीमें धारण करनेके कारण **श्रीधर** हैं ।

स्मरतां स्तुवताम् अर्चयतां च भक्तानां श्रियं करोतीति श्रीकरः ।

स्मरण, स्तवन और अर्चन करनेवाले भक्तोंको श्रीयुक्त करते हैं, इसलिये **श्रीकर** हैं ।

अनपायिसुखावाप्तिलक्षणं श्रेयः, तच्च परस्यैव रूपमिति श्रेयः ।

कभी नष्ट न होनेवाले सुखका प्राप्त होना ही श्रेय है, और वह परमात्माका ही स्वरूप है, इसलिये वे **श्रेय** हैं ।

श्रियोऽस्य सन्तीति श्रीमान् ।

भगवान्में श्रियाँ हैं, इसलिये वे **श्रीमान्** हैं ।

त्रयाणां लोकानाम् आश्रयत्वात् लोकत्रयाश्रयः ॥ ७८ ॥

तीनों लोकोंके आश्रय होनेसे **लोकत्रयाश्रय** हैं ॥ ७८ ॥

स्वक्षः स्वङ्गः शतानन्दो नन्दिर्ज्योतिर्गणेश्वरः ।
विजितात्माविधेयात्मा सत्कीर्तिश्छिन्नसंशयः ॥ ७९ ॥

६१५ स्वक्षः, ६१६ स्वङ्गः, ६१७ शतानन्दः, ६१८ नन्दिः, ६१९ ज्योतिर्गणेश्वरः।
६२० विजितात्मा, ६२१ अविधेयात्मा, ६२२ सत्कीर्तिः, ६२३ छिन्नसंशयः ॥

शोभने पुण्डरीकाभे अक्षिणी अस्येति स्वक्षः।

शोभनान्यङ्गानि अस्येति स्वङ्गः।

एक एव परमानन्द उपाधिभेदाच्छतधा भिद्यत इति शतानन्दः; 'एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति' (बृ० उ० ४। ३। ३२) **इति श्रुतेः।**

परमानन्दविग्रहो नन्दिः।

ज्योतिर्गणानामीश्वरः ज्योतिर्गणेश्वरः। 'तमेव भान्तमनुभाति सर्वम्' (क० उ० २। २। १५) **इति श्रुतेः।**
'यदादित्यगतं तेजः' (गीता १५। १२) **इत्यादिस्मृतेश्च।**

विजित आत्मा मनो येन स विजितात्मा।

न केनापि विधेय आत्मा स्वरूपमस्येति अविधेयात्मा।

भगवान्‌की अक्षि (आँखें) कमलके समान सुन्दर हैं, इसलिये वे **स्वक्ष** हैं।

उनके अङ्ग सुन्दर हैं, इसलिये वे **स्वङ्ग** हैं।

वे एक ही परमानन्दस्वरूप भगवान् उपाधि, भेदसे सैकड़ों प्रकारके हो जाते हैं, इसलिये **सतानन्द** हैं। श्रुति कहती है—**'इस आनन्दकी मात्राके ही सहारे अन्य प्राणी जीते हैं।'**

परमानन्दरूप होनेसे भगवान् **नन्दि** हैं।

ज्योतिर्गणों (नक्षत्रगणों) के ईश्वर होनेसे वे **ज्योतिर्गणेश्वर** हैं; जैसा कि श्रुति कहती है—**'उसके भासनेपर ही सब भासते हैं।'** तथा स्मृतिका भी कथन है—**'जो आदित्यमें स्थित तेज हैं'** इत्यादि।

जिन्होंने आत्मा अर्थात् मनको जीत लिया है, वे भगवान् **विजितात्मा** हैं।

भगवान्‌का आत्मा अर्थात् स्वरूप किसीके द्वारा विधिरूपसे नहीं कहा जा सकता, इसलिये वे **अविधेयात्मा** हैं।

सती अवितथा कीर्तिरस्येति सत्कीर्तिः ।

भगवान्‌की कीर्ति सती अर्थात् सत्य है, इसलिये वे **सत्कीर्ति** हैं ।

करतलामलकवत् सर्वं साक्षात् कृतवतः क्वापि संशयो नास्तीति छिन्नसंशयः ॥ ७९ ॥

हाथपर रखे हुए आँवलेके समान सबको साक्षात् देखनेवाले भगवान्‌को कोई संशय नहीं है, इसलिये वे **छिन्नसंशय** हैं ॥ ७९ ॥

उदीर्णः सर्वतश्चक्षुरनीशः शाश्वतस्थिरः ।
भूशयो भूषणो भूतिर्विशोकः शोकनाशनः ॥ ८० ॥

६२४ उदीर्णः, ६२५ सर्वतश्चक्षुः, ६२६ अनीशः, ६२७ शाश्वतस्थिरः । ६२८ भूशयः, ६२९ भूषणः, ६३० भूतिः, ६३१ विशोकः, ६३२ शोकनाशनः ॥

सर्वभूतेभ्यः समुद्रिक्तत्वात् उदीर्णः ।

सब प्राणियोंसे उत्कृष्ट होनेके कारण **उदीर्ण** हैं ।

सर्वतः सर्वं स्वचैतन्येन पश्यतीति सर्वतश्चक्षुः; 'विश्वतश्चक्षुः' (श्वे० उ० ३ । ३) इति श्रुतेः ।

अपने चैतन्यस्वरूपसे सब ओरसे सबको देखते हैं, इसलिये **सर्वतश्चक्षु** हैं । श्रुति कहती है–'**ईश्वर सब ओर नेत्रवाला है** ।'

न विद्यतेऽस्येश इति अनीशः, 'न तस्येशे कश्चन' (ना० उ० २) इति श्रुतेः ।

भगवान्‌का कोई ईश नहीं है, इसलिये वे **अनीश** हैं; जैसा कि श्रुति कहती है–'**उसका कोई ईश्वर नहीं हुआ** ।'

शश्वद् भवन्नपि न विक्रियां कदाचिदुपैति इति शाश्वतस्थिरः, इति नामैकम् ।

नित्य होनेपर भी कभी विकारको प्राप्त नहीं होते, इसलिये **शाश्वतस्थिर** हैं । यह एक नाम है ।

लङ्कां प्रति मार्गमन्वेषयन् सागरं प्रति भूमौ शेत इति भूशयः ।

लङ्काके लिये मार्ग खोजते समय समुद्रतटपर भूमिपर सोये थे, इसलिये **भूशय** हैं ।

स्वेच्छावतारैः बहुभिः भूमिं भूषयन् भूषणः ।

अपनी इच्छासे बहुत-से अवतार लेकर पृथ्वीको भूषित करनेके कारण भगवान् भूषण हैं ।

भूतिः भवनं सत्ता, विभूतिर्वा; सर्वविभूतीनां कारणत्वाद् वा भूतिः ।

भवन (होना) सत्ता या विभूतिरूप होनेसे भूति हैं । अथवा समस्त विभूतियोंके कारण होनेसे भूति हैं ।

विगतः शोकोऽस्य परमानन्दैकरूपत्वादिति विशोकः ।

परमानन्दस्वरूप होनेसे भगवान्‌का शोक विगत हो गया है, इसलिये वे विशोक हैं ।

स्मृतिमात्रेण भक्तानां शोकं नाशयतीति शोकनाशनः ॥ ८० ॥

अपने स्मरणमात्रसे भक्तोंका शोक नष्ट कर देते हैं, इसलिये शोकनाशन हैं ॥ ८० ॥

अर्चिष्मानर्चितः कुम्भो विशुद्धात्मा विशोधनः ।
अनिरुद्धोऽप्रतिरथः प्रद्युम्नोऽमितविक्रमः ॥ ८१ ॥

६३३ अर्चिष्मान्, ६३४ अर्चितः, ६३५ कुम्भः, ६३६ विशुद्धात्मा, ६३७ विशोधनः । ६३८ अनिरुद्धः, ६३९ अप्रतिरथः, ६४० प्रद्युम्नः, ६४१ अमितविक्रमः ॥

अर्चिष्मन्तो यदीयेनार्चिषा चन्द्रसूर्यादयः, स एव मुख्यः अर्चिष्मान् ।

जिनकी अर्चियों (किरणों) से सूर्य, चन्द्र आदि अर्चिष्मान् हो रहे हैं, वे भगवान् ही मुख्य अर्चिष्मान् हैं ।

सर्वलोकार्चितैर्विरिञ्च्यादिभिरप्यर्चित इति अर्चितः ।

ब्रह्मा आदि सम्पूर्ण लोकोंसे अर्चित (पूजित) हैं, इसलिये अर्चित हैं ।

कुम्भवदस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितमिति कुम्भः ।

कुम्भ (घड़े) के समान भगवान्‌में सब वस्तुएँ स्थित हैं, इसलिये वे कुम्भ हैं ।

*

गुणत्रयातीततया विशुद्धश्चासावात्मेति विशुद्धात्मा ।

तीनों गुणोंसे अतीत होनेके कारण भगवान् विशुद्ध आत्मा हैं, इसलिये वे विशुद्धात्मा हैं ।

स्मृतिमात्रेण पापानां क्षपणात् विशोधनः ।

अपने स्मरणमात्रसे पापोंका नाश कर देनेके कारण विशोधन हैं ।

चतुर्व्यूहेषु चतुर्थो व्यूहः अनिरुद्धः; न निरुद्ध्यते शत्रुभिः कदाचिदिति वा ।

[वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—इन] चार व्यूहोंमेंसे चौथा व्यूह अनिरुद्ध है । अथवा अपने शत्रुओंद्वारा कभी रोके नहीं जाते, इसलिये अनिरुद्ध हैं ।

प्रतिरथः प्रतिपक्षोऽस्य न विद्यत इति अप्रतिरथः ।

भगवान्का कोई प्रतिरथ अर्थात् प्रतिपक्ष (विरुद्ध पक्ष) नहीं है, इलिये वे अप्रतिरथ हैं ।

प्रकृष्टं द्युम्नं द्रविणमस्येति प्रद्युम्नः; चतुर्व्यूहात्मा वा ।

भगवान्का द्युम्न—धन प्रकृष्ट (श्रेष्ठ) है, इसलिये वे प्रद्युम्न हैं । अथवा चतुर्व्यूहके अन्तर्वर्ती प्रद्युम्न हैं ।

अमितोऽतुलितो विक्रमोऽस्य इति अमितविक्रमः; अहिंसितविक्रमो वा ॥ ८१ ॥

उनका विक्रम (पुरुषार्थ या डग) अपरिमित है, इसलिये वे अमितविक्रम हैं । अथवा उनका विक्रम अहिंसित-अप्रतिहत है, इसलिये वे अमितविक्रम हैं ॥ ८१ ॥

कालनेमिनिहा वीरः शौरिः शूरजनेश्वरः ।
त्रिलोकात्मा त्रिलोकेशः केशवः केशिहा हरिः ॥८२॥

६४२ कालनेमिनिहा, ६४३ वीरः, ६४४ शौरिः, ६४५ शूरजनेश्वरः । ६४६ त्रिलोकात्मा, ६४७ त्रिलोकेशः, ६४८ केशवः, ६४९ केशिहा, ६५० हरिः ॥

कालनेमिमसुरं निजघानेति कालनेमिनिहा ।

भगवान्‌ने कालनेमि नामक असुरका हनन किया था, इसलिये वे **कालनेमिनिहा** हैं ।

वीरः शूरः ।

शूर होनेके कारण **वीर** हैं ।

शूरकुलोद्भवत्वात् शौरिः ।

शूरकुलमें उत्पन्न होनेके कारण भगवान् **शौरि** हैं ।

शूरजनानां वासवादीनां शौर्यातिशयेनेष्ट इति शूरजनेश्वरः ।

अतिशय शौर्यके कारण इन्द्र आदि शूरवीरोंका भी शासन करते हैं, इसलिये **शूरजनेश्वर** हैं ।

त्रयाणां लोकानाम् अन्तर्यामितया आत्मेति, त्रयो लोका अस्मात्परमार्थतो न भिद्यन्त इति वा त्रिलोकात्मा ।

अन्तर्यामीरूपसे तीनों लोकोंके आत्मा होनेके कारण अथवा तीनों लोक वास्तवमें उनसे पृथक् नहीं हैं, इसलिये वे **त्रिलोकात्मा** हैं ।

त्रयो लोकास्तदाज्ञप्ताः स्वेषु स्वेषु कर्मसु वर्तन्त इति त्रिलोकेशः ।

भगवान्‌की आज्ञासे तीनों लोक अपने-अपने कार्योंमें लगे रहते हैं, इसलिये वे **त्रिलोकेश** हैं ।

केशसंज्ञिताः सूर्यादिसङ्क्रान्ता अंशवः, तद्वत्तया केशवः;

'अंशवो ये प्रकाशन्ते
मम ते केशसंज्ञिताः ।
सर्वज्ञाः केशवं तस्मा-
न्मामाहुर्द्विजसत्तमाः ॥'

(शान्ति० ३४१ । ४८) इति महाभारते । ब्रह्मविष्णुशिवाख्याः शक्तयः केशसंज्ञिताः; तद्वत्तया वा

सूर्यादिके अंदर व्याप्त हुई किरणें केश कहलाती हैं, उनसे युक्त होनेके कारण भगवान् **केशव** हैं। महाभारतमें कहा है—**'मेरी जो किरणें प्रकाशित होती हैं वे केश कहलाती हैं, इसलिये सर्वज्ञ द्विजश्रेष्ठ मुझे केशव कहते हैं ।'** अथवा ब्रह्मा, विष्णु और शिव नामकी शक्तियाँ केश हैं, उनसे युक्त होनेके कारण

केशवः । 'त्रयः केशिनः' इति श्रुतेः । 'मत्केशौ वसुधातले' (विष्णु० ५ । १ । ६१) इति केशशब्दः शक्तिपर्यायत्वेन प्रयुक्तः ।

'को ब्रह्मेति समाख्यात
ईशोऽहं सर्वदेहिनाम् ।
आवां तवांशसम्भूतौ
तस्मात्केशवनामवान् ॥'
(३ । ८८ । ४८)

इति हरिवंशे ।

केशिनामानमसुरं हतवानिति केशिहा ।

सहेतुकं संसारं हरतीति हरिः ॥ ८२ ॥

भगवान् केशव हैं । श्रुति कहती है—'तीन केशवाले हैं ।' तथा 'मेरे दो केश (शक्तियाँ) पृथ्वीतलमें हैं ।' इस वाक्यमें केश शब्दका शक्तिके पर्यायरूपसे प्रयोग किया गया है । हरिवंशमें [महादेवजीने] कहा है—'क ब्रह्माका नाम है और मैं समस्त देहधारियोंका ईश हूँ । हम दोनों आपके अंशसे उत्पन्न हुए हैं, इसलिये आप केशव नामवाले हैं ।'

भगवान्ने केशी नामके असुरको मारा था, इसलिये वे केशिहा हैं ।

[अविद्यारूप] कारणके सहित संसारको हर लेते हैं, इसलिये हरि हैं ॥ ८२ ॥

कामदेवः कामपालः कामी कान्तः कृतागमः ।
अनिर्देश्यवपुर्विष्णुर्वीरोऽनन्तो धनञ्जयः ॥ ८३ ॥

६५१ कामदेवः, ६५२ कामपालः, ६५३ कामी, ६५४ कान्तः, ६५५ कृतागमः । ६५६ अनिर्देश्यवपुः, ६५७ विष्णुः, ६५८ वीरः, ६५९ अनन्तः, ६६० धनञ्जयः ॥

धर्मादिपुरुषार्थचतुष्टयं वाञ्छद्भिः काम्यत इति कामः; स चासौ देवश्चेति कामदेवः ।

कामिनां कामान् पालयतीति कामपालः ।

धर्मादि पुरुषार्थचतुष्टयकी इच्छावालोंसे कामना किये जाते हैं, इसलिये काम हैं । काम भी हैं और देव भी हैं, इसलिये कामदेव हैं ।

कामियोंकी कामनाओंका पालन करते हैं, इसलिये कामपाल हैं ।

पूर्णकामस्वभावत्वात् कामी ।

अभिरूपतमं देहं वहन् कान्तः ।

द्विपरार्धान्ते कस्य ब्रह्मणोऽप्यन्तोऽस्मादिति वा कान्तः ।

कृत आगमः श्रुतिस्मृत्यादिलक्षणो येन स कृतागमः, 'श्रुतिस्मृती ममैवाज्ञे' इति भगवद्वचनात् ।

'वेदाः शास्त्राणि विज्ञान-
मेतत् सर्वं जनार्दनात् ।'
(वि० स० १३९)

इत्यत्रैव वक्ष्यति ।

इदं तदीदृशं वेति निर्देष्टुं यन्न शक्यते गुणाद्यतीतत्वात् तदेव रूपमस्येति अनिर्देश्यवपुः ।

रोदसी व्याप्य कान्तिरभ्यधिका स्थितास्येति विष्णुः;

'व्याप्य मे रोदसी पार्थ
कान्तिरभ्यधिका स्थिता ।'
'क्रमणाद्वाप्यहं पार्थ
विष्णुरित्यभिसंज्ञितः ॥'

इति महाभारते (शान्ति० ३४१ । ४२-४३)

गत्यादिमत्त्वात् वीरः, 'वी

स्वभावतः पूर्णकाम होनेसे कामी हैं ।

परम सुन्दर देह धारण करनेके कारण कान्त हैं । अथवा द्विपरार्ध (ब्रह्माके सौ वर्ष) के अन्तमें क—ब्रह्माका अन्त (लय) भी इन्हींसे होता है, इसलिये कान्त हैं ।

'श्रुति तथा स्मृति मेरी ही आज्ञाएँ हैं' इस भगवद्वचनके अनुसार जिन्होंने श्रुति, स्मृति आदि आगम (शास्त्र) रचे हैं, वे भगवान् कृतागम हैं; जैसा कि आगे चलकर कहेंगे—'वेद, शास्त्र और विज्ञान ये सब श्रीजनार्दनसे ही [प्रकट] हुए हैं ।'

गुणादिसे अतीत होनेके कारण भगवान्‌का रूप 'यह, वह अथवा ऐसा' इस प्रकार निर्दिष्ट नहीं किया जा सकता, इसलिये वे अनिर्देश्यवपु हैं ।

भगवान्‌की प्रचुर कान्ति पृथ्वी और आकाशको व्याप्त करके स्थित है, इसलिये वे विष्णु हैं । महाभारतमें कहा है—'हे पार्थ ! मेरी प्रचुर कान्ति पृथ्वी और आकाशको व्याप्त करके स्थित है' [इसलिये] 'अथवा सर्वत्र क्रमण (गमन) करनेसे मैं विष्णु कहलाता हूँ ।'

गति आदिसे युक्त होनेके कारण वीर हैं, जैसा कि धातुपाठ है—'वी

गतिव्याप्तिप्रजनकान्त्यसनखादनेषु'

इति धातुपाठात् ।

व्यापित्वान्नित्यत्वात् सर्वात्मत्वाद् देशतः कालतो वस्तुतश्चापरिच्छिन्नः अनन्तः; 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' (तै० उ० २।१) इति श्रुतेः;

'गन्धर्वाप्सरसः सिद्धाः
किन्नरोरगचारणाः ।
नान्तं गुणानां गच्छन्ति
तेनानन्तोऽयमव्ययः ॥'
(२।५।२४)

इतिविष्णुपुराणवचनाद् वा अनन्तः।

यद्दिग्विजये प्रभूतं धनमजयत्तेन धनञ्जयः अर्जुनः 'पाण्डवानां धनञ्जयः' (गीता १०।३७) इति भगवद्वचनात् ॥ ८३ ॥

धातु गति, व्याप्ति, जनन, कान्ति फेंकने और खाने अर्थमें प्रयुक्त होता है।'

व्यापी, नित्य, सर्वात्मा तथा देश, काल और वस्तुसे अपरिच्छिन्न होनेके कारण भगवान् अनन्त हैं। श्रुति कहती है—'ब्रह्म सत्य, ज्ञान और अनन्त है।' अथवा 'गन्धर्व, अप्सरा, सिद्ध, किन्नर, सर्प और चारण आदि अविनाशी भगवान्के गुणोंका अन्त नहीं पा सकते, इसलिये वे अनन्त हैं। इस विष्णुपुराणके वचनके अनुसार भगवान् अनन्त हैं।

अर्जुनने दिग्विजयके समय बहुत-सा धन जीता था, इसलिये वे धनञ्जय हैं। तथा 'पाण्डवोंमें मैं धनञ्जय हूँ' भगवान्के इस वचनानुसार [अर्जुन भगवान्की विभूति होनेसे वे स्वयं भी धनञ्जय हैं] ॥ ३८ ॥

ब्रह्मण्यो ब्रह्मकृद् ब्रह्मा ब्रह्म ब्रह्मविवर्धनः ।
ब्रह्मविद् ब्राह्मणो ब्रह्मी ब्रह्मज्ञो ब्राह्मणप्रियः ॥ ८४ ॥

६६१ ब्रह्मण्यः, ६६२ ब्रह्मकृत्, ६६३ ब्रह्मा, ६६४ ब्रह्म, ६६५ ब्रह्मविवर्धनः । ६६६ ब्रह्मवित्, ६६७ ब्राह्मणः, ६६८ ब्रह्मी, ६६९ ब्रह्मज्ञः, ६७० ब्राह्मणप्रियः ॥

'तपो वेदाश्च विप्राश्च
ज्ञानं च ब्रह्मसंज्ञितम् ।'

तेभ्यो हितत्वात् ब्रह्मण्यः ।

'तप, वेद, ब्राह्मण और ज्ञान-ये सब ब्रह्म कहलाते हैं' इनके हितकारी होनेसे भगवान् ब्रह्मण्य हैं।

तप आदीनां कर्तृत्वात् ब्रह्मकृत् ।

[ब्रह्म अर्थात्] तप आदिके करनेवाले होनेसे ब्रह्मकृत् हैं ।

ब्रह्मात्मना सर्वं सृजतीति ब्रह्मा ।

ब्रह्मारूपसे सबकी रचना करते हैं, इसलिये ब्रह्मा हैं ।

बृहत्त्वाद् बृंहणत्वाच्च सत्यादिलक्षणं ब्रह्म, 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' (तै० उ० २ । १) इति श्रुतेः;

'प्रत्यस्तमितभेदं यत्
सत्तामात्रमगोचरम् ।
वचसामात्मसंवेद्यं
तज्ज्ञानं ब्रह्मसंज्ञितम् ॥'

इति विष्णुपुराणे (६ । ७ । ५३)

बड़े तथा बढ़ानेवाले होनेसे भगवान् सत्यादि लक्षणविशिष्ट ब्रह्म हैं । श्रुति कहती है—'ब्रह्म सत्य, ज्ञान और अनन्तरूप है ।' विष्णुपुराणमें कहा है—'जो समस्त भेदोंसे रहित, सत्तामात्र, वाणीका अविषय और स्वसंवेद्य (स्वयं ही जानने योग्य) है, उस ज्ञानका नाम ब्रह्म है ।'

तप आदीनां विवर्धनात् ब्रह्मविवर्धनः ।

[ब्रह्म अर्थात्] तप आदिको बढ़ानेके कारण ब्रह्मविवर्धन हैं ।

वेदं वेदार्थं च यथावद् वेत्तीति ब्रह्मवित् ।

वेद तथा वेदके अर्थको यथावत् जानते हैं, इसलिये ब्रह्मवित् हैं ।

ब्राह्मणात्मना समस्तानां लोकानां प्रवचनं कुर्वन् वेदस्यायमिति ब्राह्मणः ।

ब्राह्मणरूपसे समस्त लोकोंके प्रति 'वेदमें यह है' ऐसा उपदेश करते हैं; इसलिये ब्राह्मण हैं ।

ब्रह्मसंज्ञितास्तच्छेषभूता अत्रेति ब्रह्मी ।

ब्रह्मके शेषभूत [तप, वेद, मन, प्राण आदि], जो ब्रह्म ही कहलाते हैं, भगवान्में ही हैं; इसलिये वे ब्रह्मी हैं ।

वेदान् स्वात्मभूतान् जानातीति ब्रह्मज्ञः ।

[ब्रह्म अर्थात्] अपने आत्मभूत वेदोंको जानते हैं, इसलिये ब्रह्मज्ञ हैं ।

ब्राह्मणानां प्रियो ब्राह्मणप्रियः, **ब्राह्मणाः प्रिया अस्येति वा ।**

'घ्नन्तं शपन्तं परुषं वदन्तं
यो ब्राह्मणं न प्रणमेद् यथार्हम् ।
स पापकृद् ब्रह्मदवाग्निदग्धो
वध्यश्च दण्ड्यश्च न चास्मदीयः ॥'

इति भगवद्वचनात् ।

'यं देवं देवकी देवी
वसुदेवादजीजनत् ।
भौमस्य ब्रह्मणो गुप्त्यै
दीप्तमग्निमिवारणिः ॥'

इति च महाभारते (शान्ति० ४७ । २९) ॥ ८४ ॥

ब्राह्मणोंके प्रिय होनेसे **ब्राह्मणप्रिय** हैं । अथवा ब्राह्मण इनके प्रिय हैं, इसलिये ब्राह्मणप्रिय हैं । जैसा कि भगवान्‌ने कहा है—**'मारते, शाप देते और कठोर भाषण करते हुए भी ब्राह्मणको जो यथायोग्य प्रणाम नहीं करता, वह ब्रह्मदावानलसे दग्ध पापी मार डालनेयोग्य और दण्डनीय है; वह मेरा जन नहीं हो सकता ।'** महाभारतमें भी कहा है—**'प्रज्वलित अग्निको जिस प्रकार अरणि प्रकट करती है, उसी प्रकार जिस देवको पृथ्वीके ब्राह्मणोंकी रक्षाके लिये देवी देवकीने वसुदेवजीसे उत्पन्न किया है'** ॥ ८४ ॥



महाक्रमो महाकर्मा महातेजा महोरगः ।
महाक्रतुर्महायज्वा महायज्ञो महाहविः ॥ ८५ ॥

६७१ महाक्रमः, ६७२ महाकर्मा, ६७३ महातेजाः, ६७४ महोरगः ।
६७५ महाक्रतुः, ६७६ महायज्वा, ६७७ महायज्ञः, ६७८ महाहविः ॥

महान्तः क्रमाः पादविक्षेपा अस्येति महाक्रमः; 'शं नो विष्णुरुरुक्रमः' (शुक्लयजु० ३६ । ९) **इति श्रुतेः ।**

भगवान्‌का क्रम अर्थात् पादविक्षेप (डग) महान् है, इसलिये वे **महाक्रम** हैं । श्रुति कहती है—**'उरुक्रम (बड़ी डगोंवाले) विष्णु हमें शान्ति दें ।'**

महत् जगदुत्पत्त्यादि कर्मास्येति महाकर्मा ।

उनके जगत्‌की उत्पत्ति आदि महान् कर्म हैं, इसलिये वे **महाकर्मा** हैं ।

यदीयेन तेजसा तेजस्विनो भास्करादयः, तत्तेजो महदस्येति महातेजाः, 'येन सूर्यस्तपति तेजसेद्धः' (तै० ब्रा० ३ । १२ । ९ । ७) इति श्रुतेः ।

'यदादित्यगतं तेजो
जगद् भासयतेऽखिलम् ।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ
तत्तेजो विद्धि मामकम् ।'
(गीता १५ । १२)

इति भगवद्वचनाच्च । क्रौर्यशौर्यादिभिर्धर्मैर्महद्भिः समलङ्कृत इति वा महातेजाः ।

महांश्चासावुरगश्चेति महोरगः, 'सर्पाणामस्मि वासुकिः' (गीता १० । २८) इति भगवद्वचनात् ।

महांश्चासौ क्रतुश्चेति महाक्रतुः, 'यथाश्वमेधः क्रतुराट्' (मनु० ११ । २६०) इति मनुवचनात्; सोऽपि स एवेति स्तुतिः ।

महांश्चासौ यज्वा चेति लोकसंग्रहार्थं यज्ञान् निर्वर्तयन् महायज्वा ।

महांश्चासौ यज्ञश्चेति महायज्ञः, 'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि' (गीता १० । २५) इति भगवद्वचनात् ।

जिनके तेजसे सूर्य आदि तेजस्वी हो रहे हैं, उन भगवान्‌का वह तेज महान् है, इसलिये वे **महातेजा** हैं । श्रुति कहती है —**'जिस तेजसे प्रज्वलित होकर सूर्य तपता है ।'** तथा भगवान्‌का वचन भी है—**'जो तेज सूर्यमें स्थित होकर सम्पूर्ण जगत्‌को प्रकाशित करता है तथा जो तेज चन्द्र और अग्निमें भी है, उसे मेरा ही जान ।'** अथवा भगवान् क्रूरता, शूरता आदि महान् गुणोंसे अलङ्कृत हैं, इसलिये महातेजा हैं ।

वे महान् उरग [अर्थात् वासुकि सर्परूप] हैं, इसलिये **महोरग** हैं । भगवान्‌का यह वचन भी है कि **'सर्पोंमें मैं वासुकि हूँ ।'**

जो महान् क्रतु (यज्ञ) है, वह **महाक्रतु** है, जैसा कि मनुजीने कहा है—**'जैसे यज्ञराज अश्वमेध ।'** वह भी वही (भगवान् ही) है, इसलिये इस नामसे उनकी स्तुति होती है ।

महान् हैं और लोकसंग्रहके लिये यज्ञानुष्ठान करनेसे यज्वा भी हैं, इसलिये **महायज्वा** हैं ।

महान् हैं और यज्ञ हैं, इसलिये **महायज्ञ** हैं; जैसा कि भगवान्‌ने कहा है—**'यज्ञोंमें मैं जपयज्ञ हूँ ।'**

महच्च तद्धविश्चेति ब्रह्मात्मनि सर्वं जगत्तदात्मतया हूयत इति महाहविः । महाक्रतुरित्यादयो बहुव्रीहयो वा ॥ ८५ ॥

महान् हैं और हवि हैं, क्योंकि ब्रह्मात्मामें ही ब्रह्मभावसे सम्पूर्ण जगत्का हवन किया जाता है, इसलिये महाहवि हैं। अथवा महाक्रतु आदि नामोंमें [महान् है क्रतु जिसका आदि प्रकारसे] बहुव्रीहि समास है ॥ ८५ ॥

स्तव्यः स्तवप्रियः स्तोत्रं स्तुतिः स्तोता रणप्रियः ।
पूर्णः पूरयिता पुण्यः पुण्यकीर्तिरनामयः ॥ ८६ ॥

६७९ स्तव्यः, ६८० स्तवप्रियः, ६८१ स्तोत्रम्, ६८२ स्तुतिः, ६८३ स्तोता, ६८४ रणप्रियः । ६८५ पूर्णः, ६८६ पूरयिता, ६८७ पुण्यः, ६८८ पुण्यकीर्तिः, ६८९ अनामयः ॥

सर्वैः स्तूयते न स्तोता कस्यचिद् इति स्तव्यः ।

सबसे स्तुति किये जाते हैं, स्वयं किसीकी स्तुति नहीं करते, इसलिये स्तव्य हैं।

अत एव स्तवप्रियः ।

और इसी कारणसे स्तवप्रिय हैं।

येन स्तूयते तत् स्तोत्रम्, गुणसंकीर्तनात्मकं तद्धरिरेवेति ।

जिससे स्तुति की जाती है, वह गुण-कीर्तन ही स्तोत्र है। वह भी श्रीहरि ही हैं।

स्तुतिः स्तवनक्रिया ।

स्तवन-क्रियाका नाम स्तुति है।

स्तोता अपि स एव ।

[सर्वरूप होनेके कारण] स्तोता (स्तुति करनेवाले) भी भगवान् स्वयं ही हैं।

प्रियो रणो यस्य यतः पञ्च महायुधानि धत्ते सततं लोकरक्षणार्थमतो रणप्रियः ।

जिन्हें रण प्रिय है और इसीलिये जो लोक-रक्षाके निमित्त पाँच आयुध* निरन्तर धारण किये रहते हैं, वे भगवान् **रणप्रिय** हैं ।

सकलैः कामैः सकलाभिः शक्तिभिश्च सम्पन्न इति पूर्णः ।

समस्त कामनाओंसे और सम्पूर्ण शक्तियोंसे सम्पन्न हैं, इसलिये भगवान् **पूर्ण** हैं ।

न केवलं पूर्ण एव; पूरयिता च सर्वेषां सम्पद्भिः ।

केवल पूर्ण ही नहीं हैं, बल्कि सम्पत्तिसे सबके पूरयिता (पूर्ण करनेवाले) भी हैं ।

स्मृतिमात्रेण कल्मषाणि क्षपयतीति पुण्यः ।

स्मरणमात्रसे पापोंका क्षय कर देते हैं, इसलिये **पुण्य** हैं ।

पुण्या कीर्तिरस्य यतः पुण्यमावहत्यस्य कीर्तिर्नृणामिति पुण्यकीर्तिः ।

भगवान्‌की कीर्ति पुण्यमयी है, क्योंकि वह मनुष्योंको पुण्य प्रदान करती है, इसलिये वे **पुण्यकीर्ति** हैं ।

आन्तरैर्बाह्यैर्व्याधिभिः कर्मजैर्न पीड्यत इति अनामयः ॥ ८६ ॥

कर्मसे उत्पन्न हुई बाह्य अथवा आन्तरिक व्याधियोंसे पीड़ित नहीं होते, इसलिये **अनामय** हैं ॥ ८६ ॥



मनोजवस्तीर्थकरो वसुरेता वसुप्रदः ।
वसुप्रदो वासुदेवो वसुर्वसुमना हविः ॥ ८७ ॥

६९० मनोजवः, ६९१ तीर्थकरः, ६९२ वसुरेताः, ६९३ वसुप्रदः । ६९४ वसुप्रदः, ६९५ वासुदेवः, ६९६ वसुः, ६९७ वसुमनाः, ६९८ हविः ॥

* पाञ्चजन्य शङ्ख, सुदर्शन चक्र, कौमोदकी गदा, शार्ङ्ग धनुष और नन्दक खड्ग—ये भगवान्‌के पाँच आयुध हैं ।

मनसो वेग इव वेगोऽस्य सर्वगतत्वात् मनोजवः ।

सर्वगत होनेके कारण भगवान्‌का मनके वेगके समान वेग है, इसलिये वे मनोजव हैं ।

चतुर्दशविद्यानां बाह्यविद्यासमयानां च प्रणेता प्रवक्ता चेति तीर्थकरः । हयग्रीवरूपेणमधुकैटभौ हत्वा विरिञ्चाय सर्गादौ सर्वाः श्रुतिरन्याश्च विद्या उपदिशन् वेदबाह्या विद्याः सुरवैरिणां वञ्चनाय चोपदिदेशेति पौराणिकाः कथयन्ति ।

[तीर्थ विद्याको कहते हैं] भगवान् चौदह विद्याओं और वेद-बाह्य विद्याओंके सिद्धान्तोंके कर्ता तथा वक्ता हैं इसलिये वे तीर्थकर हैं । पौराणिकोंका कथन है कि भगवान्‌ने सर्गके आरम्भमें हयग्रीव-रूपसे मधु और कैटभको मारकर सम्पूर्ण श्रुतियाँ और अन्य विद्याएँ ब्रह्माजीको उपदेश करके देव-शत्रुओंकी वञ्चनाके लिये वेद बाह्य-विद्याओंका भी उपदेश किया था ।

वसु सुवर्णं रेतोऽस्येति वसुरेताः,

'देवः पूर्वमपः सृष्ट्वा
तासु वीर्यमपासृजत् ।
तदण्डमभवद्धैमं
ब्रह्मणः कारणं परम् ॥'

इति व्यासवचनात् ।

वसु अर्थात् सुवर्ण भगवान्‌का रेतस् (वीर्य) है, इसलिये वसुरेता हैं । 'देवने प्रथम जलको ही रचकर उसमें वीर्य छोड़ा । वह ब्रह्मा [की उत्पत्ति] का परम कारण सुवर्णमय अण्डा हो गया ।' इस व्यासवचनके अनुसार [भगवान् वसुरेता हैं] ।

वसु धनं प्रकर्षेण ददाति साक्षाद्धनाध्यक्षोऽयम्, इतरस्तु तत्प्रसादाद्धनाध्यक्ष इति वसुप्रदः ।

भगवान् प्रकर्षसे (खुले हाथसे) वसु अर्थात् धन देते हैं, इसलिये वे वसुप्रद हैं, क्योंकि साक्षात् धनाध्यक्ष तो वे ही हैं और (कुबेरादि) तो उनकी कृपासे ही धनाध्यक्ष हैं ।

वसु प्रकृष्टं मोक्षाख्यं फलं भक्तेभ्यः प्रददातीति द्वितीयो

भक्तोंको वसु अर्थात् मोक्षरूप उत्कृष्ट फल देते हैं—ऐसा दूसरे

वसुप्रदः, 'विज्ञानमानन्दं ब्रह्म रातिर्दातुः परायणं तिष्ठमानस्य तद्विदः' (बृ० उ० ३।९।२८) इति श्रुतेः, सुरारीणां वसूनि प्रकर्षेण खण्डयन् वा वसुप्रदः ।

वसुप्रदका तात्पर्य है । श्रुति कहती है—'ब्रह्म विज्ञान और आनन्दस्वरूप है, वह धन देनेवाले [कर्मपरायण अज्ञानी] तथा ब्रह्ममें स्थित ज्ञानीका भी परायण है ।' अथवा देव-शत्रुओंके वसु (धन) का अधिकतर खण्डन करते हैं, इसलिये वसुप्रद हैं ।

वसुदेवस्यापत्यं वासुदेवः ।

वसुदेवजीके पुत्र होनेसे वासुदेव हैं ।

वसन्ति भूतानि तत्र, तेष्वय-मपि वसतीति वसुः ।

भगवान्में सब भूत बसते हैं, अथवा सब भूतोंमें भगवान् बसते हैं, इसलिये वे वसु हैं ।

अविशेषेण सर्वेषु विषयेषु वसतीति वसु, तादृशं मनोऽस्येति वसुमनाः ।

जो समस्त पदार्थोंमें सामान्य भावसे बसता है, उसे वसु कहते हैं, इस प्रकारका भगवान्का मन है, इसलिये वे वसुमना हैं ।

'ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविः' (गीता ४ । २४) इति भगवद्वचनात् हविः ॥ ८७ ॥

'ब्रह्मको अर्पण किया जाता है, ब्रह्म ही हवि है' भगवान्के इस वचनानुसार वे हवि हैं ॥ ८७ ॥



सद्गतिः सत्कृतिः सत्ता सद्भूतिः सत्परायणः ।
शूरसेनो यदुश्रेष्ठः सन्निवासः सुयामुनः ॥ ८८ ॥

६९९ सद्गतिः, ७०० सत्कृतिः, ७०१ सत्ता, ७०२ सद्भूतिः, ७०३ सत्परायणः । ७०४ शूरसेनः, ७०५ यदुश्रेष्ठः, ७०६ सन्निवासः, ७०७ सुयामुनः ॥

'अस्ति ब्रह्मेति चेद् वेद
सन्तमेनं ततो विदुः ।'
(तै० उ० २ । ६)

इति श्रुतेः, ब्रह्मास्तीति ये विदुस्ते सन्तः, तैः प्राप्यत इति सद्गतिः, सती गतिर्बुद्धिः समुत्कृष्टा अस्येति वा सद्गतिः ।

'ब्रह्म है—ऐसा यदि जानता तो [विद्वज्जन] उसे सन्त मानते हैं' इस श्रुतिके अनुसार जो ऐसा जानते हैं कि ब्रह्म है—वे सन्त हैं; उनसे प्राप्त किये जाते हैं, इसलिये भगवान् **सद्गति** हैं । अथवा उनकी गति यानी बुद्धि श्रेष्ठ है, इसलिये वे सद्गति हैं ।

सती कृतिः जगद्रक्षणलक्षणा अस्य यस्मात्तेन सत्कृतिः ।

जगत्की उत्पत्ति आदि भगवान्की कृति श्रेष्ठ है, इसलिये वे **सत्कृति** हैं ।

इति नाम्नां सप्तमं शतं विवृतम् ।

यहाँतक सहस्रनामके सातवें शतकका विवरण हुआ ।

सजातीयविजातीयस्वगतभेदरहिता अनुभूतिः सत्ता, 'एकमेवाद्वितीयम्' (छा० उ० ६ । २ । १) इति श्रुतेः ।

सजातीय, विजातीय और स्वगत-भेदसे रहित अनुभूतिका नाम **सत्ता** है । श्रुति कहती है—'एक ही अद्वितीय था ।'

सन्नेव परमात्मा चिदात्मकः अबाधाद्बहुधा भासमानत्वाच्च सद्भूतिः नान्यः; प्रतीतेर्बाध्यमानत्वाच्च न सन्नाप्यसत् । श्रौतो यौक्तिको वा बाधः प्रपञ्चस्य विवक्षितः ।

वे चिदात्मक सत्स्वरूप परमात्मा ही अबाधित तथा बहुत प्रकारसे भासित होनेके कारण **सद्भूति** हैं और कोई नहीं । प्रतीतिके बाधित होनेसे अन्य सत् या असत् कुछ भी नहीं है, यहाँ श्रुति या युक्तिसे प्रपञ्चका बाध ही विवक्षित है ।

सतां तत्त्वविदां परं प्रकृष्टमयनमिति सत्परायणम् ।

तत्त्वदर्शी सत्पुरुषोंके परम—श्रेष्ठ अयन (स्थान) हैं, इसलिये **सत्परायण** हैं ।

हनूमत्प्रमुखाः सैनिकाः शौर्यशालिनो यस्यां सेनायां सा शूरसेना यस्य स शूरसेनः ।

जिस सेनामें हनुमान् आदि शूरवीर सैनिक हैं, वह शूरसेना जिनकी है वे भगवान् **शूरसेन** हैं ।

यदूनां प्रधानत्वात् यदुश्रेष्ठः ।

यदुवंशियोंमें प्रधान होनेके कारण भगवान् **यदुश्रेष्ठ** हैं ।

सतां विदुषामाश्रयः सन्निवासः ।

सत् अर्थात् विद्वानोंके आश्रय हैं, इसलिये **सन्निवास** हैं ।

शोभना यामुना यमुनासम्बन्धिनो देवकीवसुदेवनन्दयशोदाबलभद्रसुभद्रादयः परिवेष्टारोऽस्येति सुयामुनः; गोपवेषधरा यामुनाः परिवेष्टारः पद्मासनादयः शोभना अस्येति वा सुयामुनः ॥८८॥

जिनके यामुन अर्थात् यमुना-सम्बन्धी देवकी, वसुदेव, नन्द, यशोदा, बलभद्र और सुभद्रा आदि परिवेष्टा सुन्दर हैं, वे भगवान् **सुयामुन** हैं; अथवा जिनके यमुनातटवर्ती गोपवेषधारी परिवेष्टा या पद्म एवं आसन आदि सुन्दर हैं, वे भगवान् सुयामुन हैं ॥ ८८ ॥



भूतावासो वासुदेवः सर्वासुनिलयोऽनलः ।
दर्पहा दर्पदो दृप्तो दुर्धरोऽथापराजितः ॥ ८९ ॥

७०८ भूतावासः, ७०९ वासुदेवः, ७१० सर्वासुनिलयः, ७११ अनलः । ७१२ दर्पहा, ७१३ दर्पदः, ७१४ दृप्तः, ७१५ दुर्धरः, अथ, ७१६ अपराजितः ॥

भूतान्यत्राभिमुख्येन वसन्तीति भूतावासः;

'वसन्ति त्वयि भूतानि
भूतावासस्ततो भवान् ।'
(३ । ८८ । ५३)

इति हरिवंशे ।

भगवान्में सर्वभूत मुख्यरूपसे निवास करते हैं, इसलिये वे **भूतावास** हैं । हरिवंशमें कहा है—'आपमें भूत बसते हैं, इसलिये आप भूतावास हैं ।'

जगदाच्छादयति माययेति वासुः, स एव देव इति वासुदेवः;

जगत्को मायासे आच्छादित करते हैं, इसलिये वासु हैं और वे (वासु) ही देव भी हैं, इसलिये **वासुदेव** हैं ।

'छादयामि जगद् विश्वं
भूत्वा सूर्य इवांशुभिः ।'
(महा० शान्ति० ३४१ । ४१)
इति भगवद्वचनात् ।

भगवान्‌का वचन है—'**सूर्य जैसे किरणोंसे ढँकता है, उसी प्रकार मैं सम्पूर्ण जगत्‌को अपनी विभूतिसे ढँक लेता हूँ ।**'

सर्व एवासवः प्राणा जीवात्मके यस्मिन्नाश्रये निलीयन्ते स सर्वासुनिलयः ।

सम्पूर्ण असु अर्थात् प्राण जिस जीवरूप आश्रयमें लीन हो जाते हैं, वह **सर्वासुनिलय** है ।

अलम्पर्याप्तिः शक्तिसम्पदां नास्य विद्यत इति अनलः ।

भगवान्‌की शक्ति और सम्पत्तिका अलं अर्थात् समाप्ति नहीं है, इसलिये वे **अनल** हैं ।

धर्मविरुद्धे पथि तिष्ठतां दर्पं हन्तीति दर्पहा ।

धर्मविरुद्ध मार्गमें रहनेवालोंका दर्प नष्ट करते हैं, इसलिये **दर्पहा** हैं ।

धर्मवर्त्मनि वर्तमानानां दर्पं ददातीति दर्पदः ।

धर्म-मार्गमें रहनेवालोंको दर्प अर्थात् गर्व (गौरव) देते हैं, इसलिये **दर्पद** हैं ।*

स्वात्मामृतरसास्वादनात् नित्यप्रमुदितो दृप्तः ।

अपने आत्मारूप अमृतरसका आस्वादन करनेके कारण नित्य प्रमुदित रहते हैं, इसलिये **दृप्त** हैं ।

न शक्या धारणा यस्य प्रणिधानादिषु सर्वोपाधिविनिर्मुक्तत्वात् तथापि तत्प्रसादतः; कैश्चिद् दुःखेन धार्यते हृदये जन्मान्तरसहस्रेषु भावनायोगात्; तस्माद् दुर्धरः ।

समस्त उपाधियोंसे रहित होनेके कारण जिनकी प्रणिधान आदिमें धारणा नहीं की जा सकती, फिर भी उन भगवान्‌के ही प्रसादसे कोई-कोई हजारों जन्मोंकी भावनाके योगसे उन्हें अपने हृदयमें बड़ी कठिनतासे धारण करते हैं, इसलिये वे **दुर्धर** हैं

* 'दर्पं द्यति' इस विग्रहके अनुसार दर्पका दलन करनेवाले हैं, इसलिये भी दर्पद हैं ।

'क्लेशोऽधिकतरस्तेषा-
मव्यक्तासक्तचेतसाम् ।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं
देहवद्भिरवाप्यते ॥'
(गीता १२ । ५)

इति भगवद्वचनात् ।

भगवान्ने कहा है—'अव्यक्तमें मन लगानेवालोंको अधिक क्लेश होता है, देहाभिमानी पुरुषोंको अव्यक्त गति कठिनतासे प्राप्त होती है ।'

न आन्तरैः रागादिभिर्बाह्यै-रपि दानवादिभिः शत्रुभिः पराजित इति अपराजितः ॥ ८९ ॥

रागादि आन्तरिक शत्रुओंसे और बाह्य दानवादि शत्रुओंसे पराजित नहीं होते, इसलिये **अपराजित** हैं ॥ ८९ ॥

विश्वमूर्तिर्महामूर्तिर्दीप्तमूर्तिरमूर्तिमान् ।
अनेकमूर्तिरव्यक्तः शतमूर्तिः शताननः ॥ ९० ॥

७१७ विश्वमूर्तिः, ७१८ महामूर्तिः, ७१९ दीप्तमूर्तिः, ७२० अमूर्तिमान् ।
७२१ अनेकमूर्तिः, ७२२ अव्यक्तः, ७२३ शतमूर्तिः, ७२४ शताननः ॥

विश्वं मूर्तिरस्य सर्वात्मकत्वाद् इति विश्वमूर्तिः ।

सर्वात्मक होनेके कारण विश्व भगवान्की मूर्ति है, इसलिये वे **विश्वमूर्ति** हैं ।

शेषपर्यङ्कशायिनोऽस्य महती मूर्तिरिति महामूर्तिः ।

शेषशय्यापर शयन करनेवाले भगवान्की मूर्ति महती (बड़ी) है, इसलिये वे **महामूर्ति** हैं ।

दीप्ता ज्ञानमयी मूर्तिर्यस्येति, स्वेच्छया गृहीता तैजसी मूर्ति-र्दीप्ता अस्येति वा दीप्तमूर्तिः ।

भगवान्की ज्ञानमयी मूर्ति दीप्त है, इसलिये अथवा उनकी स्वेच्छासे धारण की हुई तैजसी [हिरण्यगर्भरूप] मूर्ति दीप्तिमती है, इसलिये वे **दीप्तमूर्ति** हैं ।

कर्मनिबन्धना मूर्तिरस्य न विद्यत इति अमूर्तिमान् ।

उनकी कोई कर्मजन्य मूर्ति नहीं है, इसलिये वे **अमूर्तिमान्** हैं ।

*

अवतारेषु स्वेच्छया लोकाना-मुपकारिणीर्बह्वीर्मूर्तीर्भजत इति अनेकमूर्तिः ।

अवतारोंमें अपनी इच्छासे लोकोंका उपकार करनेवाली अनेकों मूर्तियाँ धारण करते हैं, इसलिये **अनेकमूर्ति** हैं।

यद्यप्यनेकमूर्तित्वमस्य, तथा-प्ययमीदृश एवेति न व्यज्यत इति अव्यक्तः ।

यद्यपि अनेक मूर्तिवाले हैं, तो भी ये ऐसे ही हैं—इस प्रकार व्यक्त नहीं होते, इसलिये **अव्यक्त** हैं ।

नानाविकल्पजा मूर्तयः संवि-दाकृतेः सन्तीति शतमूर्तिः ।

ज्ञानस्वरूप भगवान्‌की विकल्पजन्य अनेक मूर्तियाँ हैं इसलिये वे **शतमूर्ति** हैं ।

विश्वादिमूर्तित्वं यतोऽत एव शताननः ॥ ९० ॥

क्योंकि वे विश्व आदि मूर्तियोंवाले हैं; इसलिये **शतानन** (सैकड़ों मुख-वाले) हैं ॥ ९० ॥

एको नैकः सवः कः किं यत्तत्पदमनुत्तमम् ।
लोकबन्धुर्लोकनाथो माधवो भक्तवत्सलः ॥ ९१ ॥

७२५ एकः, ७२६ नैकः, ७२७ सवः, ७२८ कः, ७२९ किम्, ७३० यत्, ७३१ तत्, ७३२ पदमनुत्तमम् । ७३३ लोकबन्धुः, ७३४ लोकनाथः, ७३५ माधवः, ७३६ भक्तवत्सलः ॥

परमार्थतः सजातीयविजातीय-स्वगतभेदविनिर्मुक्तत्वात् एकः, 'एकमेवाद्वितीयम्' (छा० उ० ६ । २ । १) इति श्रुतेः ।

परमार्थसे सजातीय, विजातीय और स्वगत-भेदोंसे शून्य होनेके कारण परमात्मा **एक** हैं; जैसा कि श्रुति कहती है—'एक ही अद्वितीय था।'

मायया बहुरूपत्वात् नैकः, 'इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते' (बृ० उ० २ । ५ । १९) इति श्रुतेः ।

मायासे अनेक रूप होनेके कारण **नैक** हैं। श्रुति कहती है—'इन्द्र (ईश्वर) मायासे अनेक रूप प्रतीत होता है।'

सोमो यत्राभिषूयते सोऽध्वरः सवः ।

जिसमें सोम निकाला जाता है, उस यज्ञको **सव** कहते हैं ।

कशब्दः सुखवाचकः, तेन स्तूयत इति कः, 'कं ब्रह्म' (छा० उ० ४ । १० । ५) **इति श्रुतेः ।**

सर्वपुरुषार्थरूपत्वाद् ब्रह्मैव विचार्यमिति ब्रह्म किम् ।

यच्छब्देन स्वतः सिद्धवस्तूद्देशवाचिना ब्रह्म निर्दिश्यत इति ब्रह्म यत्, 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते' (तै० उ० ३ । १) **इति श्रुतेः ।**

तनोतीति ब्रह्म तत्,

'ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः ।'

(गीता १७ । २३)

इति भगवद्वचनात् ।

पद्यते गम्यते मुमुक्षुभिरिति पदम् यस्मादुत्कृष्टं नास्ति तद् अनुत्तमम् । सविशेषणमेकं नाम पदमनुत्तमम् इति ।

आधारभूतेऽस्मिन् सकला लोका बध्यन्त इति लोकानां बन्धुः लोकबन्धुः; **लोकानां जनकत्वाज्जनकोपमो बन्धुर्नास्तीति वा, लोकानां बन्धुकृत्यं**

क शब्द सुखका वाचक है, सुखरूपसे स्तुति किये जानेके कारण परमात्मा क है; जैसा कि श्रुति कहती है—**'सुखरूप ब्रह्म है ।'**

सर्व पुरुषार्थरूप होनेसे ब्रह्म ही विचार करने योग्य है, इसलिये वह **किम्** है ।

स्वतःसिद्ध वस्तुके वाचक यत् शब्दसे ब्रह्मका निर्देश होता है, इसलिये ब्रह्म **यत्** है । श्रुति कहती है—**'जिससे ये सब भूत उत्पन्न होते हैं ।'**

ब्रह्म तनन अर्थात् विस्तार करता है, इसलिये वह **तत्** है । भगवान्‌ने कहा है—**'ॐ, तत् और सत्—ये तीन नाम ब्रह्मके कहे गये हैं ।'**

मुमुक्षुओंद्वारा प्राप्त किया जाता है, इसलिये [ब्रह्म] पद है, क्योंकि उससे बढ़कर श्रेष्ठ कोई और नहीं है, इसलिये वह अनुत्तम है । इस प्रकार **पदमनुत्तमम्** यह विशेषणसहित एक नाम है ।

आधारभूत परमात्मामें सब लोक बँधे रहते हैं, इसलिये लोकोंके बन्धु होनेसे भगवान् **लोकबन्धु** हैं । अथवा लोकोंके जनक होनेके कारण लोकबन्धु हैं; क्योंकि पिताके समान कोई बन्धु नहीं होता, या बन्धुओंका कर्म

हिताहितोपदेशं श्रुतिस्मृतिलक्षणं कृतवानिति वा लोकबन्धुः ।

लोकैर्नाथ्यते याच्यते लोकानुपतपति आशास्ते लोकानामीष्टे इति वा लोकनाथः ।

मधुकुले जातत्वात् माधवः ।

भक्तस्नेहवान् भक्तवत्सलः ॥९१॥

श्रुति-स्मृतिरूप हिताहितोपदेश किया है, इसलिये लोकबन्धु हैं ।

भगवान् लोकोंसे याचना किये जाते हैं अथवा उनका नियमन, आश्वासन या शासन करते हैं, इसलिये लोकनाथ हैं ।

मधुवंशमें उत्पन्न होनेके कारण भगवान् माधव हैं ।

भक्तोंके प्रति स्नेहयुक्त होनेसे भक्तवत्सल हैं ॥ ९१ ॥



सुवर्णवर्णो हेमाङ्गो वराङ्गश्चन्दनाङ्गदी ।
वीरहा विषमः शून्यो घृताशीरचलश्चलः ॥ ९२ ॥

७३७ सुवर्णवर्णः, ७३८ हेमाङ्गः, ७३९ वराङ्गः, ७४० चन्दनाङ्गदी । ७४१ वीरहा, ७४२ विषमः, ७४३ शून्यः, ७४४ घृताशीः, ७४५ अचलः, ७४६ चलः ॥

सुवर्णस्येव वर्णोऽस्येति सुवर्णवर्णः, 'यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णम्' । (मु० उ० ३ । १ । ३) इति श्रुतेः ।

हेमेवाङ्गं वपुरस्येति हेमाङ्गः, 'य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषः' (छा० उ० १।६।६) इति श्रुतेः ।

वराणि शोभनान्यङ्गान्यस्येति वराङ्गः ।

भगवान्का वर्ण सुवर्णके समान है, इसलिये वे सुवर्णवर्ण हैं । श्रुति कहती है—'जब द्रष्टा सुवर्णके-से वर्णवालेको देखता है ।'

उनका शरीर हेम (सुवर्ण) के समान है, इसलिये वे हेमाङ्ग हैं । श्रुति कहती है-'यह जो आदित्यके भीतर सुवर्णमय पुरुष है ।'

उनके अङ्ग वर अर्थात् सुन्दर हैं, इसलिये वे वराङ्ग हैं ।

चन्दनैराह्लादनैरङ्गदैः केयूरैर्भूषित इति चन्दनाङ्गदी ।

आह्लादित करनेवाले चन्दनों और अङ्गदों अर्थात् भुजबन्धोंसे विभूषित हैं, इसलिये **चन्दनाङ्गदी** हैं ।

धर्मत्राणाय वीरान् असुरमुख्यान् हन्तीति वीरहा ।

धर्मकी रक्षाके लिये [हिरण्यकशिपु आदि] प्रमुख दैत्यवीरोंका हनन करते हैं, इसलिये **वीरहा** हैं ।

समो नास्य विद्यते सर्वविलक्षणत्वादिति विषमः, ।

'न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यः' (गीता ११ । ४३)

इति भगवद्वचनात् ।

सबसे विलक्षण होनेके कारण भगवान्‌के समान कोई नहीं है, इसलिये वे **विषम** हैं । गीतामें कहा है—**'तुम्हारे समान ही कोई नहीं है । फिर अधिक तो हो ही कहाँसे ?'**

सर्वविशेषरहितत्वात् शून्यवत् शून्यः ।

समस्त विशेषोंसे रहित होनेके कारण भगवान् शून्यके समान **शून्य** हैं ।

घृता विगलिता आशिषः प्रार्थना अस्येति घृताशीः ।

भगवान्‌की आशिष् अर्थात् प्रार्थनाएँ घृत यानी विगलित हैं, इसलिये वे **घृताशी** हैं ।

न स्वरूपान्न सामर्थ्यान्न च ज्ञानादिकाद् गुणात् चलनं विद्यतेऽस्येति अचलः ।

स्वरूपसे, सामर्थ्यसे अथवा ज्ञानादि गुणोंसे विचलित नहीं होते, इसलिये वे **अचल** हैं ।

वायुरूपेण चलतीति चलः ॥ ९२ ॥

वायुरूपसे चलते हैं, इसलिये **चल** हैं ॥ ९२ ॥

अमानी मानदो मान्यो लोकस्वामी त्रिलोकधृक् ।
सुमेधा मेधजो धन्यः सत्यमेधा धराधरः ॥ ९३ ॥

७४७ अमानी, ७४८ मानदः, ७४९ मान्यः, ७५० लोकस्वामी, ७५१ त्रिलोकधृक्। ७५२ सुमेधाः, ७५३ मेधजः, ७५४ धन्यः, ७५५ सत्यमेधाः, ७५६ धराधरः ॥

अनात्मवस्तुष्वात्माभिमानो नास्त्यस्य स्वच्छसंवेदनाकृतेरिति अमानी ।

शुद्ध ज्ञानस्वरूप भगवान्‌को अनात्म-वस्तुओंमें आत्माभिमान नहीं है, इसलिये वे **अमानी** हैं ।

स्वमायया सर्वेषामनात्मस्वात्माभिमानं ददाति, भक्तानां सत्कारं मानं ददातीति, तत्त्वविदामनात्मस्वात्माभिमानं खण्डयतीति वा मानदः ।

अपनी मायासे सबको अनात्मामें आत्माभिमान देते हैं, भक्तोंको आदर—मान देते हैं, अथवा तत्त्ववेत्ताओंके अनात्मवस्तुओंमें आत्माभिमानका खण्डन करते हैं, इसलिये **मानद** हैं ।

सर्वैर्माननीयः पूजनीयः सर्वेश्वरत्वादिति मान्यः ।

सबके ईश्वर होनेसे सबके माननीय—पूजनीय हैं; इसलिये **मान्य** हैं ।

चतुर्दशानां लोकानामीश्वरत्वात् लोकस्वामी ।

चौदहों लोकोंके स्वामी होनेसे **लोकस्वामी** हैं ।

त्रीन् लोकान् धारयतीति त्रिलोकधृक् ।

तीनों लोकोंको धारण करते हैं, इसलिये **त्रिलोकधृक्** हैं ।

शोभना मेधा प्रज्ञास्येति सुमेधाः । 'नित्यमसिच् प्रजामेधयोः' (पा० सू० ५ । ४ । १२२) **इति समासान्तोऽसिच्** ।

भगवान्‌की मेधा अर्थात् प्रज्ञा सुन्दर है, इसलिये वे **सुमेधा** हैं । **'नित्यमसिच् प्रजामेधयोः'** इस सूत्रसे यहाँ समासान्त असिच् प्रत्यय हुआ है ।

मेधेऽध्वरे जायत इति मेधजः ।

मेध अर्थात् यज्ञमें उत्पन्न (प्रकट) होते हैं, इसलिये **मेधज** हैं ।

कृतार्थो धन्यः ।

कृतार्थ होनेसे **धन्य** हैं ।

सत्या अवितथा मेधा अस्येति सत्यमेधाः ।

भगवान्‌की मेधा सत्य अर्थात् अमोघ है, इसलिये वे **सत्यमेधा** हैं ।

अंशैरशेषैः शेषाद्यैरशेषां धरां धारयन् धराधरः ॥ ९३ ॥

शेष आदि अपने सम्पूर्ण अंशोंसे समस्त पृथ्वीको धारण करते हैं, इसलिये **धराधर** हैं ॥ ९३ ॥

तेजोवृषो द्युतिधरः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
प्रग्रहो निग्रहो व्यग्रो नैकशृङ्गो गदाग्रजः ॥ ९४ ॥

७५७ तेजोवृषः, ७५८ द्युतिधरः, ७५९ सर्वशस्त्रभृतां वरः । ७६० प्रग्रहः, ७६१ निग्रहः, ७६२ व्यग्रः, ७६३ नैकशृङ्गः, ७६४ गदाग्रजः ॥

तेजसामम्भसां सर्वदा आदित्यरूपेण वर्षणात् तेजोवृषः ।

आदित्यरूपसे सदा तेज अर्थात् जलकी वर्षा करते हैं, इसलिये **तेजोवृष** हैं ।

द्युतिमङ्गगतां कान्तिं धारयन् द्युतिधरः ।

द्युति अर्थात् देहगत कान्तिको धारण करनेके कारण **द्युतिधर** हैं ।

सर्वशस्त्रभृतां श्रेष्ठः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।

समस्त शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ होनेके कारण **सर्वशस्त्रभृतां वर** हैं ।

भक्तैरुपहृतं पत्रपुष्पादिकं प्रगृह्णातीति प्रग्रहः; **धावतो विषयारण्ये दुर्दान्तेन्द्रियवाजिनः तत्प्रसादेन रश्मिनेव बध्नातीति वा प्रग्रहवत् प्रग्रहः; 'रश्मौ च'** (पा० सू० ३ । ३ । ५३)

भक्तोंद्वारा समर्पित किये हुए पत्र-पुष्पादि ग्रहण करते हैं, इसलिये **प्रग्रह** हैं । अथवा विषयरूपी वनमें दौड़ते हुए इन्द्रियरूपी दुर्दम्य घोड़ोंको रस्सीके समान अपनी कृपासे बाँध लेते हैं, इसलिये प्रग्रह (रस्सी) के सदृश प्रग्रह हैं । **'रश्मौ च'**

इति पाणिनिवचनात् प्रग्रह-शब्दस्य साधुत्वम् ।

इस पाणिनिजीके वचनानुसार प्रग्रह* शब्द सिद्ध होता है ।

स्ववशेन सर्वं निगृह्णातीति निग्रहः ।

अपने अधीन करके सबका निग्रह करते हैं, इसलिये निग्रह हैं ।

विगतमग्रमन्तो विनाशोऽस्येति व्यग्रः; भक्तानामभीष्टप्रदानेषु व्यग्र इति वा ।

उनका अग्र-अन्त यानी नाश नहीं है, इसलिये वे व्यग्र हैं । अथवा भक्तोंको इच्छित फल देनेमें लगे हुए हैं, इसलिये व्यग्र हैं ।

चतुःशृङ्गो नैकशृङ्गः

'चत्वारि शृङ्गा त्रयोऽस्य पादा
द्वे शीर्षे सप्त हस्तासोऽस्य ।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति
महादेवो मर्त्यां आविवेश ॥'
(तै० आ० १ । १० । १७)

इति मन्त्रवर्णात् ।

चतुःशृङ्ग (चार सींगवाले) होनेके कारण नैकशृङ्ग हैं । श्रुति कहती है—'जिसके चार सींग, तीन पाद, दो सिर और सात हाथ हैं, वह तीन स्थानोंमें बँधा हुआ वृषभरूप महान् देव शब्द करता है और मनुष्योंमें प्रवेश किये हुए है ।'†

निगदेन मन्त्रेणाग्रे जायत इति निशब्दलोपं कृत्वा गदाग्रजः; यद्वा गदो नाम श्रीवासुदेवावरजः; तस्मादग्रे जायत इति गदाग्रजः ॥ ९४ ॥

निगद अर्थात् मन्त्रसे पहले ही प्रकट होते हैं, इसलिये नि शब्दका लोप करके गदाग्रज कहलाते हैं । अथवा गद श्रीवासुदेवजीके छोटे भाईका नाम है, उससे पहले उत्पन्न होनेके कारण गदाग्रज हैं ॥ ९४ ॥



* 'रश्मौ च' इस सूत्रसे रश्मि (रस्सी तथा किरण) अर्थमें प्रपूर्वक ग्रह धातुसे वैकल्पिक घञ् प्रत्यय होता है तो प्रग्राह रूप बनता है; और घञ्के अभावमें 'ग्रहवृदृनिश्चिगमश्च' (३ । ३ । ५८) सूत्रसे अप् प्रत्यय करके प्रग्रह बनता है ।

† व्याकरण महाभाष्यके प्रथम आह्निकमें शब्दानुशासनका प्रयोजन बतलाते हुए महर्षि पतञ्जलिजीने इस श्रुतिको शब्दब्रह्मकी प्रतिपादिका माना है; सो इस प्रकार

चतुर्मूर्तिश्चतुर्बाहुश्चतुर्व्यूहश्चतुर्गतिः ।
चतुरात्मा चतुर्भावश्चतुर्वेदविदेकपात् ॥ ९५ ॥

७६५ चतुर्मूर्तिः, ७६६ चतुर्बाहुः, ७६७ चतुर्व्यूहः, ७६८ चतुर्गतिः । ७६९ चतुरात्मा, ७७० चतुर्भावः, ७७१ चतुर्वेदवित्, ७७२ एकपात् ॥

चतस्रो मूर्तयो विराट्सूत्राव्याकृततुरीयात्मानोऽस्येति चतुर्मूर्तिः; सिता रक्ता पीता कृष्णा चेति चतस्रो मूर्तयोऽस्येति वा ।

विराट्, सूत्रात्मा, अव्याकृत और तुरीयरूप भगवान्‌की चार मूर्तियाँ हैं, इसलिये वे **चतुर्मूर्ति** हैं । अथवा उनकी श्वेत, रक्त, पीत और कृष्ण—ये चार [सगुण] मूर्तियाँ हैं, इसलिये चतुर्मूर्ति हैं ।

चत्वारो बाहवोऽस्येति चतुर्बाहुः, इति नाम वासुदेवे रूढम् ।

भगवान्‌की चार भुजाएँ हैं, इसलिये वे **चतुर्बाहु** हैं । यह नाम श्रीवासुदेवमें रूढ है ।

'शरीरपुरुषश्छन्दःपुरुषो वेदपुरुषो महापुरुषः' (ऐ० आ० ३ । ४ । २) इति बह्वृचोपनिषदुक्ताश्चत्वारः पुरुषा व्यूहा अस्येति चतुर्व्यूहः ।

बह्वृचोपनिषद्‌में कहे हुए **'शरीर-पुरुष, छन्दःपुरुष, वेदपुरुष और महापुरुष'**—ये चार पुरुष भगवान्‌के व्यूह हैं, इसलिये वे **चतुर्व्यूह** हैं ।*

आश्रमाणां वर्णानां चतुर्णां यथोक्तकारिणां गतिः चतुर्गतिः ।

विधिके अनुसार चलनेवाले चार आश्रम और चार वर्णोंकी गति हैं, इसलिये भगवान् **चतुर्गति** हैं ।

है—इस [वृषभरूपी शब्द-ब्रह्म] के चार सींग (नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात) हैं, तीन पैर (भूत, भविष्यत् तथा वर्तमान काल) हैं, (नित्य और कार्यरूप शब्द ही) दो सिर तथा (सातों विभक्तिरूप) सात हाथ हैं । यह (हृदय, कण्ठ और सिररूप) तीन स्थानोंमें बँधा हुआ (कामनाओंका वर्षण करनेवाला) वृषभरूपी महान् देव शब्द करता है और मनुष्योंमें प्रवेश किये हुए है ।

* वैष्णव-सम्प्रदायोंमें वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—ये चार भगवान्‌के व्यूह माने गये हैं, इसलिये भी भगवान् चतुर्व्यूह हैं ।

रागद्वेषादिरहितत्वात् चतुर आत्मा मनोऽस्येति, मनोबुद्ध्यहङ्कारचित्ताख्यान्तःकरणचतुष्टयात्मकत्वाद् वा चतुरात्मा ।

धर्मार्थकाममोक्षाख्यपुरुषार्थचतुष्टयं भवत्युत्पद्यते अस्मादिति चतुर्भावः ।

यथावद् वेत्ति चतुर्णां वेदानामर्थमिति चतुर्वेदवित् ।

एकः पादोऽस्येति एकपात्; 'पादोऽस्य विश्वा भूतानि' (पु० सू० ३) इति श्रुतेः ।

'विष्टभ्याहमिदं कृत्स्न-
मेकांशेन स्थितो जगत् ॥'
(गीता १० । ४२)

इति भगवद्वचनाच्च ॥ ९५ ॥

राग-द्वेषादिसे रहित होनेके कारण भगवान्‌का आत्मा—मन चतुर है, इसलिये अथवा मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त नामक चार अन्तःकरणोंसे युक्त हैं, इसलिये भगवान् **चतुरात्मा** हैं ।

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चार पुरुषार्थ भगवान्‌से प्रकट होते अर्थात् उत्पन्न होते हैं, इसलिये वे **चतुर्भाव** हैं ।

चारों वेदोंके अर्थको ठीक-ठीक जानते हैं, इसलिये परमात्मा **चतुर्वेदवित्** हैं ।

भगवान्‌का एक ही पाद [विश्वरूपसे स्थित] है, इसलिये वे **एकपात** हैं । श्रुति कहती है—'सम्पूर्ण भूत इसके एक पाद हैं ।' भगवान्‌का भी वचन है '**मैं अपने एक ही अंशसे इस सम्पूर्ण जगत्‌को व्याप्त करके स्थित हूँ**' ॥ ९५ ॥

समावर्तोऽनिवृत्तात्मा दुर्जयो दुरतिक्रमः ।
दुर्लभो दुर्गमो दुर्गो दुरावासो दुरारिहा ॥ ९६ ॥

७७३ समावर्तः, ७७४ अनिवृत्तात्मा, [निवृत्तात्मा], ७७५ दुर्जयः, ७७६ दुरतिक्रमः । ७७७ दुर्लभः, ७७८ दुर्गमः, ७७९ दुर्गः, ७८० दुरावासः, ७८१ दुरारिहा ।

संसारचक्रस्य सम्यगावर्तक इति समावर्तः ।

संसार-चक्रको भली प्रकार घुमानेवाले हैं, इसलिये **समावर्त** हैं ।

सर्वत्र वर्तमानत्वात् न निवृत्त आत्मा कुतोऽपीति अनिवृत्तात्मा निवृत्त आत्मा मनो विषयेभ्योऽस्येति वा निवृत्तात्मा ।

सर्वत्र वर्तमान होनेके कारण भगवान्‌का आत्मा (शरीर) कहींसे भी निवृत्त नहीं है, इसलिये वे **अनिवृत्तात्मा** हैं, अथवा उनका आत्मा यानी मन विषयोंसे निवृत्त है, इसलिये वे निवृत्तात्मा हैं ।

जेतुं न शक्यत इति दुर्जयः ।

किसीसे जीते नहीं जा सकते, इसलिये **दुर्जय** हैं ।

भयहेतुत्वादस्याज्ञां सूर्यादयो नातिक्रामन्तीति दुरतिक्रमः,

'भयादस्याग्निस्तपति
भयात्तपति सूर्यः ।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च
मृत्युर्धावति पञ्चमः ॥'
(क० उ० २ । ३ । ३)

इति मन्त्रवर्णात्, 'महद्भयं वज्रमुद्यतम्' (क० उ० २ । ३ । २) इति च ।

भयके हेतु होनेसे सूर्य आदि भी उनकी आज्ञाका अतिक्रमण (उल्लङ्घन) नहीं करते, इसलिये वे **दुरतिक्रम** हैं, जैसा कि मन्त्रवर्ण कहता है—'इस (ईश्वर) के भयसे अग्नि तपता है, सूर्य प्रकाशित होता है और इसीके भयसे इन्द्र, वायु और पाँचवाँ मृत्यु दौड़ता है ।' तथा [दूसरा मन्त्र कहता है—] 'महान् भयरूप वज्र उद्यत है ।'

दुर्लभया भक्त्या लभ्यत्वात् दुर्लभः,

'जन्मान्तरसहस्रेषु
तपोज्ञानसमाधिभिः ।
नराणां क्षीणपापानां
कृष्णे भक्तिः प्रजायते ॥'

दुर्लभ भक्तिसे प्राप्तव्य होनेके कारण भगवान् **दुर्लभ** हैं । व्यासजीका कथन है—'हजारों जन्मोंमें किये हुए तप, ज्ञान और समाधिसे जिन मनुष्योंके पाप क्षीण हो जाते हैं, उन्हींकी श्रीकृष्णमें भक्ति होती है ।'

इति व्यासवचनात् 'भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया' (गीता ८ । २२) इति भगवद्वचनाच्च ।

भगवान्‌ने भी कहा है—**'मैं अनन्य-भक्तिसे ही प्राप्त हो सकता हूँ ।'**

दुःखेन गम्यते ज्ञायत इति दुर्गमः ।

दुःख (कठिनता) से गम्य होते अर्थात् जाने जाते हैं, इसलिये **दुर्गम** हैं ।

अन्तरायप्रतिहतैर्दुःखादवाप्यत इति दुर्गः ।

नाना प्रकारके विघ्नोंसे प्रतिहत (आहत) हुए पुरुषोंद्वारा कठिनतासे प्राप्त किये जाते हैं, इसलिये **दुर्ग** हैं ।

दुःखेनावास्यते चित्ते योगिभिः समाधाविति दुरावासः ।

समाधिमें योगिजन बड़ी कठिनतासे चित्तमें भगवान्‌को बसा पाते हैं, इसलिये वे **दुरावास** हैं ।

दुरारिणो दानवादयस्तान् हन्तीति दुरारिहा ॥ ९६ ॥

दानवादि दुरारियों अर्थात् दुष्ट मार्गमें चलनेवालोंको मारते हैं, इसलिये **दुरारिहा** हैं ॥ ९६ ॥



शुभाङ्गो लोकसारङ्गः सुतन्तुस्तन्तुवर्धनः ।
इन्द्रकर्मा महाकर्मा कृतकर्मा कृतागमः ॥ ९७ ॥

७८२ शुभाङ्गः, ७८३ लोकसारङ्गः, ७८४ सुतन्तुः, ७८५ तन्तुवर्धनः ।
७८६ इन्द्रकर्मा, ७८७ महाकर्मा, ७८८ कृतकर्मा, ७८९ कृतागमः ॥

शोभनैरङ्गैर्ध्येयत्वात् शुभाङ्गः ।

सुन्दर अङ्गोंसे ध्यान किये जानेके कारण **शुभाङ्ग** हैं ।

लोकानां सारं सारङ्गवद् भृङ्गवद् गृह्णातीति लोकसारङ्गः, 'प्रजापतिर्लोकानभ्यतपत्' इति श्रुतेः;

लोकोंका जो सार है, उसे सारङ्ग अर्थात् भ्रमरके समान ग्रहण करते हैं, इसलिये **लोकसारङ्ग** हैं । श्रुति कहती है—**'प्रजापतिने लोकोंको तपाया [अर्थात् लोकोंका सार निकाला] ।'**

लोकसारः प्रणवः, तेन प्रतिपत्तव्य इति वा; पृषोदरादित्वात् साधुत्वम् ।

शोभनस्तन्तुर्विस्तीर्णः प्रपञ्चोऽस्येति सुतन्तुः ।

तमेव तन्तुं वर्धयति छेदयतीति वा तन्तुवर्धनः ।

इन्द्रस्य कर्मेव कर्मास्येति इन्द्रकर्मा, ऐश्वर्यकर्मेत्यर्थः ।

महान्ति वियदादीनि भूतानि कर्माणि कार्याण्यस्येति महाकर्मा ।

कृतमेव सर्वं कृतार्थत्वात्, न कर्तव्यं किञ्चिदपि कर्मास्य विद्यत इति कृतकर्मा; धर्मात्मकं कर्म कृतवानिति वा ।

कृतो वेदात्मक आगमो येनेति कृतागमः 'अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद् यदृग्वेदः' (बृ० उ० २ । ४ । १०) इत्यादिश्रुतेः ॥ ९७ ॥

अथवा प्रणव लोकसार है, उससे जानने योग्य होनेके कारण लोकसारङ्ग हैं । पृषोदरादिगणमें होनेसे [लोकसारगम्यके स्थानमें लोकसारङ्ग] सिद्ध होता है ।

भगवान्‌का तन्तु—यह विस्तृत जगत् सुन्दर है, इसलिये वे **सुतन्तु** हैं ।

उसी तन्तुको बढ़ाते या काटते हैं, इसलिये भगवान् **तन्तुवर्धन** हैं ।

इन्द्रके कर्मके समान ही भगवान्‌का कर्म है, इसलिये वे **इन्द्रकर्मा** अर्थात् ऐश्वर्यकर्मा हैं ।

भगवान्‌के कर्म अर्थात् कार्य आकाशादि पञ्चभूत महान् हैं, इसलिये वे **महाकर्मा** हैं ।

कृतार्थ होनेके कारण भगवान्‌का सब कुछ किया हुआ ही है, उन्हें कोई कर्म करना नहीं है, इसलिये वे **कृतकर्मा** हैं । अथवा उन्होंने धर्मरूप कर्म किया है, इसलिये वे कृतकर्मा हैं ।

उन्होंने वेदरूप आगम बनाया है, इसलिये वे **कृतागम** हैं । श्रुति कहती है—'**इस महाभूतका निःश्वास ही ऋग्वेद है**' ॥ ९७ ॥

उद्भवः सुन्दरः सुन्दो रत्ननाभः सुलोचनः ।
अर्को वाजसनः श‍ृङ्गी जयन्तः सर्वविज्जयी ॥ ९८ ॥

७९० उद्भवः, ७९१ सुन्दरः, ७९२ सुन्दः, ७९३ रत्ननाभः, ७९४ सुलोचनः।
७९५ अर्कः, ७९६ वाजसनः, ७९७ शृङ्गी, ७९८ जयन्तः, ७९९ सर्वविज्जयी॥

उत्कृष्टं भवं जन्म स्वेच्छया भजति इति, उद्गतमपगतं जन्मास्य सर्वकारणत्वादिति वा उद्भवः।

भगवान् अपनी इच्छासे उत्कृष्ट भव अर्थात् जन्म धारण करते हैं, इसलिये अथवा सबके कारण होनेसे उनका जन्म नहीं है, इसलिये **उद्भव** हैं।

विश्वातिशायिसौभाग्यशालित्वात् सुन्दरः।

विश्वसे बढ़कर सौभाग्यशाली होनेके कारण **सुन्दर** हैं।

सुष्ठु उनत्तीति सुन्दः, उन्दी क्लेदने इति धातोः पचाद्यच्; आर्द्रीभावस्य वाचकः करुणाकर इत्यर्थः; पृषोदरादित्वात् पररूपत्वम्।

शुभ उन्दन (आर्द्रभाव) करते हैं, इसलिये **सुन्द** हैं। यहाँ **'उन्दी क्लेदने (उन्द् धातु क्लेदन अर्थमें होता है)** इस धातुसे पचादिसम्बन्धी अच् प्रत्यय हुआ है; यह आर्द्रभावका वाचक है। इसका भाव करुणाकर है। 'पृषोदरादिगण'में होनेसे सुके उकारका पररूप [अर्थात् उत्तरवर्ती वर्णके समानरूप] हो गया है।

रत्नशब्देन शोभा लक्ष्यते; रत्नवत् सुन्दरा नाभिरस्येति रत्ननाभः।

रत्न शब्दसे शोभा लक्षित होती है। भगवान्की नाभि रत्नके समान सुन्दर है, इसलिये वे **रत्ननाभ** हैं।

शोभनं लोचनं नयनं ज्ञानं वा अस्येति सुलोचनः।

भगवान्के लोचन—नेत्र अथवा ज्ञान सुन्दर हैं, इसलिये वे **सुलोचन** हैं।

ब्रह्मादिभिः पूज्यतमैरपि अर्चनीयत्वात् अर्कः।

ब्रह्मा आदि पूज्यतमोंके भी पूजनीय होनेसे **अर्क** हैं।

वाजमन्नमर्थिनां सनोति ददातीति वाजसनः ।

प्रलयाम्भसि शृङ्गवन्मत्स्यविशेषरूपः शृङ्गी; मत्वर्थीयोऽतिशायने इनिप्रत्ययः ।

अरीन् अतिशयेन जयति जयहेतुर्वा जयन्तः ।

सर्वविषयं ज्ञानमस्येति सर्ववित्; आभ्यन्तरान् रागादीन् बाह्यान् हिरण्याक्षादींश्च दुर्जयान् जेतुं शीलमस्येति जयी; तच्छीलाधिकारे 'जिदक्षि' (पा० सू० ३ । २ । १५७) इत्यादि पाणिनीयवचनादिनिप्रत्ययः; सर्वविच्चासौ जयी चेति सर्वविज्जयी इत्येकं नाम ॥ ९८ ॥

याचकोंको वाज अर्थात् अन्न देते हैं, इसलिये वाजसन हैं ।

प्रलय-समुद्रमें सींगवाले मत्स्य-विशेषका रूप धारण करनेसे शृङ्गी हैं । यहाँ अतिशय अर्थमें मत्वर्थीय इनिप्रत्यय हुआ है ।

शत्रुओंको अतिशयसे जीतते हैं, अथवा उनको जीतनेके हेतु हैं, इसलिये जयन्त हैं ।

भगवान्‌को सब विषयोंका ज्ञान है, इसलिये वे सर्ववित् हैं । तथा उन्हें रागादि आन्तरिक और हिरण्याक्षादि बाह्य दुर्जय शत्रुओंको जीतनेका स्वभाव है, इसलिये वे जयी हैं **'जिदक्षि'*** इत्यादि पाणिनीय वचनसे यहाँ इनि-प्रत्यय हुआ है । इस प्रकार सर्ववित् हैं और जयी हैं, इसलिये सर्वविज्जयी हैं—यह एक नाम है ॥ ९८ ॥

सुवर्णबिन्दुरक्षोभ्यः सर्ववागीश्वरेश्वरः ।
महाह्रदो महागर्तो महाभूतो महानिधिः ॥ ९९ ॥

८०० सुवर्णबिन्दुः, ८०१ अक्षोभ्यः, ८०२ सर्ववागीश्वरेश्वरः ।
८०३ महाह्रदः, ८०४ महागर्तः, ८०५ महाभूतः, ८०६ महानिधिः ॥

* इस सूत्रमें 'प्रजोरिनिः' (३ । २ । १५६) सूत्रसे इनिप्रत्ययकी अनुवृत्ति होती है ।

बिन्दवोऽवयवाः सुवर्णसदृशा अस्येति सुवर्णबिन्दुः, 'आप्रणखात् सर्व एव सुवर्णः' (छा० उ० १ । ६ । ६) इति श्रुतेः; शोभनो वर्णोऽक्षरं बिन्दुश्च यस्मिन्मन्त्रे तन्मन्त्रात्मा वा सुवर्णबिन्दुः ।

भगवान्के बिन्दु अर्थात् अवयव सुवर्णके समान हैं, इसलिये वे **सुवर्णबिन्दु** हैं । श्रुति कहती है---'**नखसे लेकर [शिखातक] सब सुवर्ण ही है ।**' अथवा जिसमें सुन्दर वर्ण यानी अक्षर और बिन्दु हैं वह मन्त्ररूप (ओंकार) ही सुवर्णबिन्दु है ।

इति नाम्नामष्टमं शतं विवृतम् ।

यहाँतक सहस्रनामके आठवें शतकका विवरण हुआ ।

रागद्वेषादिभिः शब्दादिविषयैश्च त्रिदशारिभिश्च न क्षोभ्यत इति अक्षोभ्यः ।

राग-द्वेषादिसे शब्दादि विषयों और देवशत्रुओंसे क्षोभित नहीं होते, इसलिये **अक्षोभ्य** हैं ।

सर्वेषां वागीश्वराणां ब्रह्मादीनामपीश्वरः सर्ववागीश्वरेश्वरः ।

ब्रह्मादि समस्त वागीश्वरोंके भी ईश्वर हैं, इसलिये **सर्ववागीश्वरेश्वर हैं** ।

अवगाह्य तदानन्दं विश्रम्य सुखमासते योगिन इति महाह्रद इव महाह्रदः ।

उन आनन्दरूप परमात्मामें गोता लगाकर योगिजन विश्रान्त होकर सुखसे बैठते हैं, इसलिये वे एक महाह्रद (बड़े सरोवर) के समान **महाह्रद** कहलाते हैं ।

गर्तवदस्य माया महती दुरत्ययेति महागर्तः, 'मम माया दुरत्यया' (गीता ७ । १४) इति भगवद्वचनात्; यद्वा, गर्तशब्दो रथपर्यायो नैरुक्तैरुक्तः; तस्मान्महारथो महागर्तः; महारथत्वमस्य प्रसिद्धं भारतादिषु ।

भगवान्की माया गर्त (गड्ढे) के समान अति दुस्तर है, इसलिये वे **महागर्त** हैं । भगवान्ने कहा है-'**मेरी माया दुस्तर है**' अथवा निरुक्तके विद्वान् कहते हैं कि गर्त शब्द रथका पर्याय है । अतः महारथी होनेके कारण महागर्त हैं । महाभारतादिमें भगवान्का महारथी होना प्रसिद्ध ही है ।

कालत्रयानवच्छिन्नस्वरूपत्वात् महाभूतः ।

तीनों कालसे अनवच्छिन्न (विभाग-रहित) स्वरूप होनेके कारण परमात्मा महाभूत हैं ।

सर्वभूतानि अस्मिन्निधीयन्त इति निधिः महांश्चासौ निधिश्चेति महानिधिः ॥ ९९ ॥

जिनमें समस्त भूत रहते हैं, अतः जो महान् और निधि भी हैं, वे भगवान् **महानिधि** हैं ॥ ९९ ॥

कुमुदः कुन्दरः कुन्दः पर्जन्यः पावनोऽनिलः ।
अमृताशोऽमृतवपुः सर्वज्ञः सर्वतोमुखः ॥१००॥

८०७ कुमुदः, ८०८ कुन्दरः, ८०९ कुन्दः, ८१० पर्जन्यः, ८११ पावनः, ८१२ अनिलः । ८१३ अमृताशः, ८१४ अमृतवपुः, ८१५ सर्वज्ञः, ८१६ सर्वतोमुखः ॥

कुं धरणिं भारावतरणं कुर्वन् मोदयतीति कुमुदः । **मुदिरत्रान्तर्भावितणिजर्थः ।**

कु अर्थात् पृथ्वीको उसका भार उतारते हुए मोदित करते हैं, इसलिये कुमुद हैं । यहाँ मुद् धातुमें णिच् प्रत्ययके अर्थका अन्तर्भाव है ।

कुन्दपुष्पतुल्यानि शुद्धानि फलानि राति ददाति, लात्यादत्ते इति वा कुन्दरः, **रलयोर्वृत्त्येकत्वसरणात्;**

'कुं धरां दारयामास
हिरण्याक्षजिघांसया ।
वाराहं रूपमास्थाय'

इति वा कुन्दरः ।

कुन्द पुष्पके समान शुद्ध फल देते हैं अथवा उन्हें लेते—ग्रहण करते हैं, इसलिये **कुन्दर** हैं । क्योंकि र और ल की एक ही वृत्ति मानी गयी है ।* अथवा **'हिरण्याक्षको मारनेकी इच्छासे भगवान्‌ने वराहरूप धारण कर कु—पृथ्वीको विदीर्ण किया था'** इसलिये वे कुन्दर हैं ।

---

* इसलिये 'कुन्दर' शब्दका 'कुन्दं राति' (कुन्द देते हैं) और 'कुन्दं लाति' (कुन्द लेते हैं) इस प्रकार दो तरहसे विग्रह किया गया है ।

*

कुन्दोपमसुन्दराङ्गत्वात् स्वच्छतया स्फटिकनिर्मलः कुन्दः; कुं पृथ्वीं कश्यपायादादिति वा कुन्दः;

'सर्वपापविशुद्ध्यर्थं
वाजिमेधेन चेष्टवान् ।
तस्मिन्यज्ञे महादाने
दक्षिणां भृगुनन्दनः ॥
मारीचाय ददौ प्रीतः
कश्यपाय वसुन्धराम् ।'

इति हरिवंशे; (१।४१।१६, १७) कुं पृथ्वीं द्यति खण्डयतीति वा कुन्दः। कुशब्देन पृथ्वीश्वरा लक्ष्यन्ते;

'निःक्षत्रियां यश्च चकार मेदिनी-
मनेकशो बाहुवनं तथाच्छिनत् ।
यः कार्तवीर्यस्य स भार्गवोत्तमो
ममास्तु माङ्गल्यविवृद्धये हरिः ॥'

इति विष्णुधर्मे ।

कुन्दके समान सुन्दर अङ्गवाले होनेसे भगवान् स्वच्छ, स्फटिकमणिके समान निर्मल हैं, इसलिये वे कुन्द हैं, अथवा कश्यपजीको कु—पृथ्वी दी थी, इसलिये कुन्द हैं। हरिवंशमें कहा है—'भृगुनन्दन परशुरामजीने समस्त पापोंकी निवृत्तिके लिये अश्वमेध-यज्ञ किया और उस महादानवाले यज्ञमें दक्षिणारूपसे उन्होंने मरीचिनन्दन कश्यपजीको प्रसन्नतापूर्वक सम्पूर्ण पृथ्वी दे दी।' अथवा कु—पृथ्वी [पति] का दलन—खण्डन करते हैं, इसलिये कुन्द हैं। यहाँ कु शब्दसे पृथ्वीपति लक्षित होते हैं। विष्णुधर्ममें कहा है—'जिन्होंने कई बार पृथ्वीको क्षत्रियशून्य कर दिया और कार्तवीर्यकी भुजारूप वनका छेदन किया, वे भृगुश्रेष्ठ परशुरामरूप भगवान् हरि मेरे मङ्गलकी वृद्धि करनेवाले हों।'

पर्जन्यवदाध्यात्मिकादितापत्रयं शमयति, सर्वान् कामानभिवर्षतीति वा पर्जन्यः।

पर्जन्य (मेघ) के समान आध्यात्मिकादि तीनों तापोंको शान्त करते हैं अथवा सम्पूर्ण कामनाओंकी वर्षा करते हैं, इसलिये पर्जन्य हैं।

स्मृतिमात्रेण पुनातीति पावनः।

स्मरणमात्रसे पवित्र कर देते हैं, इसलिये पावन हैं।

इलति प्रेरणं करोतीति इलः, तद्रहितत्वात् अनिलः; इलति स्वपिति

जो इलन अर्थात् प्रेरणा करता है उसे इल कहते हैं, उस (इल) से रहित होनेके कारण भगवान् अनिल हैं।

इत्यज्ञ इलः तद्विपरीतो नित्यप्रबुद्धस्वरूपत्वादिति वा; अथवा निलतेर्गहनार्थात् कप्रत्ययान्ताद्रूपम्; अगहनः अनिलः; भक्तेभ्यः सुलभ इति ।

स्वात्मामृतमश्नातीति अमृताशः; **मथितममृतं सुरान् पाययित्वा स्वयं चाश्नातीति वा अमृताशः; अमृता अनश्वरफलत्वादाशा वाञ्छा अस्येति वा ।**

मृतं मरणम्, तद्रहितं वपुरस्येति अमृतवपुः ।

सर्वं जानातीति सर्वज्ञः । 'यः सर्वज्ञः सर्ववित्' (मु० उ० १ । १ । ९) **इति श्रुतेः ।**

सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्' (गीता १३ । १३) **इति भगवद्वचनात्** सर्वतोमुखः ॥ १०० ॥

इलन अर्थात् शयन करता है, अतः इल अज्ञको कहते हैं, भगवान् नित्य प्रबुद्धरूप होनेसे उसके विपरीत हैं, इसलिये वे अनिल हैं । अथवा गहन अर्थके वाचक निल धातुके अन्तमें कप्रत्यय होनेपर 'निल' रूप बनता है; भगवान् गहन (निल) नहीं हैं, इसलिये अनिल हैं । अर्थात् भक्तोंके लिये सुलभ हैं ।

स्वात्मानन्दरूप अमृतका भोग करनेसे भगवान् **अमृताश** हैं अथवा उन्होंने समुद्रसे मथकर निकाला हुआ अमृत देवताओंको पिलाकर स्वयं पिया, इसलिये वे अमृताश हैं या भगवान्की आशा अर्थात् इच्छा अविनाशी फलयुक्त होनेके कारण अमृता अर्थात् अविनाशिनी है, इसलिये भी वे अमृताश हैं ।

मृत मरणको कहते हैं, भगवान्का शरीर मरणसे रहित है, इसलिये वे **अमृतवपु** हैं ।

सब कुछ जानते हैं, इसलिये सर्वज्ञ हैं । श्रुति कहती है—'जो सर्वज्ञ और सर्ववित् है ।'

'सब ओर नेत्र, सिर और मुखवाले हैं' भगवान्के इस वचनानुसार भगवान् **सर्वतोमुख** हैं ॥ १०० ॥

सुलभः सुव्रतः सिद्धः शत्रुजिच्छत्रुतापनः ।
न्यग्रोधोदुम्बरोऽश्वत्थश्चाणूरान्ध्रनिषूदनः ॥१०१॥

८१७ सुलभः, ८१८ सुव्रतः, ८१९ सिद्धः, ८२० शत्रुजित्, ८२१ शत्रुतापनः । ८२२ न्यग्रोधः, ८२३ उदुम्बरः, ८२४ अश्वत्थः, ८२५ चाणूरान्ध्रनिषूदनः ॥

पत्रपुष्पफलादिभिर्भक्तिमात्रसमर्पितैः सुखेन लभ्यत इति सुलभः ।

'पत्रेषु पुष्पेषु फलेषु तोये-
ष्वक्रीतलभ्येषु सदैव सत्सु ।
भक्त्येकलभ्ये पुरुषे पुराणे
मुक्त्यै कथं न क्रियते प्रयत्नः ॥*

इति महाभारते ।

केवल भक्तिसे समर्पण किये पत्र-पुष्प आदिसे भी सुखपूर्वक मिल जाते हैं, इसलिये भगवान् **सुलभ** हैं । महाभारतमें कहा है-**'एकमात्र भक्तिहीसे प्राप्त होनेवाले पुराणपुरुषकी उपलब्धिमें उपयोगी बिना मोल ही मिलनेवाले पत्र, पुष्प, फल और जल आदिके सदा रहते हुए भी मुक्तिके लिये प्रयत्न क्यों नहीं किया जाता ?'**

शोभनं व्रतयति भुङ्क्ते भोजनान्निवर्तत इति वा सुव्रतः ।

भगवान् सुन्दर व्रत करते अर्थात् अच्छा भोजन करते हैं अथवा भोजन [या भोग] से हटे हुए [अर्थात् अभोक्ता] हैं, इसलिये **सुव्रत** हैं ।

अनन्याधीनसिद्धित्वात् सिद्धः ।

भगवान्‌की सिद्धि (इच्छापूर्ति) दूसरेके अधीन नहीं है, इसलिये वे **सिद्ध** हैं ।

सुरशत्रव एवास्य शत्रवः, तान् जयतीति शत्रुजित् ।

देवताओंके शत्रु ही भगवान्‌के शत्रु हैं, उन्हें जीतते हैं, इसलिये **शत्रुजित्** हैं ।

सुरशत्रूणां तापनः शत्रुतापनः ।

देवताओंके शत्रुओंको तपानेवाले हैं, इसलिये **शत्रुतापन** हैं ।

* गरुडपुराण १ । २२७ । ३२ का पाठ भी इसी प्रकार है ।

न्यक् अर्वाक् रोहति सर्वेषामुपरिवर्तत इति न्यग्रोधः; पृषोदरादित्वाद् हकारस्य धकारादेशः; सर्वाणि भूतानि न्यक्कृत्य निजमायां वृणोति निरुणद्धीति वा।

अम्बरादुद्गतः कारणत्वेनेति उदुम्बरः; पृषोदरादित्वादेवोकारादेशः; यद्वा उदुम्बरमन्नाद्यम्; तेन तदात्मना विश्वं पोषयन् उदुम्बरः; 'ऊर्ग्वा अन्नाद्यमुदुम्बरम्' इति श्रुतेः।

न्यग्रोधोदुम्बर इत्यत्र विसर्गलोपे सन्धिरार्षः।

श्वोऽपि न स्थातेति अश्वत्थः। पृषोदरादित्वादेव सकारस्य तकारादेशः;

'ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाख
एषोऽश्वत्थः सनातनः।'
(क० उ० २।३।१)

इति श्रुतेः।

न्यक्—नीचेकी ओर उगते हैं और सबके ऊपर विराजमान हैं, इसलिये **न्यग्रोध** हैं। पृषोदरादिगणमें होनेसे न्यग्रोहके हकारको ध आदेश हो गया है। अथवा सब भूतोंका निरास करके अपनी मायाका वरण करते हैं या उसका निरोध करते हैं [इसलिये न्यग्रोध हैं]।

कारणरूपसे अम्बर (आकाश) से भी ऊपर हैं, इसलिये **उदुम्बर** हैं। पृषोदरादिगणमें होनेसे ही यहाँ अम्बरके अकारको उकार आदेश हुआ है। अथवा **'ऊर्ग्वा अन्नाद्यमुदुम्बरम्'** इस श्रुतिके अनुसार उदुम्बर अन्नरूप खाद्यको भी कहते हैं, खाद्यरूपसे विश्वका पोषण करते हैं, इसलिये उदुम्बर हैं।

'न्यग्रोधोदुम्बरः' इसमें न्यग्रोधः के विसर्गका लोप होनेपर भी जो गुण-सन्धि हुई है, वह आर्ष है।

श्व अर्थात् कल भी रहनेवाला नहीं है, इसलिये [भगवान्‌की अभिव्यक्ति-रूप जगत्] **अश्वत्थ** है। पृषोदरादिगणमें होनेसे ही अश्वत्थके सकारको तकार आदेश हुआ है*। श्रुति कहती है—**'ऊपरकी ओर मूलवाला और नीचेकी ओर शाखाओंवाला यह**

* यहाँ 'स्थ' के सकारका तकार और 'श्वस्' के सकारका लोप आदेश समझना चाहिये।

'ऊर्ध्वमूलमधःशाख-
मश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ।'
(गीता १५ । १)

इति स्मृतेश्च ।

चाणूरनामानमन्ध्रं निषूदितवानिति चाणूरान्ध्रनिषूदनः ॥ १०१ ॥

सनातन अश्वत्थवृक्ष है ।' स्मृति भी कहती है—'इस ऊपरको मूल और नीचेको शाखाओंवाले अश्वत्थवृक्षको अविनाशी बतलाते हैं ।'

चाणूर नामक अन्ध्र-जातिके वीरको मारा था, इसलिये **चाणूरान्ध्रनिषूदन** हैं ॥ १०१ ॥

सहस्रार्चिः सप्तजिह्वः सप्तैधाः सप्तवाहनः ।
अमूर्तिरनघोऽचिन्त्यो भयकृद् भयनाशनः ॥१०२॥

८२६ सहस्रार्चिः, ८२७ सप्तजिह्वः, ८२८ सप्तैधाः, ८२९ सप्तवाहनः । ८३० अमूर्तिः, ८३१ अनघः, ८३२ अचिन्त्यः, ८३३ भयकृत्, ८३४ भयनाशनः ॥

सहस्राणि अनन्तानि अर्चींषि यस्य स सहस्रार्चिः,

'दिवि सूर्यसहस्रस्य
भवेद्युगपदुत्थिता ।
यदि भाः सदृशी सा स्या-
द्भासस्तस्य महात्मनः ॥'
(११ । १२)

इति गीतावचनात् ।

सप्त जिह्वा अस्य सन्तीति सप्तजिह्वः,

'काली कराली च मनोजवा च
सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा ।
स्फुलिङ्गिनी विश्वरुची च देवी
लेलायमाना इति सप्त जिह्वाः ॥'
(मु० उ० १ । २ । ४)

इति श्रुतेः ।

जिनके सहस्र अर्थात् अनन्त अर्चियाँ (किरणें) हैं, वे भगवान् **सहस्रार्चि** हैं । गीताजीमें कहा है—

'यदि आकाशमें हजार सूर्योंका एक साथ प्रकाश हो तो वह उस महात्माके प्रकाशके समान हो सकता है ।'

[अग्निरूपी भगवान्की] सात जिह्वाएँ हैं, इसलिये— वे **सप्तजिह्व** हैं । श्रुति कहती है—'अग्निकी काली, कराली, मनोजवा, सुलोहिता, सुधूम्रवर्णा, स्फुलिङ्गिनी और देवी विश्वरुची—ये सात लपलपाती हुई जिह्वाएँ हैं ।'

सप्त एधांसि दीप्तयोऽस्येति सप्तैधाः **अग्निः,** 'सप्त ते अग्ने समिधः सप्त जिह्वाः' **इति मन्त्रवर्णात् ।**

सप्त अश्वा वाहनान्यस्येति सप्तवाहनः; **सप्तनामैकोऽश्वो वाहनमस्येति वा,** 'एकोऽश्वो वहति सप्तनामा' **इति श्रुतेः ।**

मूर्तिर्घनरूपं धारणसमर्थं चराचरलक्षणम्, 'ताभ्योऽभितप्ताभ्यो मूर्तिरजायत' **इति श्रुतेः; तद्रहित इति** अमूर्तिः; **अथवा देहसंस्थानलक्षणा मूर्च्छिताङ्गावयवा मूर्तिः, तद्रहित इति अमूर्तिः ।**

अघं दुःखं पापं चास्य न विद्यत इति अनघः ।

प्रमात्रादिसाक्षित्वेन सर्वप्रमाणागोचरत्वात् अचिन्त्यः; **अयमीदृश इति विश्वप्रपञ्चविलक्षणत्वेन चिन्तयितुमशक्यत्वाद् वा अचिन्त्यः ।**

अग्निरूप भगवान्की सात एधाएँ अर्थात् दीप्तियाँ हैं, इसलिये वे **सप्तैधा** हैं । मन्त्रवर्ण कहता है—**'हे अग्ने! तेरी सात समिध् और सात जिह्वाएँ हैं'।**

सात घोड़े [सूर्यरूप] भगवान्के वाहन हैं, इसलिये वे **सप्तवाहन** हैं, अथवा सात नामोंवाला एक ही घोड़ा वाहन है, इसलिये वेदभगवान् * सप्तवाहन हैं । श्रुति कहती है— **'सात नामोंवाला एक ही घोड़ा वहन करता है ।'**

घनरूप धारणमें समर्थ चराचरको मूर्ति कहते हैं, जैसा कि श्रुतिमें कहा है **'उन अभितप्तोंसे मूर्ति उत्पन्न हुई ।'** मूर्तिहीन होनेके कारण **अमूर्ति** हैं । अथवा देह-संस्थानरूप संगठित अवयव ही मूर्ति है, उससे रहित होनेके कारण अमूर्ति हैं ।

जिनमें अघ अर्थात् दुःख या पाप नहीं है, वे भगवान् **अनघ** हैं ।

प्रमाता आदिके भी साक्षी होनेसे सब प्रमाणोंके अविषय होनेके कारण **अचिन्त्य** हैं, अथवा सम्पूर्ण प्रपञ्चसे विलक्षण होनेके कारण 'यह ऐसे हैं', इस प्रकार चिन्तन नहीं किये जा सकते, इसलिये अचिन्त्य हैं ।

* गायत्री, बृहती, पङ्क्ति, त्रिष्टुब्, उष्णिक्, जगती और अनुष्टुप्—ये सात छन्द वेदभगवान्के घोड़े हैं ।

असन्मार्गवर्तिनां भयं करोति भक्तानां भयं कृन्तति कृणोतीति वा भयकृत् ।

असन्मार्गमें चलनेवालोंको भय उत्पन्न करते हैं अथवा भक्तोंका भय काटते— नष्ट करते हैं, इसलिये **भयकृत्** हैं ।

वर्णाश्रमाचारवतां भयं नाशयतीति भयनाशनः;

'वर्णाश्रमाचारवता
पुरुषेण परः पुमान् ।
विष्णुराराध्यते पन्था
नान्यस्तत्तोषकारकः ॥'
(विष्णु० ३ । ८ । ९)

इति पराशरवचनात् ॥१०२॥

वर्णाश्रम-धर्मका पालन करनेवालोंका भय नष्ट करते हैं, इसलिये भगवान् **भयनाशन** हैं । पराशरजीका वचन है— **'वर्णाश्रम-आचारका पालन करनेवाले पुरुषसे ही परम पुरुष भगवान् विष्णुकी आराधना बन सकती है । उन्हें प्रसन्न करनेका कोई और मार्ग नहीं है'** ॥ १०२ ॥

अणुर्बृहत्कृशः स्थूलो गुणभृन्निर्गुणो महान् ।
अधृतः स्वधृतः स्वास्यः प्राग्वंशो वंशवर्धनः ॥१०३॥

८३५ अणुः, ८३६ बृहत्, ८३७ कृशः, ८३८ स्थूलः, ८३९ गुणभृत्, ८४० निर्गुणः, ७४१ महान् । ८४२ अधृतः, ८४३ स्वधृतः, ८४४ स्वास्यः, ८४५ प्राग्वंशः, ८४६ वंशवर्धनः ॥

सौक्ष्म्यातिशयशालित्वाद् अणुः, 'एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यः' (मु० उ० ३ । १ । ९) इति श्रुतेः ।

अत्यन्त सूक्ष्म होनेसे भगवान् **अणु** हैं । श्रुति कहती है—**'यह अणु (सूक्ष्म) आत्मा चित्तसे जानने योग्य है ।'**

बृहत्त्वाद् बृंहणत्वाच्च ब्रह्म बृहत्, 'महतो महीयान्' (क० उ० १ । २ । २०) इति श्रुतेः ।

बृहत् (बड़ा) तथा बृंहण (जगत्-रूपसे बढ़नेवाला) होनेके कारण ब्रह्म **बृहत्** हैं । श्रुति कहती है— **'महान्‌से भी अत्यन्त महान् है ।'**

'अस्थूलम्' (बृ० उ० ३।८।८) इत्यादिना द्रव्यत्वप्रतिषेधात् कृशः।

'अस्थूल है' इत्यादि श्रुतिसे द्रव्यत्वका प्रतिषेध किये जानेके कारण वह कृश है।

स्थूलः इति उपचर्यते सर्वात्मत्वात्।

सर्वात्मक होनेके कारण ब्रह्मको उपचारसे स्थूल कहते हैं।

सत्त्वरजस्तमसां सृष्टिस्थितिलयकर्मस्वधिष्ठातृत्वात् गुणभृत्।

सृष्टि, स्थिति और लयकर्ममें सत्त्व, रज और तम—इन तीनों गुणोंके अधिष्ठाता होनेसे भगवान् **गुणभृत्** हैं।

वस्तुतो गुणाभावात् निर्गुणः, 'केवलो निर्गुणश्च' (श्वे० उ० ६।११) इति श्रुतेः।

परमार्थतः उनमें गुणोंका अभाव है, इसलिये वे **निर्गुण** हैं। श्रुति कहती है—'**केवल और निर्गुण है।**'

शब्दादिगुणरहितत्वात् निरतिशयसूक्ष्मत्वात् नित्यशुद्धसर्वगतत्वादिना च प्रतिबन्धकं धर्मजातं तर्कतोऽपि यतो वक्तुं न शक्यम् अतएव महान्।

'अनङ्गोऽशब्दोऽशरीरोऽस्पर्शश्च महाञ्छुचिः।'

इत्यापस्तम्बः।

शब्दादि गुणोंसे रहित, अत्यन्त सूक्ष्म तथा नित्य, शुद्ध और सर्वगत होनेके कारण [भगवान्में] विघ्नरूप कर्म-समूह युक्तिसे भी नहीं कहे जा सकते, इसलिये वे **महान्** हैं। आपस्तम्बने कहा है—'**अङ्ग, शब्द, शरीर और स्पर्शसे रहित तथा महान् और शुचि है।**'

पृथिव्यादीनां धारकाणामपि धारकत्वान्न केनचिद् ध्रियत इति अधृतः।

पृथिवी आदि धारण करनेवालोंके भी धारण करनेवाले होनेसे किसीसे भी धारण नहीं किये जाते; इसलिये **अधृत** हैं।

यद्येवमयं केन धार्यत इत्याशङ्कयाह—स्वेनैव आत्मना धार्यते

यदि ऐसा है तो वे स्वयं किससे धारण किये जाते हैं—ऐसी शङ्का होनेपर कहते हैं—वे स्वयं अपने आपसे ही धारण किये जाते हैं; अतः

इति स्वधृतः, 'स भगवः कस्मिन् प्रतिष्ठित इति स्वे महिम्नि ।' (छा० उ० ७ । २४ । १) इति श्रुतेः ।

वे **स्वधृत** हैं । श्रुति कहती है—'भगवन् ! वह किसमें स्थित है ? अपनी महिमामें ।'

शोभनं पद्मोदरतलताम्रमभिरूपतममस्यास्यमिति स्वास्यः; वेदात्मको महान् शब्दराशिः तस्य मुखान्निर्गतः पुरुषार्थोपदेशार्थमिति वा स्वास्यः, 'अस्य महतो भूतस्य' (बृ० उ० २ । ४ । १०) इत्यादि श्रुतेः ।

कमल कोशके निम्नभागके समान भगवान्‌का ताम्रवर्ण मुख अत्यन्त सुन्दर है, इसलिये वे **स्वास्य** हैं । अथवा पुरुषार्थका उपदेश करनेके लिये उनके मुखसे वेदार्थरूपी महान् शब्द-समूह निकला है, इसलिये वे स्वास्य हैं । श्रुति कहती है—'इस महाभूतके [श्वास वेद हैं]' इत्यादि ।

अन्यस्य वंशिनो वंशाः पाश्चात्त्याः; अस्य वंशः प्रपञ्चः प्रागेव, न पाश्चात्त्य इति प्राग्वंशः ।

अन्य वंशियोंके वंश पीछे हुए हैं; परन्तु भगवान्‌का प्रपञ्चरूप वंश पहले-हीसे है [किसीसे] पीछे नहीं हुआ है, इसलिये वे **प्राग्वंश** हैं ।

वंशं प्रपञ्चं वर्धयन् छेदयन् वा वंशवर्धनः ॥ १०३ ॥

अपने वंशरूप प्रपञ्चको बढ़ाने अथवा नष्ट करनेके कारण भगवान् **वंशवर्धन** हैं ॥ १०३ ॥

भारभृत् कथितो योगी योगीशः सर्वकामदः ।
आश्रमः श्रमणः क्षामः सुपर्णो वायुवाहनः ॥१०४॥

८४७ भारभृत्, ८४८ कथितः, ८४९ योगी, ८५० योगीशः, ८५१ सर्वकामदः । ८५२ आश्रमः, ८५३ श्रमणः, ८५४ क्षामः, ८५५ सुपर्णः, ८५६ वायुवाहनः ॥

अनन्तादिरूपेण भुवो भारं बिभ्रत् भारभृत् ।

अनन्तादिरूपसे पृथ्वीका भार उठानेके कारण **भारभृत्** हैं ।

वेदादिभिरयमेव परत्वेन कथितः, 'सर्वैर्वेदैः कथित इति वा' कथितः, 'सर्वे वेदा यत् पदमामनन्ति' (क० उ० १ । २ । १५) 'वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः' (गीता १५ । १५)

'वेदे रामायणे पुण्ये
भारते भरतर्षभ ।
आदौ मध्ये तथा चान्ते
विष्णुः सर्वत्र गीयते ॥'
(महा० श्रवण० ९३)

'सोऽध्वनः परमाप्नोति
तद्विष्णोः परमं पदम् ।'
(क० उ० १ । ३ । ९)

इति श्रुतिस्मृत्यादिवचनेभ्यः । किं तदध्वनो विष्णोर्व्यापिनशीलस्य परमं पदं सतत्त्वमित्याकाङ्क्षायाम् इन्द्रियादिभ्यः सर्वेभ्यः परत्वेन प्रतिपाद्यते 'इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्थाः' (क० उ० १ । ३ । १०) **इत्यारभ्य,**

'पुरुषान्न परं किञ्चित्
सा काष्ठा सा परा गतिः ।'
(क० उ० १ । ३ । ११)

इत्यन्तेन यः कथितः स कथितः ।

योगो ज्ञानम् तेनैव गम्यत्वात् योगी; **योगः समाधिः स हि**

वेदादिकोंने पररूपसे भगवान्‌का ही कथन किया है, अथवा 'सम्पूर्ण वेदोंसे भी भगवान् ही कथित हैं' इसलिये वे कथित हैं । **'सब वेद जिस पद (ब्रह्म) का प्रतिपादन करते हैं' 'सम्पूर्ण वेदोंसे भी मैं ही जाननेयोग्य हूँ' 'हे भरतश्रेष्ठ ! वेद, रामायण, पुराण तथा महाभारत—इन सबके आदि, मध्य और अन्तमें सर्वत्र विष्णु ही गाये गये हैं ।' 'वह मार्गको पार कर लेता है, वही विष्णुका परम पद है'** इत्यादि श्रुति-स्मृति-वाक्योंद्वारा [ऐसा ही कहा गया है] । व्यापनशील विष्णुके मार्गका वह तात्त्विक परमपद क्या है ? ऐसी जिज्ञासा होनेपर उसका सम्पूर्ण इन्द्रियादिके पररूपसे प्रतिपादन किया जाता है । वेदमें **'इन्द्रियोंसे विषय पर हैं'** यहाँसे आरम्भ करके **'पुरुषसे पर कुछ नहीं है, वह सीमा है और वही परम गति है'** इस वाक्यतक जिसका कथन किया गया है, वह कथित है ।

योग ज्ञानको कहते हैं; उसीसे प्राप्तव्य होनेके कारण भगवान् योगी हैं । अथवा योग समाधिको भी कहते

स्वात्मनि सर्वदा समाधत्ते स्वमात्मानम्, तेन वा योगी ।

अन्ये योगिनो योगान्तरायैर्हन्यन्ते स्वरूपात् प्रमाद्यन्ति; अयं तु तद्रहितत्वात्तेषामीशः योगीशः ।

सर्वान् कामान् सदा ददातीति सर्वकामदः, 'फलमत उपपत्तेः' (ब्र० सू० ३ । २ । ३८) इति व्यासेनाभिहितत्वात् ।

आश्रमवत् सर्वेषां संसारारण्ये भ्रमतां विश्रमस्थानत्वात् आश्रमः ।

अविवेकिनः सर्वान् सन्तापयतीति श्रमणः ।

क्षामाः क्षीणाः सर्वाः प्रजाः करोतीति क्षामः; 'तत् करोति तदाचष्टे' (चुरादिगणसूत्रम्) इति णिचि पचाद्यचि कृते सम्पन्नः क्षाम इति ।

हैं, परमात्मा सर्वदा अपने आत्मा (स्वरूप) में अपने-आपको समाहित रखते हैं, इसलिये वे योगी हैं ।

अन्य योगीजन योगके विघ्नोंसे सताये जाते हैं, इसलिये वे स्वरूपसे विचलित हो जाते हैं, परन्तु भगवान् अन्तरायरहित हैं, इसलिये योगीश हैं ।

सर्वदा सब कामनाएँ देते हैं, इसलिये सर्वकामद हैं । भगवान् व्यासजीने कहा है---'फल इस (परमात्मा) से ही प्राप्त होते हैं, क्योंकि यही [मानना] उपपन्न (युक्तिसंगत) है ।'*

संसारवनमें भटकते हुए समस्त पुरुषोंके लिये आश्रमके समान विश्रान्तिके स्थान होनेसे परमात्मा आश्रम हैं ।

समस्त अविवेकियोंको सन्तप्त करते हैं, इसलिये श्रमण हैं ।

सम्पूर्ण प्रजाको क्षाम अर्थात् क्षीण करते हैं इसलिये क्षाम हैं । ['क्षामाः करोति' इस विग्रहमें] 'तत् करोति तदाचष्टे' इस गणसूत्रके अनुसार [क्षाम शब्दसे] णिच्प्रत्यय करनेके अनन्तर पचादिनिमित्तक अच्प्रत्यय करनेपर 'क्षाम' शब्द सिद्ध होता है ।

* परमात्मा सबका साक्षी है और नाना प्रकारकी सृष्टि, पालन तथा संहार करता हुआ देश और कालविशेषका ज्ञाता है, इसलिये वह कर्म करनेवालोंको उनके कर्मानुसार फल देता है— यही युक्ति है ।

शोभनानि पर्णानिच्छन्दांसि संसारतरुरूपिणोऽस्येति सुपर्णः, 'छन्दांसि यस्य पर्णानि' (गीता १५ । १) इति भगवद्वचनात् ।

संसारवृक्षरूप परमात्माके छन्दरूप सुन्दर पत्ते हैं, इसलिये वे सुपर्ण हैं; जैसा कि भगवान्का वाक्य है—'छन्द जिसके पत्ते हैं ।'

वायुर्वहति यद्भीतथा भूतानीति स वायुवाहनः, 'भीषास्माद् वातः पवते' (तै० उ० २ । ८) इति श्रुतेः ॥ १०४ ॥

जिनके भयसे वायु समस्त भूतोंका वहन करता है, वे भगवान् वायुवाहन हैं । श्रुति कहती है—'इसके भयसे वायु चलता है ।' ॥ १०४ ॥



धनुर्धरो धनुर्वेदो दण्डो दमयिता दमः ।
अपराजितः सर्वसहो नियन्तानियमोऽयमः ॥१०५॥

८५७ धनुर्धरः, ८५८ धनुर्वेदः, ८५९ दण्डः, ८६० दमयिता, ८६१ दमः । ८६२ अपराजितः, ८६३ सर्वसहः, ८६४ नियन्ता, ८६५ अनियमः, (नियमः), ८६६ अयमः, (यमः) ॥

श्रीमान् रामो महद्धनुर्धारयामासेति धनुर्धरः ।

श्रीमान् रामने महान् धनुष धारण किया था, इसलिये वे धनुर्धर हैं ।

स एव दाशरथिर्धनुर्वेदं वेत्तीति धनुर्वेदः ।

वे ही दशरथकुमार धनुर्वेद जानते हैं; इसलिये धनुर्वेद हैं ।

दमनं दमयतां दण्डः, 'दण्डो दमयतामस्मि' (गीता १० । ३८) इति भगवद्वचनात् ।

दमन करनेवालोंमें दमन [कर्म] हैं; इसलिये वे दण्ड हैं; भगवान् कहते हैं—'दमन करनेवालोंका मैं दण्ड हूँ।'

वैवस्वतनरेन्द्रादिरूपेण प्रजा दमयतीति दमयिता ।

यम और राजा आदिके रूपसे प्रजाका दमन करते हैं, इसलिये दमयिता हैं ।

दमः दम्येषु दण्डकार्यं फलम्, तच्च स एवेति दमः ।

शत्रुभिर्न पराजितः इति अपराजितः ।

सर्वकर्मसु समर्थ इति, सर्वान् शत्रून् सहत इति वा सर्वसहः ।

सर्वान् स्वेषु स्वेषु कृत्येषु व्यवस्थापयतीति नियन्ता ।

न नियमो नियतिस्तस्य विद्यत इति अनियमः, सर्वनियन्तुर्नियन्त्रन्तराभावात् ।

नास्य विद्यते यमो मृत्युरिति अयमः । अथवा, यमनियमौ योगाङ्गे तद्गम्यत्वात्स एव नियमः यमः ॥ १०५ ॥

दण्डके अधिकारियोंमें जो दण्डका फलस्वरूप कार्य है, वह दम कहलाता है; वह भी वे ही हैं, इसलिये **दम** हैं ।

शत्रुओंसे पराजित नहीं होते, इसलिये **अपराजित** हैं ।

समस्त कर्मोंमें समर्थ हैं, इसलिये अथवा समस्त शत्रुओंको सहन करते (जीत लेते) हैं, इसलिये **सर्वसह** हैं ।

सबको अपने-अपने कार्यमें नियुक्त करते हैं, इसलिये **नियन्ता** हैं ।

भगवान्के लिये कोई नियम अर्थात् नियन्त्रण नहीं है, इसलिये वे **अनियम** हैं; क्योंकि सबके नियन्ताका कोई और नियामक नहीं हो सकता ।

भगवान्के लिये कोई यम अर्थात् मृत्यु नहीं है, अतः वे **अयम** हैं । अथवा योगके अङ्ग जो यम और नियम हैं, उनसे प्राप्तव्य होनेके कारण वे नियम और यम हैं ॥ १०५ ॥



सत्त्ववान् सात्त्विकः सत्यः सत्यधर्मपरायणः ।
अभिप्रायः प्रियार्होऽर्हः प्रियकृत् प्रीतिवर्धनः ॥१०६॥

८६७ सत्त्ववान्, ८६८ सात्त्विकः, ८६९ सत्यः, ८७० सत्यधर्मपरायणः । ८७१ अभिप्रायः, ८७२ प्रियार्हः, ८७३ अर्हः, ८७४ प्रियकृत्, ८७५ प्रीतिवर्धनः ॥

शौर्यवीर्यादिकं सत्त्वमस्येति सत्त्ववान् ।

भगवान्‌में शूरता-पराक्रम आदि सत्त्व हैं, इसलिये वे सत्त्ववान् हैं ।

सत्त्वे गुणे प्राधान्येन स्थित इति सात्त्विकः ।

सत्त्वगुणमें प्रधानतासे स्थित हैं इसलिये सात्त्विक हैं ।

सत्सु साधुत्वात् सत्यः ।

समीचीनोंमें साधु होनेसे सत्य हैं ।

सत्ये यथाभूतार्थकथने धर्मे च चोदनालक्षणे नियत इति सत्यधर्मपरायणः ।

वे सत्य अर्थात् यथार्थ भाषणमें और विधिरूप धर्ममें नियत हैं, इसलिये सत्यधर्मपरायण हैं ।

अभिप्रेयते पुरुषार्थकाङ्क्षिभिः आभिमुख्येन प्रलयेऽस्मिन् प्रैति जगदिति वा अभिप्रायः ।

पुरुषार्थके इच्छुक पुरुष भगवान्‌का अभिप्राय अर्थात् अभिलाषा रखते हैं, अथवा प्रलयके समय संसार उनके सम्मुख जाकर उनमें लीन हो जाता है, इसलिये वे अभिप्राय हैं ।

प्रियाणि इष्टान्यर्हतीति प्रियार्हः

'यद्यदिष्टतमं लोके
यच्चास्य दयितं गृहे ।
तत्तद् गुणवते देयं
तदेवाक्षयमिच्छता ॥'
(दक्ष० ३ । ३१)

इति स्मरणात् ।

प्रिय इष्ट वस्तु निवेदन करने योग्य हैं, इसलिये प्रियार्ह हैं । स्मृति कहती है—'मनुष्यको संसारमें जो सबसे अधिक प्रिय हो तथा उसके घरमें जो उसकी सबसे प्यारी वस्तु हो, उसे यदि अक्षय करनेकी इच्छा हो तो गुणवान्‌को दे देना चाहिये ।'

स्वागतासनप्रशंसार्घ्यपाद्यस्तुतिनमस्कारादिभिः पूजासाधनैः पूजनीय इति अर्हः ।

भगवान् स्वागत, आसन, प्रशंसा, अर्घ्य, पाद्य, स्तुति और नमस्कार आदि पूजाके साधनोंसे पूजनीय हैं, इसलिये अर्ह हैं ।

न केवलं प्रियार्ह एव, किन्तु स्तुत्यादिभिर्भजतां प्रियं करोतीति प्रियकृत् ।

केवल प्रियार्ह ही नहीं हैं, बल्कि स्तुति आदिके द्वारा भजनेवालोंका प्रिय करते हैं, इसलिये प्रियकृत् भी हैं ।

तेषामेव प्रीतिं वर्धयतीति प्रीतिवर्धनः ॥ १०६ ॥

उन्हींकी प्रीति भी बढ़ाते हैं, इसलिये **प्रीतिवर्धन** हैं ॥ १०६ ॥

विहायसगतिर्ज्योतिः सुरुचिर्हुतभुग् विभुः ।
रविर्विरोचनः सूर्यः सविता रविलोचनः ॥ १०७ ॥

८७६ विहायसगतिः, ८७७ ज्योतिः, ८७८ सुरुचिः, ८७९ हुतभुक्, ८८० विभुः ।
८८१ रविः, ८८२ विरोचनः, ८८३ सूर्यः, ८८४ सविता, ८८५ रविलोचनः ॥

विहायसं गतिराश्रयोऽस्येति विहायसगतिः, विष्णुपदम् आदित्यो वा ।

जिसकी गति अर्थात् आश्रय विहायस (आकाश) है, उस विष्णुपद अथवा आदित्यरूपसे भगवान् **विहायसगति** हैं ।

स्वत एव द्योतत इति ज्योतिः, 'नारायणपरो ज्योतिरात्मा' (ना० उ० १३ । १) इति मन्त्रवर्णात् ।

स्वयं ही प्रकाशित होते हैं, इसलिये **ज्योति** हैं, जैसा कि मन्त्रवर्ण कहता है— 'नारायण परम ज्योति है, नारायण आत्मा है ।'

शोभना रुचिर्दीप्तिरिच्छा वा अस्येति सुरुचिः ।

भगवान्‌की रुचि—दीप्ति अथवा इच्छा सुन्दर है, इसलिये वे **सुरुचि** हैं ।

समस्तदेवतोद्देशेन प्रवृत्तेष्वपि कर्मसु हुतं भुङ्क्ते भुनक्तीति वा हुतभुक् ।

समस्त देवताओंके उद्देश्यसे भी किये हुए कर्मोंमें आहुतियोंको [स्वयम्] भोगते हैं, अथवा उनकी रक्षा करते हैं, इसलिये **हुतभुक्** हैं ।

सर्वत्र वर्तमानत्वात्, त्रयाणां लोकानां प्रभुत्वाद् वा विभुः ।

सर्वत्र वर्तमान होने तथा तीनों लोकोंके प्रभु होनेके कारण **विभु** हैं ।

रसानादत्त इति रविः आदित्यात्मा ।

रसोंको ग्रहण करते हैं, इसलिये सूर्यरूप भगवान् **रवि** हैं । विष्णु-

'रसानाञ्च तथादानाद्
रविरित्यभिधीयते ।'
(१ । ३० । १६)
इति विष्णुधर्मोत्तरे ।

विविधं रोचत इति विरोचनः ।

सूते श्रियमिति सूर्योऽग्निर्वा सूर्यः **सूतेः सुवतेर्वा सूर्यशब्दो निपात्यते** 'राजसूयसूर्य' (पा० सू० ३ । १ । ११४) इति **पाणिनिवचनात्** **सूर्यः** ।

सर्वस्य जगतः प्रसविता सविता; 'प्रजानां तु प्रसवनात् सवितेति निगद्यते' (१ । ३० । १५) इति **विष्णुधर्मोत्तरे** ।

रविर्लोचनं चक्षुरस्येति रवि-लोचनः, 'अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ' (मु० उ० २ । १ । ४) इति **श्रुतेः** ॥ १०७ ॥

धर्मोत्तरपुराणमें कहा है—'रसोंका ग्रहण करनेके कारण 'रवि' कहलाते हैं ।'

विविध प्रकारसे सुशोभित होते हैं, इसलिये **विरोचन** हैं ।

श्री (शोभा) को जन्म देते हैं, इसलिये सूर्य या अग्नि **सूर्य** हैं **'राजसूयसूर्य'** इत्यादि पाणिनि-सूत्रके अनुसार प्रसवार्थक षूङ्[1] धातु या प्रेरणार्थक षू[2] धातुसे सूर्य शब्दका निपातन किया जाता है ।

सम्पूर्ण जगत्का प्रसव (उत्पत्ति) करनेवाले होनेसे भगवान् **सविता** हैं । विष्णुधर्मोत्तरपुराणमें कहा है—**'प्रजाओंका प्रसव करनेसे आप सविता कहलाते हैं ।'**

रवि भगवान्का लोचन अर्थात् नेत्र है, इसलिये वे **रविलोचन** हैं । श्रुति कहती है—**'अग्नि उसका सिर है तथा सूर्य और चन्द्र नेत्र हैं'** ॥ १०७ ॥



अनन्तो हुतभुग् भोक्ता सुखदो नैकजोऽग्रजः ।
अनिर्विण्णः सदामर्षी लोकाधिष्ठानमद्भुतः ॥ १०८ ॥

१–षूङ् प्राणिगर्भविमोचने (अदादि) इसके 'सूते' आदि रूप होते हैं ।
२–षू प्रेरणे (तुदादि) इसके 'सुवति' आदि रूप होते हैं ।

*

८८६ अनन्तः, ८८७ हुतभुक्, ८८८ भोक्ता, ८८९ सुखदः [असुखदः], ८९० नैकजः, ८९१ अग्रजः । ८९२ अनिर्विण्णः, ८९३ सदामर्षी, ८९४ लोकाधिष्ठानम्, ८९५ अद्भुतः ॥

नित्यत्वात् सर्वगत्वाद् देशकालपरिच्छेदाभावात् अनन्तः शेषरूपो वा ।	नित्य, सर्वगत और देशकालपरिच्छेदका अभाव होनेके कारण भगवान् अनन्त हैं । अथवा शेषरूप भगवान् ही अनन्त हैं ।
हुतं भुनक्तीति हुतभुक् ।	हवन किये हुएको भोगते हैं, इसलिये हुतभुक् हैं ।
प्रकृतिं भोग्याम् अचेतनां भुङ्क्ते इति, जगत् पालयतीति वा भोक्ता ।	भोग्य-रूपा अचेतन प्रकृतिको भोगते हैं, इसलिये अथवा जगत्का पालन करते हैं, इसलिये भोक्ता हैं ।
भक्तानां सुखं मोक्षलक्षणं ददातीति सुखदः । असुखं द्यति खण्डयतीति वा असुखदः ।	भक्तोंको मोक्षरूप सुख देते हैं, इसलिये सुखद हैं अथवा उनके असुखका दलन--खण्डन करते हैं; इसलिये असुखद हैं ।
धर्मगुप्तये असकृज्जायमानत्वात् नैकजः ।	धर्म-रक्षाके लिये बारम्बार जन्म लेनेके कारण नैकज हैं ।
अग्रे जायत इति अग्रजः, हिरण्यगर्भः 'हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे' (ऋ० सं० १० । १२१ । १) इत्यादिश्रुतेः ।	सबसे आगे उत्पन्न होते हैं, इसलिये हिरण्यगर्भरूपसे अग्रज हैं । श्रुति कहती है—'पहले हिरण्यगर्भ ही वर्तमान था ।'
अवाप्तसर्वकामत्वादप्राप्तिहेत्वभावान्निर्वेदोऽस्य नास्तीति अनिर्विण्णः ।	सर्व कामनाएँ प्राप्त होनेके कारण अप्राप्तिके हेतुका अभाव होनेसे परमात्माको निर्वेद (खेद) नहीं है, इसलिये वे अनिर्विण्ण हैं ।

ततः साधून् आभिमुख्येन मृष्यते क्षमत इति सदामर्षी ।

साधुओंको अपने सम्मुख सहन करते अर्थात् क्षमा करते हैं, इसलिये सदामर्षी हैं ।

तमनाधारमाधारमधिष्ठाय त्रयो लोकास्तिष्ठन्ति इति लोकाधिष्ठानम् ब्रह्म ।

उस निराधार ब्रह्मके आश्रयसे तीनों लोक स्थित हैं, इसलिये वह लोकाधिष्ठान हैं ।

अद्भुतत्वात् अद्भुतः ।

'श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः
शृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्युः ।
आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धा
आश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः ॥
(क० उ० १ । २ । ७)

इति श्रुतेः । 'आश्चर्यवत् पश्यति कश्चिदेनम्' (गीता २ । २९) इति भगवद्वचनाच्च । स्वरूपशक्तिव्यापारकार्यैरद्भुतत्वाद् वा अद्भुतः ॥ १०८ ॥

'जो बहुतोंको तो सुननेको भी नहीं मिलता और बहुत-से जिसे सुनकर भी नहीं जानते उस (ब्रह्म) का वक्ता आश्चर्यरूप है तथा उसका लब्धा—समझनेवाला भी कोई निपुण ही होता है । तथा निपुण आचार्यसे उपदेश पाकर इसे समझ लेनेवाला भी आश्चर्यरूप ही है'—इस श्रुतिसे और 'आश्चर्यके समान इसे कोई देख पाता है ।' इस भगवान्के वाक्यसे भी अद्भुत होनेके कारण भगवान् अद्भुत हैं । अथवा अपने स्वरूप, शक्ति, व्यापार और कार्य अद्भुत होनेके कारण वे अद्भुत हैं ॥ १०८ ॥



सनात् सनातनतमः कपिलः कपिरप्ययः ।
स्वस्तिदः स्वस्तिकृत् स्वस्ति स्वस्तिभुक् स्वस्तिदक्षिणः ॥

८९६ सनात्, ८९७ सनातनतमः, ८९८ कपिलः, ८९९ कपिः, ९०० अप्ययः । ९०१ स्वस्तिदः, ९०२ स्वस्तिकृत्, ९०३ स्वस्ति, ९०४ स्वस्तिभुक्, ९०५ स्वस्तिदक्षिणः ॥

सनात् इति निपातश्चिरार्थवचनः । कालश्च परस्यैव विकल्पना कापि ।

'परस्य ब्रह्मणो रूपं पुरुषः प्रथमं द्विज ।
व्यक्ताव्यक्ते तथैवान्ये रूपे कालस्तथापरम् ॥'
(१ । २ । १५)

इति विष्णुपुराणे ।

सर्वकारणत्वाद्विरिञ्चयादीनामपि सनातनानामतिशयेन सनातनत्वात् सनातनतमः ।

बडवानलस्य कपिलो वर्ण इति तद्रूपी कपिलः ।

कं जलं रश्मिभिः पिबन् कपिः सूर्यः; कपिर्वराहो वा, 'कपिर्वराहः श्रेष्ठश्च' इति वचनात् ।

प्रलये अस्मिन्नपियन्ति जगन्तीति अप्ययः ।

इति नाम्नां नवमं शतं विवृतम् ।

भक्तानां स्वस्ति मङ्गलं ददातीति स्वस्तिदः ।

सनात् यह एक चिरकाल-वाची निपात है, काल भी परमात्माका ही एक विकल्प है; जैसा कि विष्णुपुराणमें कहा है—'हे **द्विज ! परब्रह्मका प्रथम रूप पुरुष है, अव्यक्त (प्रकृति) और व्यक्त (महत्तत्त्वादि) उसके अन्य रूप हैं तथा काल उसका इतर रूप है ।'**

सबके कारण होनेसे भगवान् ब्रह्मा आदि सनातनोंसे भी अत्यन्त सनातन होनेके कारण **सनातनतम** हैं ।

बडवानलका कपिल (पिङ्गल) वर्ण होता है, अतः बडवानलरूप भगवान् **कपिल** हैं ।

अपनी किरणोंसे क अर्थात् जलको पीनेके कारण सूर्यका नाम **कपि** है । अथवा वराह भगवान् कपि हैं; जैसा कि कहा है—**'कपि वराह और श्रेष्ठ है ।'**

प्रलयकालमें जगत् भगवान्में अपगत (विलीन) होते हैं, इसलिये वे **अप्यय** हैं ।

यहाँतक सहस्रनामके नवें शतकका विवरण हुआ ।

भक्तोंको स्वस्ति अर्थात् मङ्गल देते हैं, इसलिये **स्वस्तिद** हैं ।

तदेव करोतीति स्वस्तिकृत् ।

मङ्गलस्वरूपमात्मीयं परमानन्दलक्षणं स्वस्ति ।

तदेव भुङ्क्त इति स्वस्तिभुक्; भक्तानां मङ्गलं स्वस्तिभुनक्तीति वा स्वस्तिभुक् ।

स्वस्तिरूपेण दक्षते वर्धते, स्वस्ति दातुं समर्थ इति वा स्वस्तिदक्षिणः । अथवा दक्षिणशब्द आशुकारिणि वर्तते; शीघ्रं स्वस्ति दातुमयमेव समर्थ इति, यस्य स्मरणादेवसिध्यन्ति सर्वसिद्धयः,

'स्मृते सकलकल्याण-
भाजनं यत्र जायते ।
पुरुषस्तमजं नित्यं
व्रजामि शरणं हरिम् ॥'
(ब्रह्म० ८३ । १७)

'स्मरणादेव कृष्णस्य
पापसङ्घातपञ्जरम् ।
शतधा भेदमायाति
गिरिर्वज्रहतो यथा ॥'

इत्यादिवचनेभ्यः ॥ १०९ ॥

वह [स्वस्ति] ही करते हैं, अतः स्वस्तिकृत् हैं ।

भगवान्‌का मङ्गलमय निजस्वरूप परमानन्दरूप है, इसलिये वे स्वस्ति हैं ।

वही (स्वस्ति ही) भोगते हैं और भक्तोंके मङ्गल अर्थात् स्वस्तिकी रक्षा करते हैं, इसलिये स्वस्तिभुक् हैं ।

स्वस्तिरूपसे बढ़ते हैं, अथवा स्वस्ति करनेमें समर्थ हैं, इसलिये स्वस्तिदक्षिण हैं । अथवा दक्षिण शब्दका प्रयोग शीघ्र करनेवालेके लिये भी होता है । भगवान् ही शीघ्र स्वस्ति देनेमें समर्थ हैं; क्योंकि इनके स्मरणमात्रसे सब सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं; [इसलिये वे स्वस्तिदक्षिण हैं] इस विषयमें 'जिसके स्मरणसे पुरुष सम्पूर्ण कल्याणका पात्र हो जाता है, उस अजन्मा और नित्य हरिकी मैं शरण जाता हूँ ।' [तथा–] 'जैसे वज्रके लगनेसे पर्वत टुकड़े-टुकड़े हो जाता है, उसी प्रकार कृष्णके स्मरणमात्रसे ही पाप-संघातरूप पञ्जरके सैकड़ों टुकड़े हो जाते हैं' इत्यादि वचन प्रमाण हैं ॥ १०९ ॥

अरौद्रः कुण्डली चक्री विक्रम्यूर्जितशासनः ।
शब्दातिगः शब्दसहः शिशिरः शर्वरीकरः ॥११०॥

९०६ अरौद्रः, ९०७ कुण्डली, ९०८ चक्री, ९०९ विक्रमी, ९१० ऊर्जित-शासनः । ९११ शब्दातिगः, ९१२ शब्दसहः, ९१३ शिशिरः, ९१४ शर्वरीकरः ॥

कर्म रौद्रम्, रागश्च रौद्रः, कोपश्च रौद्रः; यस्य रौद्रत्रयं नास्ति अवाप्तसर्वकामत्वेन रागद्वेषादेरभावात् स अरौद्रः ।

शेषरूपभाक् कुण्डली सहस्रांशुमण्डलोपमकुण्डलधारणाद् वा; यद्वा सांख्ययोगात्मके कुण्डले मकराकारे अस्य स्त इति कुण्डली ।

समस्तलोकरक्षार्थं मनस्तत्त्वात्मकं सुदर्शनाख्यं चक्रं धत्त इति चक्री,

'चलस्वरूपमत्यन्त-
जवेनान्तरितानिलम् ।
चक्रस्वरूपं च मनो
धत्ते विष्णुः करे स्थितम् ॥'
(१ । २२ । ७१)

इति विष्णुपुराणवचनात् ।

विक्रमः पादविक्षेपः, शौर्यं वा; द्वयं चाशेषपुरुषेभ्यो विलक्षणमस्येति विक्रमी ।

श्रुतिस्मृतिलक्षणमूर्जितं शासनमस्येति ऊर्जितशासनः ।

कर्म, राग और कोप ये रौद्र हैं; आप्तकाम होनेके कारण राग-द्वेषका अभाव होनेसे जिनमें ये तीनों रौद्र नहीं हैं, वे भगवान् **अरौद्र** हैं ।

शेषरूपधारी होनेसे **कुण्डली** हैं, अथवा सूर्यमण्डलके समान कुण्डल धारण करनेसे कुण्डली हैं । अथवा इनके सांख्य और योगरूप मकराकृति कुण्डल हैं, इसलिये कुण्डली हैं ।

सम्पूर्ण लोकोंकी रक्षाके लिये मनस्तत्त्वरूप सुदर्शनचक्र धारण करते हैं, इसलिये **चक्री** हैं । विष्णुपुराणमें कहा है—'**श्रीविष्णु अत्यन्त वेगसे वायुको भी हरानेवाला चञ्चल चक्रस्वरूप मन अपने हाथमें धारण करते हैं ।**'

भगवान्‌का विक्रम—पादविक्षेप (डग) अथवा शूरवीरता दोनों ही समस्त पुरुषोंसे विलक्षण हैं, इसलिये वे **विक्रमी** हैं ।

उनका श्रुति-स्मृतिरूप शासन अत्यन्त उत्कृष्ट है, इसलिये वे **ऊर्जित-शासन** हैं । भगवान्‌ने कहा है—

'श्रुतिस्मृती ममैवाज्ञे
यस्ते उल्लङ्घ्य वर्तते।
आज्ञाच्छेदी मम द्वेषी
मद्भक्तोऽपि न वैष्णवः॥'

इति भगवद्वचनात्।

'श्रुति, स्मृति मेरी ही आज्ञाएँ हैं, जो उनका उल्लङ्घन करके बर्तता है, वह मेरी आज्ञाका तोड़नेवाला पुरुष मेरा द्वेषी है—वह न मेरा भक्त है और न वैष्णव ही है।'

शब्दप्रवृत्तिहेतूनां जात्यादीनामसम्भवात् शब्देन वक्तुमशक्यत्वात् शब्दातिगः,

'यतो वाचो निवर्तन्ते
अप्राप्य मनसा सह।'
(तै० उ० २।४)

'न शब्दगोचरं यस्य
योगिध्येयं परं पदम्।'
(वि० पु० १।१७।२२)

इत्यादि श्रुतिस्मृतिभ्यः।

शब्दकी प्रवृत्तिके हेतु जाति आदि भगवान्‌में सम्भव न होनेके कारण वे शब्दसे नहीं कहे जा सकते, इसलिये शब्दातिग हैं। 'जिसे प्राप्त न होकर मनसहित वाणी लौट आती है', 'जिसका योगियोंसे ध्यान किया जानेवाला पद शब्दका विषय नहीं है।' इत्यादि श्रुति-स्मृतियोंसे [यही बात सिद्ध होती है।]

सर्वे वेदाः तात्पर्येण तमेव वदन्तीति शब्दसहः; 'सर्वे वेदा यत् पदमामनन्ति' (क० उ० १।२।१५) इति श्रुतेः, 'वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः' (गीता १५।१५) इति स्मृतेश्च।

समस्त वेद तात्पर्यरूपसे भगवान्‌का ही वर्णन करते हैं, इसलिये वे शब्दसह हैं, जैसा कि 'जिस [ब्रह्म] पदका समस्त वेद वर्णन करते हैं' इत्यादि श्रुति और 'समस्त वेदोंसे भी मैं ही जानने योग्य हूँ' इत्यादि स्मृति कहती है।

तापत्रयाभितप्तानां विश्रामस्थानत्वात् शिशिरः।

तापत्रयसे तपे हुओंके लिये विश्रामके स्थान होनेके कारण शिशिर हैं।

संसारिणामात्मा शर्वरीव शर्वरी; ज्ञानिनां पुनः संसारः शर्वरी;

संसारियोंके लिये आत्मा शर्वरी [रात्रि] के समान शर्वरी है तथा ज्ञानियोंको संसार ही शर्वरी है।

तामुभयेषां करोतीति शर्वरीकरः;
'या निशा सर्वभूतानां
तस्यां जागर्ति संयमी ।
यस्यां जाग्रति भूतानि
सा निशा पश्यतो मुनेः ॥'
(गीता २ । ६९)
इति भगवद्वचनात् ॥ ११० ॥

उन (ज्ञानी-अज्ञानी) दोनोंकी शर्वरियोंके करनेवाले होनेसे भगवान् शर्वरीकर हैं । जैसा कि भगवान्ने कहा है— 'समस्त भूतोंकी जो रात्रि है उसमें संयमी पुरुष जागता है और जिसमें सब भूत जागते हैं, द्रष्टा (तत्त्वज्ञानी) मुनिके लिये वही रात्रि है' ॥ ११० ॥

अक्रूरः पेशलो दक्षो दक्षिणः क्षमिणां वरः ।
विद्वत्तमो वीतभयः पुण्यश्रवणकीर्तनः ॥ १११ ॥

९१५ अक्रूरः, ९१६ पेशलः, ९१७ दक्षः, ९१८ दक्षिणः, ९१९ क्षमिणां वरः । ९२० विद्वत्तमः, ९२१ वीतभयः, ९२२ पुण्यश्रवणकीर्तनः ॥

क्रौर्यं नाम मनोधर्मः प्रकोपजः आन्तरः सन्तापः साभिनिवेशः, अवाप्तसमस्तकामत्वात् कामाभावादेव कोपाभावः; तस्मात् क्रौर्यमस्य नास्तीति अक्रूरः ।

क्रूरता मनका धर्म है, यह क्रोधसे उत्पन्न होनेवाला अभिनिवेशयुक्त आन्तरिक सन्ताप है; आप्तकाम होनेसे कामनाओंका अभाव होनेके कारण ही भगवान्में क्रोधका भी अभाव है, अतः भगवान्में क्रूरता नहीं है, इसलिये वे अक्रूर हैं ।

कर्मणा मनसा वाचा वपुषा च शोभनत्वात् पेशलः ।

कर्म, मन, वाणी और शरीरसे सुन्दर होनेके कारण भगवान् पेशल हैं ।

प्रवृद्धः शक्तः शीघ्रकारी च दक्षः त्रयं चैतत् परस्मिन्नियतमिति दक्षः ।

बढ़ा-चढ़ा, शक्तिमान् तथा शीघ्र कार्य करनेवाला—ये तीन दक्ष हैं । ये परमात्मामें निश्चित हैं, इसलिये वे दक्ष हैं ।

दक्षिणशब्दस्यापि दक्ष एवार्थः; पुनरुक्तिदोषो नास्ति, शब्दभेदात्; अथवा दक्षते गच्छति, हिनस्तीति वा दक्षिणः, 'दक्ष गतिहिंसनयोः' **इति धातुपाठात् ।**

दक्षिण शब्दका अर्थ भी दक्ष ही है, शब्द-भेद होनेके कारण यहाँ पुनरुक्ति दोष नहीं है । अथवा **'दक्ष धातुका गति और हिंसा अर्थमें प्रयोग होता है'** इस धातुपाठके अनुसार भगवान् [सब ओर] जाते और [सबको] मारते हैं, इसलिये **दक्षिण** हैं ।

क्षमावतां योगिनां च पृथिव्यादीनां भारधारकाणां च श्रेष्ठ इति क्षमिणां वरः । 'क्षमया पृथिवीसमः' (वा० रा० १ । १ । १८) **इति वाल्मीकिवचनात् । ब्रह्माण्डमखिलं वहन् पृथिवीव भारेण नार्दित इति पृथिव्या अपि वरो वा क्षमिणः शक्ताः, अयं तु सर्वशक्तिमत्त्वात् सकलाः क्रियाः कर्तुं क्षमत इति वा क्षमिणां वरः ।**

क्षमा करनेवाले योगियोंमें और भार धारण करनेवाले पृथ्वी आदिमें श्रेष्ठ हैं, इसलिये, **क्षमिणां वर** हैं । वाल्मीकिजीका कथन है—'[**राम**] **क्षमामें पृथ्वीके समान** हैं ।' अथवा सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको धारण करते हुए भी पृथ्वीके समान उसके भारसे पीड़ित नहीं होते, इसलिये पृथ्वीसे भी श्रेष्ठ होनेके कारण क्षमिणां वर हैं । अथवा क्षमी समर्थोंको कहते हैं, भगवान् सर्वशक्तिमान् होनेके कारण सभी कर्म करनेमें समर्थ हैं, इसलिये क्षमिणां वर हैं ।

निरस्तातिशयं ज्ञानं सर्वदा सर्वगोचरमस्यास्ति नेतरेषामिति विद्वत्तमः ।

भगवान्‌को सदा सब प्रकारका निरतिशय ज्ञान है और किसीको नहीं है, इसलिये वे **विद्वत्तम** हैं ।

वीतं विगतं भयं सांसारिकं संसारलक्षणं वा अस्येति वीतभयः, **सर्वेश्वरत्वान्नित्यमुक्तत्वाच्च ।**

सर्वेश्वर और नित्यमुक्त होनेके कारण भगवान्‌का सांसारिक अर्थात् संसाररूप भय वीत [निवृत्त हो] गया है, इसलिये वे **वीतभय** हैं ।

पुण्यं पुण्यकरं श्रवणं कीर्तनं चास्येति पुण्यश्रवणकीर्तनः,
'य इदं शृणुयान्नित्यं
यश्चापि परिकीर्तयेत् ।
नाशुभं प्राप्नुयात् किञ्चित्
सोऽमुत्रेह च मानवः ॥'
(वि० स० १२२)
इति श्रवणादिफलवचनात् ॥ १११ ॥

भगवान्का श्रवण और कीर्तन पुण्यरूप अर्थात् पुण्यकारक है, इसलिये वे **पुण्यश्रवणकीर्तन** हैं; क्योंकि 'जो इसे नित्य सुनेगा और जो इनका कीर्तन करेगा, उस मनुष्यको इस लोक या परलोकमें बुरा फल नहीं मिलेगा।' इत्यादि वाक्योंसे श्रवण आदिका फल बतलाया गया है ॥ १११ ॥

उत्तारणो दुष्कृतिहा पुण्यो दुःस्वप्ननाशनः ।
वीरहा रक्षणः सन्तो जीवनः पर्यवस्थितः ॥११२॥

९२३ उत्तारणः, ९२४ दुष्कृतिहा, ९२५ पुण्यः, ९२६ दुःस्वप्ननाशनः । ९२७ वीरहा, ९२८ रक्षणः, ९२९ सन्तः, ९३० जीवनः, ९३१ पर्यवस्थितः ॥

संसारसागरादुत्तारयतीति उत्तारणः ।

संसार-सागरसे पार उतारते हैं, इसलिये **उत्तारण** हैं ।

दुष्कृतीः पापसंज्ञिता हन्तीति दुष्कृतिहा, ये पापकारिणस्तान् हन्तीति वा दुष्कृतिहा ।

पापनामकी दुष्कृतियोंका हनन करते हैं, इसलिये **दुष्कृतिहा** हैं; अथवा जो पाप करनेवाले हैं, उन्हें मारते हैं, इसलिये दुष्कृतिहा हैं ।

स्मरणादि कुर्वतां सर्वेषां पुण्यं करोतीति, सर्वेषां श्रुतिस्मृतिलक्षणया वाचा पुण्यमाचष्ट इति वा पुण्यः ।

स्मरण आदि करनेवाले सब पुरुषोंका पुण्य-कर्म सम्पन्न करते हैं, इसलिये अथवा श्रुति-स्मृतिरूप वाणीसे सबको पुण्यका उपदेश देते हैं, इसलिये **पुण्य** हैं ।

भाविनोऽनर्थस्य सूचकान् दुःस्वप्नान् नाशयति ध्यातः स्तुतः कीर्तितः पूजितश्चेति दुःस्वप्ननाशनः ।

ध्यान, स्मरण, कीर्तन और पूजन किये जानेपर भावी अनर्थके सूचक दुःस्वप्नोंको नष्ट कर देते हैं, इसलिये दुःस्वप्ननाशन* हैं ।

विविधाः संसारिणां गतिर्मुक्तिप्रदानेन हन्तीति वीरहा ।

संसारियोंको मुक्ति देकर उनकी विविध गतियोंका हनन करते हैं, इसलिये वीरहा हैं ।

सत्त्वं गुणमधिष्ठाय जगत्त्रयं रक्षन् रक्षणः; नन्द्यादित्वात् कर्तरि ल्युः ।

सत्त्वगुणके आश्रयसे तीनों लोकोंकी रक्षा करनेके कारण रक्षण हैं । यहाँ नन्द्यादिगण मानकर रक्ष धातुसे कर्ता-अर्थमें ल्युप्रत्यय हुआ है ।

सन्मार्गवर्तिनः सन्तः; तद्रूपेण विद्याविनयवृद्धये स एव वर्तत इति सन्तः ।

सन्मार्गपर चलनेवालोंको सन्त कहते हैं, विद्या और विनयकी वृद्धिके लिये सन्तरूपसे भगवान् स्वयं ही विराजते हैं, इसलिये वे सन्त हैं ।

सर्वाः प्रजाः प्राणरूपेण जीवयन् जीवनः ।

प्राणरूपसे समस्त प्रजाको जीवित रखनेके कारण जीवन हैं ।

परितः सर्वतो विश्वं व्याप्यावस्थित इति पर्यवस्थितः ॥ ११२ ॥

विश्वको परितः—सब ओरसे व्याप्त करके स्थित हैं, इसलिये पर्यवस्थित हैं ॥ ११२ ॥

अनन्तरूपोऽनन्तश्रीर्जितमन्युर्भयापहः ।
चतुरश्रो गभीरात्मा विदिशो व्यादिशो दिशः ॥ ११३ ॥

९३२ अनन्तरूपः, ९३३ अनन्तश्रीः, ९३४ जितमन्युः, ९३५ भयापहः । ९३६ चतुरश्रः, ९३७ गभीरात्मा, ९३८ विदिशः ९३९ व्यादिशः, ९४० दिशः ॥

* संसाररूप, दुःस्वप्नका नाश करनेवाले हैं, इसलिये भी दुःस्वप्ननाशन हैं ।

अनन्तानि रूपाण्यस्य विश्वप्रपञ्चरूपेण स्थितस्येति अनन्तरूपः ।

अनन्ता अपरिमिता श्रीः परा शक्तिरस्येति अनन्तश्रीः, 'परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते' (श्वे० उ० ६ । ८) **इति श्रुतेः ।**

मन्युः क्रोधो जितो येन स जितमन्युः ।

भयं संसारजं पुंसामपघ्नन् भयापहः ।

न्यायसमवेतः चतुरश्रः, **पुंसां कर्मानुरूपं फलं प्रयच्छतीति ।**

आत्मा स्वरूपं चित्तं वा गभीरं परिच्छेत्तुमशक्यमस्येति गभीरात्मा ।

विविधानि फलानि अधिकारिभ्यो विशेषेण दिशतीति विदिशः ।

विविधामाज्ञां शक्रादीनां कुर्वन् व्यादिशः ।

समस्तानां कर्मणां फलानि दिशन् वेदात्मना दिशः ॥११३॥

विश्वप्रपञ्चरूपसे स्थित हुए भगवान्‌के अनन्त रूप हैं, इसलिये वे **अनन्तरूप** हैं ।

भगवान्‌की श्री अर्थात् परा शक्ति अनन्त यानी अपरिमित है, इसलिये वे **अनन्तश्री** हैं । श्रुति कहती है-- **'इसकी परा शक्ति विविध प्रकारकी ही सुनी जाती है ।'**

जिन्होंने मन्यु अर्थात् क्रोधको जीत लिया है, वे भगवान् **जितमन्यु** हैं ।

पुरुषोंका संसारजन्य भय नष्ट करनेके कारण **भयापह** हैं ।

पुरुषोंको उनके कर्मानुसार फल देते हैं, इसलिये न्याययुक्त होनेके कारण **चतुरश्र** हैं ।

भगवान्‌का आत्मा-स्वरूप अथवा मन गम्भीर है, उसका परिच्छेद--परिमाण नहीं किया जा सकता, इसलिये वे **गभीरात्मा** हैं ।

अधिकारियोंको विशेषरूपसे विविध प्रकारके फल देते हैं, इसलिये भगवान् **विदिश** हैं ।

इन्द्रादिको विविध प्रकारकी आज्ञा करनेसे **व्यादिश** हैं ।

वेदरूपसे समस्त कर्मियोंको उनके कर्मोंके फल देते हैं, इसलिये **दिश** हैं ॥ ११३ ॥

अनादिर्भूर्भुवो लक्ष्मीः सुवीरो रुचिराङ्गदः ।
जननो जनजन्मादिर्भीमो भीमपराक्रमः ॥११४॥

९४१ अनादिः, ९४२ भूर्भुवः, ९४३ लक्ष्मीः, ९४४ सुवीरः, ९४५ रुचि-राङ्गदः । ९४६ जननः, ९४७ जनजन्मादिः, ९४८ भीमः, ९४९ भीम-पराक्रमः ॥

आदिः कारणमस्य न विद्यत इति अनादिः, **सर्वकारणत्वात् ।**

सबके कारण होनेसे भगवान्‌का कोई आदि अर्थात् कारण नहीं है, इसलिये वे **अनादि** हैं ।

भूराधारः, भुवः सर्वभूताश्रयत्वेन प्रसिद्धाया भूम्याः भुवोऽपि भूरिति भूर्भुवः ।

भू आधारको कहते हैं, भुवः अर्थात् समस्त भूतोंके आधाररूपसे प्रसिद्ध भूमिकी भी भू (आधार) हैं, इसलिये भगवान् **भूर्भुवः** हैं ।

अथवा, न केवलमसौ भूः भुवः, लक्ष्मीः शोभा चेति भुवो लक्ष्मीः । **अथवा, भूः भूर्लोकः; भुवः भुवर्लोकः; लक्ष्मीः आत्मविद्या,** 'आत्मविद्या च देवि त्वम्' **इति श्रीस्तुतौ । भूम्यन्तरिक्षयोः शोभेति वा भूर्भुवो लक्ष्मीः ।**

अथवा पृथ्वीके केवल आधार ही नहीं बल्कि लक्ष्मी अर्थात् शोभा भी वे ही हैं, इसलिये **लक्ष्मी** हैं । अथवा भूर्लोकको भूः और भुवर्लोकको भुवः तथा आत्मविद्याको ही लक्ष्मी कहा है । श्रीस्तुतिमें कहा है—**'हे देवि ! आत्मविद्या भी तू ही है ।'** अथवा भूमि और अन्तरिक्षकी शोभा हैं, इसलिये ही भगवान् भूर्भुवो लक्ष्मी हैं ।

शोभना विविधा ईरा गतयो यस्य स सुवीरः; **शोभनं विविधम् ईर्ते इति वा सुवीरः ।**

जिनकी विविध ईरा—गतियाँ शुभ हैं, वे भगवान् **सुवीर** हैं । अथवा वे विविध प्रकारसे सुन्दर ईरण (स्फुरण) करते हैं, इसलिये वे सुवीर हैं ।

रुचिरे कल्याणे अङ्गदे अस्येति रुचिराङ्गदः ।

जन्तून् जनयन् जननः; ल्युड्-विधौ बहुलग्रहणात् कर्तरि ल्युट्-प्रत्ययः प्रयोगवचनादिवत् ।

जनस्य जनिमतो जन्म उद्भवः तस्यादिर्मूलकारणमिति जन-जन्मादिः ।

भयहेतुत्वाद् भीमः, 'भीमादयोऽपादाने' (पा० सू० ३ । ४ । ७४) इति निपातनात्, 'महद्भयं वज्रमुद्यतम्' इति श्रुतेः ।

असुरादीनां भयहेतुः पराक्रमोऽस्यावतारेष्विति भीमपराक्रमः ॥ ११४ ॥

भगवान्‌के अङ्गद (भुजबन्ध) रुचिर अर्थात् कल्याणरूप हैं, इसलिये वे **रुचिराङ्गद** हैं ।

जन्तुओंको उत्पन्न करनेके कारण **जनन** हैं । **'कृत्यल्युटो बहुलम्'** (पा० सू० ३ । ३ । ११३) इस ल्युड्-विधायक सूत्रमें 'बहुलम्' शब्दका उपादान होनेके कारण प्रयोगवचन आदि शब्दोंकी भाँति यहाँ कर्ता अर्थमें ल्युटप्रत्यय हुआ है ।

जन्म लेनेवाले जीवके जन्म अर्थात् उत्पत्तिके आदि यानी मूलकारण हैं, इसलिये **जनजन्मादि** हैं ।

भयके कारण होनेसे **भीम** हैं, **'भीमादयोऽपादाने'** इस सूत्रके अनुसार भीम शब्दका निपातन किया गया है । मन्त्रवर्ण कहता है—**'महान् भयरूप वज्र उद्यत (उठा हुआ) है ।'**

अवतारोंमें भगवान्‌का पराक्रम असुरादिकोंके भयका कारण होता है, इसलिये वे **भीमपराक्रम** हैं ॥ ११४ ॥



आधारनिलयोऽधाता पुष्पहासः प्रजागरः ।
ऊर्ध्वगः सत्पथाचारः प्राणदः प्रणवः पणः ॥ ११५ ॥

९५० आधारनिलयः, ९५१ अधाता, [धाता], ९५२ पुष्पहासः, ९५३ प्रजागरः । ९५४ ऊर्ध्वगः, ९५५ सत्पथाचारः, ९५६ प्राणदः, ९५७ प्रणवः, ९५८ पणः ।

पृथिव्यादीनां पञ्चभूताना-माधाराणामाधारत्वात् आधारनिलयः ।

पृथिवी आदि पञ्चभूत आधारोंके भी आधार हैं, इसलिये परमेश्वर **आधारनिलय** हैं ।

स्वात्मना धृतस्यास्यान्यो धाता नास्तीति अधाता; 'नद्यृतश्च' (पा० सू० ५ । ४ । १५३) इति 'समासान्तविधिरनित्यः' (परिभाषेन्दुशेखरे ८६) इति कप्प्रत्ययाभावः । संहारसमये सर्वाः प्रजा धयति पिबतीति वा धाता; धेट् पाने इति धातुः ।

अपने-आप स्थित हुए भगवान्का कोई और धाता (बनानेवाला) नहीं हैं, इसलिये वे **अधाता** हैं । यहाँ **'नद्यृतश्च'** इस सूत्रसे प्राप्त होनेवाला 'कप' प्रत्ययका **'समासान्त-विधि अनित्य होती है'** इस परिभाषाके अनुसार अभाव है । अथवा प्रलय-कालमें सम्पूर्ण प्रजाका धयन अर्थात् पान करते हैं, इसलिये **धाता** हैं । यहाँ [धाता शब्दमें] पान-अर्थका वाचक धेट् धातु है ।

मुकुलात्मना स्थितानां पुष्पाणां हासवत् प्रपञ्चरूपेण विकासोऽस्येति पुष्पहासः ।

कलिकारूपसे स्थित पुष्पोंके हास (खिलने) के समान भगवान्का प्रपञ्च-रूपसे विकास होता है, इसलिये वे **पुष्पहास** हैं ।

नित्यप्रबुद्धस्वरूपत्वात् प्रकर्षेण जागर्तीति प्रजागरः ।

नित्यप्रबुद्ध होनेके कारण प्रकर्षरूपसे जागते हैं, इसलिये भगवान् **प्रजागर** हैं ।

सर्वेषामुपरि तिष्ठन् ऊर्ध्वगः ।

सबसे ऊपर रहनेके कारण **ऊर्ध्वग** हैं ।

सतां कर्माणि सत्पथास्तानाचरत्येष इति सत्पथाचारः ।

सत्पुरुषोंके कर्मोंको सत्पथ कहते हैं, उनका आचरण करते हैं, इसलिये **सत्पथाचार** हैं ।

मृतान् परीक्षित्प्रभृतीन् जीवयन् प्राणदः ।

परीक्षित् आदि मरे हुओंको जीवित करनेके कारण **प्राणद** हैं ।

प्रणवो नाम परमात्मनो वाचक ओङ्कारः; तदभेदोपचारेणायं प्रणवः ।

परमात्माके वाचक ॐकारका नाम प्रणव है, उसके साथ अभेदका उपचार (व्यवहार) होनेसे परमात्मा **प्रणव** हैं ।

पणतिर्व्यवहारार्थः; तं कुर्वन् पणः,

'सर्वाणि रूपाणि विचित्य धीरो
नामानि कृत्वाभिवदन् यदस्ते ॥'
(तै० आ० उ० १ । २ । ७)

इति श्रुतेः । पुण्यानि सर्वाणि कर्माणि पणं सङ्गृह्याधिकारिभ्यः तत्फलं प्रयच्छतीति वा लक्षणया पणः ॥ ११५ ॥

पण धातुका व्यवहार अर्थ है । व्यवहार करनेके कारण भगवान् **पण** हैं । श्रुति कहती है—**'धीर पुरुष सब रूपोंको विचारकर उनके नामकी कल्पना करके कहता हुआ स्थित होता है'** अथवा समग्र पुण्यकर्मोंका पणरूपसे संग्रह करके अधिकारियोंको उनका फल देते हैं, इसलिये लक्षणावृत्तिसे पण कहे जाते हैं ॥ ११५ ॥



प्रमाणं प्राणनिलयः प्राणभृत् प्राणजीवनः ।
तत्त्वं तत्त्वविदेकात्मा जन्ममृत्युजरातिगः ॥ ११६ ॥

९५९ प्रमाणम्, ९६० प्राणनिलयः, ९६१ प्राणभृत्, ९६२ प्राणजीवनः । ९६३ तत्त्वम्, ९६४ तत्त्ववित्, ९६५ एकात्मा, ९६६ जन्ममृत्युजरातिगः ॥

प्रमिति संवित् स्वयंप्रभा प्रमाणम्, 'प्रज्ञानं ब्रह्म' (ऐ० उ० ३ । ५ । ३) **इति श्रुतेः ।**

'ज्ञानस्वरूपमत्यन्त-
निर्मलं परमार्थतः ।
तमेवार्थस्वरूपेण
भ्रान्तिदर्शनतः स्थितम् ॥'
(१ । २ । ६)

इति विष्णुपुराणे ।

प्रमिति-संवित् अर्थात् स्वयंप्रभारूप होनेसे भगवान् **प्रमाण** हैं । श्रुति कहती है—**'प्रज्ञान ब्रह्म है ।'** विष्णुपुराणमें कहा है—**'जो परमार्थतः अत्यन्त निर्मल ज्ञानरूप हैं, किन्तु भ्रान्तदृष्टिसे देखनेपर पदार्थरूपसे स्थित हैं, उन्हें [प्रणाम करके] ।'**

प्राणा इन्द्रियाणि यत्र जीवे निलीयन्ते तत्परतन्त्रत्वात्, देहस्य धारकाः प्राणापानादयो वा तस्मिन्निलीयन्ते; प्राणितीति प्राणो जीवः परे पुंसि निलीयत इति वा प्राणान् जीवांश्च संहरन्निति वा प्राणनिलयः।

उसके अधीन होनेसे प्राण अर्थात् इन्द्रियाँ जिस जीवमें लीन होती हैं [वह प्राणनिलय है]। अथवा देहधारण करनेवाले प्राण, अपान आदि उसमें (जीवमें) लीन होते हैं, इसलिये [वह प्राणनिलय] हैं, जो प्राणित (जीवित) रहता है, वह जीव ही प्राण है, वह परम पुरुषमें लीन होता है, इसलिये [परमपुरुष प्राणनिलय है]। अथवा प्राण और जीवोंको अपने-आपमें संहृत करते हैं, इसलिये **प्राणनिलय** हैं।

पोषयन्नन्नरूपेण प्राणान् प्राणभृत्।

अन्नरूपसे प्राणोंका पोषण करनेके कारण **प्राणभृत्** हैं।

प्राणिनो जीवयन् प्राणाख्यैः पवनैः प्राणजीवनः,

'न प्राणेन नापानेन
मर्त्यो जीवति कश्चन।
इतरेण तु जीवन्ति
यस्मिन्नेतावुपाश्रितौ ॥'
(क० उ० २।२।५)

इति मन्त्रवर्णात्।

प्राण नामक वायुसे प्राणियोंको जीवित रखनेके कारण **प्राणजीवन** हैं। मन्त्रवर्ण कहता है—'कोई भी मनुष्य न प्राणसे जीता है न अपानसे, बल्कि किसी औरहीसे जीते हैं, जिसमें कि ये दोनों आश्रित हैं।'

तत्त्वं तथ्यममृतं सत्यं परमार्थतः सतत्त्वमित्येते एकार्थवाचिनः परमार्थसतो ब्रह्मणो वाचकाः शब्दाः।

तथ्य, अमृत, सत्य और परमार्थतः सतत्त्व ये सब शब्द एक वास्तविक सत्स्वरूप ब्रह्मके ही वाचक हैं, अतः वह **तत्त्व** है।

तत्त्वं स्वरूपं यथावद् वेत्तीति तत्त्ववित्।

तत्त्व अर्थात् स्वरूपको यथावत् जानते हैं, इसलिये भगवान् **तत्त्ववित्** हैं।

*

एकश्चासावात्मा चेति एकात्मा, 'आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्' (ऐ० उ० १ । १) **इति श्रुतेः ।**

'यच्चाप्नोति यदादत्ते
यच्चानि विषयानिह ।
यच्चास्य सन्ततो भाव-
स्तस्मादात्मेति गीयते ॥'

इति स्मृतेश्च ।

जायते अस्ति वर्धते विपरिणमते अपक्षीयते नश्यति इति षड्भावविकारानतीत्य गच्छतीति जन्ममृत्युजरातिगः 'न जायते म्रियते वा विपश्चित्' (क० उ० १ । २ । १८) **इति मन्त्रवर्णात्** ॥ ११६ ॥

भगवान् एक आत्मा हैं, इसलिये वे **एकात्मा** हैं । श्रुति कहती है—**'पहले यह एक आत्मा ही था ।'** स्मृतिका भी कथन है—**'क्योंकि सब विषयोंको प्राप्त करता, ग्रहण करता और भक्षण करता है तथा निरन्तर वर्तमान रहता है, इसलिये यह आत्मा कहा जाता है ।'**

जन्म लेना, होना, बढ़ना, बदलना, क्षीण होना और नष्ट होना—ये छः भावविकार हैं । इनका अतिक्रमण कर जाते हैं, इसलिये भगवान् **जन्ममृत्युजरातिग** हैं, जैसा कि मन्त्रवर्ण कहता है—**'ज्ञानस्वरूप आत्मा न जन्म लेता है न मरता है'** ॥ ११६ ॥



भूर्भुवःस्वस्तरुस्तारः सविता प्रपितामहः ।
यज्ञो यज्ञपतिर्यज्वा यज्ञाङ्गो यज्ञवाहनः ॥११७॥

९६७ भूर्भुवःस्वस्तरुः, ९६८ तारः, ९६९ सविता, ९७० प्रपितामहः । ९७१ यज्ञः, ९७२ यज्ञपतिः, ९७३ यज्वा, ९७४ यज्ञाङ्गः, ९७५ यज्ञवाहनः ॥

भूर्भुवःस्वः समाख्यानि त्रीणि व्याहृतिरूपाणि शुक्राणि त्रयीसाराणि बह्वृचा आहुः; तैर्होमादिना जगत्त्रयं तरति, प्लवते वेति

बह्वृचोंने भूः, भुवः और स्वः नामक तीन व्याहृतियोंको वेदत्रयीका शुक्र—सार बतलाया है । उनके द्वारा होमादि करके तीनों लोककी प्रजा तरती अथवा पार होती है, इसलिये वह

भूर्भुवःस्वस्तरुः;

'अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्य-
गादित्यमुपतिष्ठते ।
आदित्याज्जायते वृष्टि-
र्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥'
(३ । ७६)

इति मनुवचनात्; अथवा भूर्भुवःस्वःसमाख्यलोकत्रयसंसारवृक्षो भूर्भुवःस्वस्तरुः; भूर्भुवःस्वराख्यं लोकत्रयं वृक्षवद् व्याप्य तिष्ठतीति वा भूर्भुवःस्वस्तरुः ।

संसारसागरं तारयन् तारः; प्रणवो वा ।

सर्वस्य लोकस्य जनक इति सविता ।

पितामहस्य ब्रह्मणोऽपि पितेति प्रपितामहः ।

यज्ञात्मना यज्ञः ।

यज्ञानां पाता, स्वामी वा यज्ञपतिः, 'अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च ।' (गीता ९ । २४) इति भगवद्वचनात् ।

यजमानात्मना तिष्ठन् यज्वा ।

यज्ञा अङ्गान्यस्येति वराहमूर्तिः यज्ञाङ्गः;

[त्रयीसार] भूर्भुवःस्वस्तरु है । मनुजीका वाक्य है--'अग्निमें भली प्रकार दी हुई आहुति सूर्यमें स्थित होती है, सूर्यसे वर्षा होती है, वर्षासे अन्न होता है और फिर उससे प्रजा होती है ।' अथवा भूर्भुवःस्वस्तरु नामक लोकत्रयरूप संसारवृक्ष ही भूर्भुवःस्वस्तरु है । अथवा भूः, भुवः और स्वः नामक त्रिलोकीको वृक्षके समान व्याप्त करके स्थित हैं, इसलिये वे भूर्भुवःस्वस्तरु हैं ।

संसारसागरसे तारनेके कारण भगवान् तार हैं, अथवा प्रणव तार हैं ।

सम्पूर्ण लोकके उत्पन्न करनेवाले होनेसे भगवान् सविता हैं ।

पितामह ब्रह्माजीके भी पिता होनेसे प्रपितामह हैं ।

यज्ञरूप होनेसे यज्ञ हैं ।

यज्ञोंके पालक अर्थात् स्वामी होनेसे यज्ञपति हैं । श्रीभगवान्‌ने कहा है--'सब यज्ञोंका भोक्ता और प्रभु मैं ही हूँ ।'

यजमानरूपसे स्थित होनेके कारण यज्वा हैं ।

यज्ञ वराह भगवान्‌के अङ्ग हैं, इसलिये वे यज्ञाङ्ग हैं । हरिवंशमें कहा

वेदपादो यूपदंष्ट्रः
क्रतुहस्तश्चितीमुखः ।
अग्निजिह्वो दर्भरोमा
ब्रह्मशीर्षो महातपाः ॥
अहोरात्रेक्षणो दिव्यो
वेदाङ्गश्रुतिभूषणः ।
आज्यनासः स्रुवतुण्डः
सामघोषस्वनो महान् ॥
धर्मसत्यमयः श्रीमान्
क्रमविक्रमसत्क्रियः ।
प्रायश्चित्तनखो घोरः
पशुजानुर्महाभुजः ॥
उद्गात्रन्त्रो होमलिङ्गो
बीजौषधिमहाफलः ।
वाय्वन्तरात्मा मन्त्रस्फिग्
विक्रमः सोमशोणितः ॥
वेदीस्कन्धो हविर्गन्धो
हव्यकव्यातिवेगवान् ।
प्राग्वंशकायो द्युतिमा-
न्नानादीक्षाभिरर्चितः ॥
दक्षिणाहृदयो योगी
महासत्रमयो महान् ।
उपाकर्मोष्ठरुचकः
प्रवर्ग्यावर्तभूषणः ॥

है '[वे यज्ञमूर्ति वराह भगवान्] वेदरूप चरण, यूपरूप दाढ़, क्रतुरूप हाथ, चितीरूप मुख, अग्निरूप जिह्वा, दर्भरूप रोम तथा ब्रह्मरूप सिरवाले और महान् तपस्वी हैं। वे दिव्य स्वरूप हैं, रात और दिन उनके नेत्र हैं, छहों वेदाङ्ग कर्णभूषण हैं, घृत नासिका है, स्रुवा थुथुनी है और सामवेद घोष है । वे महान् धर्म सत्यमय तथा श्रीसम्पन्न हैं, और क्रम-विक्रमरूप सत्क्रियाओंवाले, प्रायश्चित्तरूप नखोंवाले, भयंकर तथा यज्ञपशुरूप घुटनोंवाले एवं महान् भुजाओंवाले हैं और उद्गाता उनकी आँतें हैं, होम लिङ्ग है, बीज और ओषधि महान् फल हैं, वायु अन्तरात्मा है, मन्त्र त्वचा है और सोमरस रक्त है तथा वे विशेष क्रम (गति) वाले हैं । वेदी उनका स्कन्ध (कन्धा) है, हवि गन्ध है तथा वे हव्य-कव्यरूप अत्यन्त वेगवाले, प्राग्वंश* रूप शरीरवाले, बड़े तेजस्वी और नाना प्रकारकी दीक्षाओंसे अर्चित हैं । वह महासत्रमय महायोगी दक्षिणारूप हृदयवाले, उपाकर्मरूप होंठ और दाँतोंवाले तथा प्रवर्ग्यरूप आवर्तों (रोमसंस्थानों) से विभूषित हैं । नाना प्रकारके छन्द उनके आने-जाने-

* यज्ञशालाके पूर्व भागमें यजमान आदिके ठहरनेके लिये बने हुए घरको प्राग्वंश कहते हैं ।

नानाच्छन्दोगतिपथो
गुह्योपनिषदासनः ।
छायापत्नीसहायो वै
मेरुश्रृङ्ग इवोच्छ्रितः ॥'
(३ । ३४ । ३४–४१)

इति हरिवंशे ।

का मार्ग है, अति गुह्य उपनिषद् आसन (बैठनेका स्थान) है तथा मेरुश्रृङ्गके समान ऊँचे शरीरवाले वे (वराह भगवान्) अपनी छायारूप पत्नीके सहित विराजमान हैं ।'

फलहेतुभूतान् यज्ञान् वाहयतीति यज्ञवाहनः ॥ ११७ ॥

फलके हेतुभूत यज्ञोंका वहन करते हैं, इसलिये वे **यज्ञवाहन** हैं ॥११७॥

यज्ञभृद् यज्ञकृद् यज्ञी यज्ञभुग् यज्ञसाधनः ।
यज्ञान्तकृद् यज्ञगुह्यमन्नमन्नाद एव च ॥११८॥

९७६ यज्ञभृत्, ९७७ यज्ञकृत्, ९७८ यज्ञी, ९७९ यज्ञभुक्, ९८० यज्ञसाधनः ।
९८१ यज्ञान्तकृत्, ९८२ यज्ञगुह्यम्, ९८३ अन्नम्, ९८४ अन्नादः, एव च ॥

यज्ञं बिभर्ति पातीति वा यज्ञभृत् ।

यज्ञको धारण करते अथवा उसकी रक्षा करते हैं, इसलिये भगवान् **यज्ञभृत्** हैं ।

जगदादौ तदन्ते च यज्ञं करोति, कृन्ततीति वा यज्ञकृत् ।

जगत्के आरम्भ और अन्तमें यज्ञ करते अथवा यज्ञ काटते हैं, इसलिये **यज्ञकृत्** हैं ।

यज्ञानां तत्समाराधनात्मनां शेषीति यज्ञी ।

अपने आराधनात्मक यज्ञोंके शेषी [अर्थात् शेषकी पूर्ति करनेवाले] हैं, इसलिये **यज्ञी** हैं ।

यज्ञं भुङ्क्ते, भुनक्तीति वा यज्ञभुक् ।

यज्ञको भोगते अथवा उसकी रक्षा करते हैं, इसलिये **यज्ञभुक्** हैं ।

यज्ञाः साधनं तत्प्राप्ताविति यज्ञसाधनः ।

यज्ञ उनकी प्राप्तिका साधन है, इसलिये वे **यज्ञसाधन** हैं ।

यज्ञस्यान्तं फलप्राप्तिं कुर्वन् यज्ञान्तकृत् । वैष्णवऋक्छंसनेन पूर्णाहुत्या पूर्णं कृत्वा यज्ञसमाप्तिं करोतीति वा यज्ञान्तकृत् ।

यज्ञका अन्त अर्थात् उसके फलकी प्राप्ति करानेके कारण **यज्ञान्तकृत्** हैं । अथवा वैष्णव ऋक्का उच्चारण करते हुए पूर्णाहुतिसे पूर्ण करके यज्ञ समाप्त करते हैं, इसलिये यज्ञान्तकृत् हैं ।

यज्ञानां गुह्यं ज्ञानयज्ञः, फलाभिसन्धिरहितो वा यज्ञः; तदभेदोपचाराद् ब्रह्म यज्ञगुह्यम् ।

यज्ञोंमें ज्ञान-यज्ञ अथवा फलकी कामनासे रहित [कोई भी] यज्ञ गुह्य है, उसका ब्रह्मके साथ अभेद माननेसे ब्रह्म ही **यज्ञगुह्य** है ।

अद्यते भूतैः अत्ति च भूतानिति अन्नम् ।

भूतोंसे खाये जाते हैं; अथवा भूतोंको खाते हैं, इसलिये **अन्न** हैं ।

अन्नमत्तीति अन्नादः ।

अन्नको खानेवाले होनेसे **अन्नाद** हैं ।

सर्वं जगदन्नादिरूपेण भोक्तृभोग्यात्मकमेवेति दर्शयितुमेवकारः; 'च' शब्दः सर्वनाम्नामेकस्मिन् परस्मिन् पुंसि समुच्चित्य वृत्तिं दर्शयितुम् ॥ ११८ ॥

सम्पूर्ण जगत् अन्नादिरूपसे भोक्ता-भोग्यरूप ही है—यह दिखलानेके लिये एवकारका और सब नामोंकी वृत्ति समुच्चित करके एक परमपुरुषमें ही प्रदर्शित करनेके लिये च शब्दका प्रयोग किया गया है ॥ ११८ ॥

आत्मयोनिः स्वयंजातो वैखानः सामगायनः ।
देवकीनन्दनः स्रष्टा क्षितीशः पापनाशनः ॥ ११९ ॥

९८५ आत्मयोनिः, ९८६ स्वयंजातः, ९८७ वैखानः, ९८८ सामगायनः । ९८९ देवकीनन्दनः, ९९० स्रष्टा, ९९१ क्षितीशः, ९९२ पापनाशनः ॥

आत्मैव योनिरुपादानकारणं नान्यदिति आत्मयोनिः ।

निमित्तकारणमपि स एवेति दर्शयितुं स्वयंजातः, **इति** 'प्रकृतिश्च प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात्' (ब्र० सू० १ । ४ । २३) **इत्यत्र स्थापितमुभयकारणत्वं हरेः ।**

विशेषेण खननात् वैखानः; **धरणीं विशेषेण खनित्वा पातालवासिनं हिरण्याक्षं वाराहं रूपमास्थाय जघानेति पुराणे प्रसिद्धम् ।**

सामानि गायतीति सामगायनः ।

देवक्याः सुतो देवकीनन्दनः ।

'ज्योतींषि शुक्राणि च यानि लोके
त्रयो लोका लोकपालास्त्रयी च ।
त्रयोऽग्नयश्चाहुतयश्च पञ्च
सर्वे देवा देवकीपुत्र एव ॥'

इति महाभारते (अनु० १५८ । ३१) ।*

स्रष्टा **सर्वलोकस्य** ।

आत्मा ही योनि अर्थात् उपादान-कारण है और कोई नहीं, इसलिये भगवान् **आत्मयोनि** हैं ।†

निमित्त-कारण भी वही है यह दिखलानेके लिये **स्वयंजात** कहा गया है । **'प्रकृति (उपादान-कारण) और निमित्त-कारण भी ब्रह्म है; क्योंकि ऐसा माननेपर प्रतिज्ञा तथा दृष्टान्तका उपरोध नहीं होता'** इस ब्रह्मसूत्रसे श्रीहरिका निमित्त और उपादान-कारणत्व स्थापित किया गया है ।

विशेषरूपसे खोदनेके कारण **वैखान** हैं । पुराणोंमें यह प्रसिद्ध ही है कि भगवान्ने वराहरूप धारणकर पृथ्वीको विशेषरूपसे खोदकर पातालवासी हिरण्याक्षको मारा था ।

सामगान करते हैं, इसलिये **सामगायन** हैं ।

देवकीके पुत्र होनेसे **देवकीनन्दन** हैं । महाभारतमें कहा है—**'लोकमें जितनी शुभ्र ज्योतियाँ [ग्रह-नक्षत्रादि] और अग्नियाँ हैं [वे सब] तथा तीनों लोक, लोकपाल, वेदत्रयी, तीनों अग्नियाँ, पाँचों आहुतियाँ और समस्त देवगण देवकीपुत्र ही हैं ।'**

सम्पूर्ण लोकोंके रचयिता होनेसे **स्रष्टा** हैं ।

* क्योंकि भगवान् और आत्मामें अभेद है ।

† आजकल महाभारतका जो संस्करण प्रचलित है उससे इस श्लोकका कुछ पाठ-भेद है ।

क्षितेर्भूमेरीशः क्षितीशः **दशरथात्मजः ।**

क्षिति अर्थात् पृथ्वीके ईश (स्वामी) होनेके कारण दशरथपुत्र राम **क्षितीश** हैं।

कीर्तितः पूजितो ध्यातः स्मृतः पापराशिं नाशयन् पापनाशनः,

'पक्षोपवासाद् यत् पापं
पुरुषस्य प्रणश्यति ।
प्राणायामशतेनैव
तत् पापं नश्यते नृणाम् ॥
प्राणायामसहस्रेण
यत् पापं नश्यते नृणाम् ।
क्षणमात्रेण तत् पापं
हरेर्ध्यानात् प्रणश्यति ॥'

इति **वृद्धशातातपे** ॥ ११९ ॥

कीर्तन, पूजन, ध्यान और स्मरण करनेपर सम्पूर्ण पापराशिका नाश करनेके कारण भगवान् **पापनाशन** हैं । वृद्धशातातपका कथन है—**'एक पक्षतक उपवास करनेसे पुरुषका जो पाप नष्ट होता है, वह सौ प्राणायाम करनेसे नष्ट हो जाता है तथा एक सहस्र प्राणायाम करनेसे जो पाप नष्ट होता है, वह श्रीहरिका क्षणमात्र ध्यान करनेसे नष्ट हो जाता है'** ॥ ११९ ॥

शङ्खभृन्नन्दकी चक्री शार्ङ्गधन्वा गदाधरः ।
रथाङ्गपाणिरक्षोभ्यः सर्वप्रहरणायुधः ॥
सर्वप्रहरणायुध ॐ नमः ॥ १२० ॥

९९३ शङ्खभृत्, ९९४ नन्दकी, ९९५ चक्री, ९९६ शार्ङ्गधन्वा, ९९७ गदाधरः । ९९८ रथाङ्गपाणिः, ९९९ अक्षोभ्यः, १००० सर्वप्रहरणायुधः, सर्वप्रहरणायुध ॐ नमः ॥

पाञ्चजन्याख्यं भूताद्यहङ्कारात्मकं शङ्खं बिभ्रत् शङ्खभृत ।

भूतादि (तामस) अहंकाररूप पाञ्चजन्यनामक शङ्ख धारण करनेसे भगवान् **शङ्खभृत** हैं ।

विद्यामयो नन्दकाख्योऽसिरस्येति नन्दकी ।

उनके पास विद्यामय नन्दक नामक खड्ग है इसलिये वे **नन्दकी** हैं ।

मनस्तत्त्वात्मकं सुदर्शनाख्यं

मनस्तत्त्वात्मक सुदर्शन चक्र भगवान्के

चक्रमस्यास्तीति; संसारचक्रमस्याज्ञया परिवर्तत वा चक्री ।

इन्द्रियाद्यहङ्कारात्मकं शार्ङ्गं नाम धनुरस्यास्तीति शार्ङ्गधन्वा । 'धनुषश्च' (पा० सू० ५ । ४ । १३२) इति अनङ् समासान्तः ।

बुद्धितत्त्वात्मिकां कौमोदकीं नाम गदां वहन् गदाधरः ।

रथाङ्गं चक्रमस्य पाणौ स्थितमिति रथाङ्गपाणिः ।

अत एव अशक्यक्षोभण इति अक्षोभ्यः ।

केवलम् एतावन्त्यायुधान्यस्येति न नियम्यते, अपि तु सर्वाण्येव प्रहरणान्यायुधान्यस्येति सर्वप्रहरणायुधः; आयुधत्वेनाप्रसिद्धान्यपि करजादीन्यस्यायुधानि भवन्तीति । अन्ते सर्वप्रहरणायुध इति वचनं सत्यसङ्कल्पत्वेन सर्वेश्वरत्वं दर्शयितुम्, 'एष सर्वेश्वरः' (मा० उ० ६) इति श्रुतेः ।

द्विर्वचनं समाप्तिं द्योतयति ।

पास हैं, इसलिये अथवा संसारचक्र उनकी आज्ञासे चल रहा है, इसलिये **चक्री** हैं ।

उनका इन्द्रियकारण [राजस] अहंकाररूप शार्ङ्गनामक धनुष है; इसलिये वे **शार्ङ्गधन्वा** हैं । **'धनुषश्च'** इस सूत्रके अनुसार यहाँ समासान्त अनङ्प्रत्यय हुआ है ।

बुद्धितत्त्वात्मिका कौमोदकी नामक गदा धारण करनेसे **गदाधर** हैं ।

भगवान्‌के हाथमें रथाङ्ग अर्थात् चक्र है, इसलिये वे **रथाङ्गपाणि** हैं ।

इन सब शस्त्रोंके कारण उन्हें क्षोभित नहीं किया जा सकता, इसलिये वे **अक्षोभ्य** हैं ।

भगवान्‌के केवल इतने ही आयुध हों, ऐसा नियम नहीं है, बल्कि प्रहार करनेवाली सभी वस्तुएँ उनके आयुध हैं, अतः वे **सर्वप्रहरणायुध** हैं । जो अंगुली आदि आयुधरूपसे प्रसिद्ध नहीं हैं, वे भी [नृसिंहावतारमें] उनके आयुध होते हैं । अन्तमें सत्यसंकल्परूपसे उनकी सर्वेश्वरता दिखलानेके लिये उन्हें सर्वप्रहरणायुध कहा है, जैसा कि श्रुति कहती है— **'यह सर्वेश्वर है ।'**

दो बार कहना समाप्तिका सूचक है ।

ॐकारश्च मङ्गलार्थः,

'ॐकारश्चाथशब्दश्च
द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा ।
कण्ठं भित्त्वा विनिर्यातौ
तस्मान्माङ्गलिकावुभौ ॥'
(बृ० ना० १ । ५१ । १०)

इति वचनात् । अन्ते 'नमः' इत्युक्त्वा परिचरणं कृतवान्, 'भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम' (ई० उ० १८) **इति मन्त्रवर्णात् ।**

'धन्यं तदेव लग्नं
तन्नक्षत्रं तदेव पुण्याहः ।
करणस्य च सा सिद्धि-
र्यत्र हरिः प्राङ् नमस्क्रियते ॥'

इति च । प्रागित्युपलक्षणम्, अन्तेऽपि नमस्कारस्य शिष्टैराचरणात् । नमस्कारफलं प्रागेव दर्शितम्—

'एकोऽपि कृष्णस्य कृतः प्रणामो
दशाश्वमेधावभृथेन तुल्यः ।
दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म
कृष्णप्रणामी न पुनर्भवाय ॥'
(महा० शा० ४७ । ९१)

'अतसीपुष्पसङ्काशं
पीतवाससमच्युतम् ।
ये नमस्यन्ति गोविन्दं
न तेषां विद्यते भयम् ॥'
(महा० शा० ४७ । ९०)

ओंकार अन्तमें मङ्गलाचरणके लिये है; जैसा कि कहा है—**'ओंकार और अथ ये दो शब्द पहले ब्रह्मके कण्ठको भेदन करके निकले थे, इसलिये ये दोनों माङ्गलिक हैं ।'** अन्तमें नमः कहकर परिचर्या (पूजा) की है, जैसा कि मन्त्रवर्ण कहता है—**'हम आपको बारम्बार नमस्कार करते हैं ।'** इसके सिवा **'वही लग्न, वही नक्षत्र और वही पुण्य दिवस धन्य है तथा इन्द्रियोंकी भी सफलता तभी है, जिसमें श्रीहरिको प्रथम नमस्कार किया जाता है'** यह वाक्य भी है। इसमें प्राक् शब्दसे अन्तका भी उपलक्षण है, क्योंकि शिष्टपुरुषोंद्वारा अन्तमें भी नमस्कार किया जाता है। नमस्कारका फल तो पहले ही दिखा चुके हैं कि—**'श्रीकृष्णको किया हुआ एक प्रणाम भी दस अश्वमेध-यज्ञोंके समान होता है, उनमें भी दशाश्वमेधीको तो फिर जन्म लेना पड़ता है, किन्तु कृष्णको प्रणाम करनेवालेका फिर जन्म नहीं होता ।' 'अलसीके फूलके समान वर्णवाले तथा पीत वस्त्रवाले अच्युत श्रीगोविन्दको जो नमस्कार करते हैं, उन्हें कोई भय नहीं**

'लोकत्रयाधिपतिमप्रतिमप्रभाव-
मीषत् प्रणम्य शिरसा प्रभविष्णुमीशम् ।
जन्मान्तरप्रलयकल्पसहस्र जात-
माशु प्रशान्तिमुपयाति नरस्य पापम् ॥'
॥ १२० ॥

इति नाम्नां दशमं शतं विवृतम् ।

रहता' तथा 'तीनों लोकोंके अधिपति, अतुलित प्रभाव, सृष्टिकर्ता ईश्वरको सिर नवाकर थोड़ा-सा भी प्रणाम करनेसे जन्मान्तर, प्रलय और हजारों कल्पोंमें किये हुए मनुष्यके सम्पूर्ण पाप तुरंत नष्ट हो जाते हैं' ॥१२०॥

यहाँतक सहस्रनामके दसवें शतकका विवरण हुआ ।

इतीदं कीर्तनीयस्य केशवस्य महात्मनः ।
नाम्नां सहस्रं दिव्यानामशेषेण प्रकीर्तितम् ॥१२१॥

इति, इदम्, कीर्तनीयस्य, केशवस्य, महात्मनः ।
नाम्नाम्, सहस्रम्, दिव्यानाम्, अशेषेण, प्रकीर्तितम् ॥

इतीदमित्यनेन नामसहस्रमन्यूनानतिरिक्तमुक्तमिति दर्शयति दिव्यानामप्राकृतानां नाम्नां सहस्रं प्रकीर्तितमिति वदता प्रकारान्तरेणापि संख्योपपत्तिर्दर्शिता ।

प्रक्रमे 'किं जपन् मुच्यते जन्तुः' इति जपशब्दो पादानात् कीर्तयेत् इत्यनेनापि त्रिविधजपो लक्ष्यते; उच्चोपांशुमानसलक्षणस्त्रिविधो जपः ॥ १२१ ॥

'इतीदम्' इस पदसे यह बात दिखलाते हैं कि यह सहस्र नाम पूरा-पूरा कहा गया है, यह न तो एक सहस्रसे कम है और न अधिक । 'दिव्य अर्थात् अप्राकृत सहस्रनामोंका प्रधान रूपसे कीर्तन हो चुका' ऐसा कहकर यह दिखलाया है कि यह संख्या प्रकारान्तरसे भी पूर्ण हो सकती है ।

आरम्भमें 'किसका जप करनेसे जीव मुक्त होता है' इस वाक्यमें जप शब्द ग्रहण किया जानेसे 'कीर्तन करे' इस पदसे भी उच्च, उपांशु और मानसरूप तीन प्रकारका जप ही लक्षित होता है ॥ १२१ ॥

य इदं शृणुयान्नित्यं यश्चापि परिकीर्तयेत् ।
नाशुभं प्राप्नुयात् किञ्चित् सोऽमुत्रेह च मानवः ॥१२२॥

यः, इदम्, शृणुयात्, नित्यम्, यः, च, अपि, परिकीर्तयेत् ।
न, अशुभम्, प्राप्नुयात्, किञ्चित्, सः, अमुत्र, इह, च, मानवः ॥

य इदं शृणुयात् **इत्यादिः स्पष्टार्थः । परलोकप्राप्तस्यापि ययातिनहुषादिवदशुभप्राप्त्यभावं सूचयितुम्** अमुत्र **इत्युक्तम्** ॥ १२२ ॥

'य इदं शृणुयात्' इत्यादि श्लोकका अर्थ स्पष्ट ही है । परलोकको प्राप्त हुए ययाति, नहुषादिके समान वहाँ भी अशुभ-प्राप्तिका अभाव सूचित करनेके लिये **अमुत्र** शब्दका प्रयोग किया गया है ॥ १२२ ॥

वेदान्तगो ब्राह्मणः स्यात् क्षत्रियो विजयी भवेत् ।
वैश्यो धनसमृद्धः स्याच्छूद्रः सुखमवाप्नुयात् ॥ १२३ ॥

वेदान्तगः, ब्राह्मणः, स्यात्, क्षत्रियः, विजयी, भवेत् ।
वैश्यः, धनसमृद्धः, स्यात्, शूद्रः, सुखम्, अवाप्नुयात् ॥

वेदान्तानामुपनिषदामर्थं ब्रह्म गच्छत्यवगच्छतीति वेदान्तगः ।

'किं जपन् मुच्यते जन्तु-
र्जन्मसंसारबन्धनात् ।'
(वि० स० ३)

इति वचनात् जपकर्मणा साक्षान्मुक्तिशङ्कायां कर्मणां साक्षान्मुक्तिहेतुत्वं नास्ति, ज्ञानेनैव मोक्ष इति दर्शयितुम्, 'वेदान्तगो ब्राह्मणः स्यात्' **इत्युक्तम् । कर्मणां त्वन्तःकरणशुद्धिद्वारेण मोक्षहेतुत्वम् ।**

'कषायपक्तिः कर्माणि
ज्ञानं तु परमा गतिः ।

जो वेदान्तों—उपनिषदोंके अर्थ ब्रह्मको जानता है, उसे **वेदान्तग** कहते हैं ।

'किसका जप करनेसे जीव जन्म-मरणरूप संसारसे मुक्त हो सकता है'

इस कथनके अनुसार जपरूप कर्मसे साक्षात् मोक्ष होनेकी शंका होनेपर 'कर्मोंकी मोक्षमें साक्षात् कारणता नहीं है, मोक्ष ज्ञानसे ही होता है'—यह दिखलानेके लिये **'ब्राह्मण वेदान्तका ज्ञाता हो जाता है'** ऐसा कहा है । कर्म तो अन्तःकरणकी शुद्धिद्वारा ही मोक्षके हेतु होते हैं ।

'वासनाओंका पकाना ही कर्म है और ज्ञान परमगति है । कर्मके द्वारा

कषाये कर्मभिः पक्वे
ततो ज्ञानं प्रवर्तते ॥'
'नित्यं ज्ञानं समासाद्य
नरो बन्धात् प्रमुच्यते ।'
'धर्मात् सुखं च ज्ञानं च
ज्ञानान्मोक्षोऽधिगम्यते ॥'
'योगिनः कर्म कुर्वन्ति
सङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धये ॥'
(गीता ५ । ११)
'कर्मणा बध्यते जन्तु-
र्विद्ययैव विमुच्यते ।
तस्मात् कर्म न कुर्वन्ति
यतयः पारदर्शिनः ॥'
(ब्रह्म० १२९ । ७)
'यथोक्तान्यपि कर्माणि
परिहाय द्विजोत्तमः ।
आत्मज्ञाने शमे च स्याद्
वेदाभ्यासे च यत्नवान् ॥'
(मनु० १२ । ९२)
'तपसा कल्मषं हन्ति
विद्ययामृतमश्नुते ।'
'ज्ञानमुत्पद्यते पुंसां
क्षयात् पापस्य कर्मणः ।
यथादर्शतलप्रख्ये
पश्यत्यात्मानमात्मनि ॥'
(गरुड० १ । २३७ । ६)

इत्यादिस्मृतिभ्यः 'तमेतं वेदानुवचनेन ब्रह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन

वासनाओंके जीर्ण हो जानेपर फिर ज्ञान होता है ।'

'नित्य ज्ञानको प्राप्त करके मनुष्य बन्धनमुक्त हो जाता है ।'

'धर्मसे सुख और ज्ञान होता है तथा ज्ञानसे मोक्ष प्राप्त होता है ।'

'योगीजन आसक्ति त्यागकर चित्तशुद्धिके लिये कर्म किया करते हैं ।'

'जीव कर्मसे बँधता है और विद्यासे ही मुक्त हो जाता है, इसलिये पारदर्शी यतिजन कर्म नहीं करते ।'

'श्रेष्ठ ब्राह्मणको उचित है कि विहित कर्मोंको भी त्यागकर आत्मज्ञान, शम और वेदाभ्यासमें यत्नशील हो ।'

'[मनुष्य] तपसे पाप नष्ट करता है और विद्यासे अमृत प्राप्त करता है ।'

'पाप कर्मके क्षीण हो जानेपर पुरुषको ज्ञान उत्पन्न होता है [उस समय] वह स्वच्छ दर्पणमें प्रतिबिम्बके समान अपने आत्मामें आत्माको देखता है ।' इत्यादि स्मृतियोंसे तथा 'इस आत्माको ब्राह्मणलोग वेदानुवचनसे तथा निष्काम भावसे आचरण किये हुए यज्ञ, दान और तपसे

दानेन तपसानाशकेन' (बृ० उ० ४ । ४ । २२) 'येन केन च यजेतापि वा दर्विहोमेनानुपहतमना एव भवति' इत्यादिश्रुतिभ्यः ।

ज्ञानादेव मोक्षो भवति ।

'ज्ञानादेव तु कैवल्यं
प्राप्यते तेन मुच्यते ॥'

'ब्रह्मविदाप्नोति परम्' (तै० उ० २ । १) 'तरति शोकमात्मवित्' (छा० उ० ७ । १ । ३) 'ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति' (मु० उ० ३ । २ । ९) 'ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति' (बृ० उ० ४ । ४ । ६) ।

'तमेव विदित्वातिमृत्युमेति
नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ।'
(श्वे० उ० ६ । १५)

'आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्
न बिभेति कुतश्चन ।'
(तै० उ० २ । ४)

'इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति
न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः ।'
(के० उ० २ । ५)

'यदा चर्मवदाकाशं
वेष्टयिष्यन्ति मानवाः ।
तदा देवमविज्ञाय
दुःखस्यान्तो भविष्यति ॥'
(श्वे० उ० ६ । २०)

जाननेकी इच्छा करते हैं, और '[मनुष्य] जिस किसी भी वस्तुसे अथवा दर्विहोमसे यजन करे, किन्तु इससे उसका मन ही शुद्ध होता है ।' इत्यादि श्रुतियोंसे भी [कर्म अन्तःकरण-की शुद्धिके ही हेतु सिद्ध होते हैं] ।

मोक्ष तो ज्ञानसे ही होता है;

'ज्ञानसे ही कैवल्य प्राप्त होता है, उससे मुक्त हो जाता है ।' 'ब्रह्मको जाननेवाला परमपदको प्राप्त कर लेता है ।' 'आत्मज्ञानी शोकसे तर जाता है ।' 'जो ब्रह्मको जानता है, ब्रह्म ही हो जाता है ।' 'ब्रह्म हुआ ही ब्रह्मको प्राप्त होता है ।'

'उसे जानकर ही मृत्युको पार करता है, मोक्षके लिये कोई और मार्ग नहीं है ।' 'ब्रह्मानन्दको जाननेवाला किसी-से भी भय नहीं मानता ।' 'यदि उसे इस मनुष्य शरीरमें रहते हुए ही जान लिया तब तो ठीक है और यदि नहीं जाना तो बहुत बड़ी हानि है ।' जब मनुष्य आकाशको चमड़ेके समान लपेट लेंगे तब परमात्माको बिना जाने भी दुःखका अन्त हो जायगा ।'

'न कर्मणा न प्रजया धनेन
त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः ॥'
(कै० उ० १ । ३)
'वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः
संन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्त्वाः ।
ते ब्रह्मलोके तु परान्तकाले
परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे ॥'
(कै० उ० १ । ४)

इत्यादिश्रुतिभ्यः ।

शूद्रः सुखमवाप्नुयात् **श्रवणेनैव, न तु जपयज्ञेन,** 'तस्माच्छूद्रो यज्ञेऽनवक्लृप्तः' (तै० सं० ७ । १ । १ । ६) **इति श्रुतेः ।**

'श्रावयेच्चतुरो वर्णान्
कृत्वा ब्राह्मणमग्रतः ।'

इति महाभारते (शा० ३२७ । ४९) **श्रवणमनुज्ञायते ।** 'सुगतिमियाच्छ्रवणाच्च शूद्रयोनिः' **इति हरिवंशे । यः शूद्रः शृणुयात् स सुखमवाप्नुयाद् इति व्यवहितेन सम्बन्धः त्रैवर्णिकानां कीर्तयेदित्यनेन ॥ १२३ ॥**

'कर्मसे, प्रजासे या धनसे नहीं अमृतत्व प्राप्त होता; किन्हीं विद्वानोंने एकमात्र त्यागसे ही अमृतत्व प्राप्त किया है ।' 'वेदान्तविज्ञानसे जिन्होंने परमार्थका निश्चय कर लिया है तथा जो संन्यास-योगसे शुद्धचित्त हो गये हैं वे सभी यतिजन प्रलयके समय ब्रह्मलोकमें परम अमृत होकर मुक्त हो जाते हैं ।' इत्यादि श्रुतियोंसे यही बात सिद्ध होती है ।

शूद्र सुख प्राप्त कर सकता है, किन्तु श्रवणमात्रसे ही, जपयज्ञसे नहीं; क्योंकि श्रुतिमें कहा है—**'अतः शूद्रका यज्ञमें अधिकार नहीं है ।' 'ब्राह्मणको आगे करके चारों वर्णोंको श्रवण करावे'** इत्यादि वाक्योंसे महाभारतमें उसे श्रवणकी आज्ञा दी गयी है । हरिवंशमें कहा है—**'शूद्रयोनिको श्रवणसे ही शुभगति प्राप्त होती है ।'** अतः जो शूद्र श्रवण करता है, वह सुख पाता है- इस प्रकार इस [शूद्रपद] का व्यवधानयुक्त [१२२ श्लोकके] शृणुयात् (श्रवण करे) पदसे सम्बन्ध है और त्रैवर्णिकोंका कीर्तयेत् (कीर्तन करे) पदसे सम्बन्ध है ॥ १२३ ॥

धर्मार्थी प्राप्नुयाद् धर्ममर्थार्थी चार्थमाप्नुयात् ।
कामानवाप्नुयात् कामी प्रजार्थी चाप्नुयात् प्रजाम् ॥ १२४ ॥

धर्मार्थी, प्राप्नुयात्, धर्मम्, अर्थार्थी, च, अर्थम्, आप्नुयात् ।
कामान्, अवाप्नुयात्, कामी, प्रजार्थी, च, आप्नुयात्, प्रजाम् ॥

धर्म चाहनेवाला धर्म, अर्थ चाहनेवाला अर्थ, कामनाओंकी इच्छावाला काम और सन्तान चाहनेवाला सन्तान प्राप्त करता है ।

चक्षुरादीनामात्मयुक्तेन मनसाधिष्ठितानां स्वेषु स्वेषु विषयेष्वानुकूल्यात् प्रवृत्तिः कामः । प्रजायत इति प्रजा सन्ततिः ॥१२४॥

आत्माके सहित मनसे अधिष्ठित चक्षु आदिकी अपने-अपने विषयोंके अनुरूप प्रवृत्तिको काम कहते हैं । जो उत्पन्न हो, वह प्रजा यानी सन्तति है ॥ १२४ ॥

भक्तिमान् यः सदोत्थाय शुचिस्तद्गतमानसः ।
सहस्रं वासुदेवस्य नाम्नामेतत् प्रकीर्तयेत् ॥१२५॥

भक्तिमान्, यः, सदा, उत्थाय, शुचिः, तद्गतमानसः ।
सहस्रम्, वासुदेवस्य, नाम्नाम्, एतत्, प्रकीर्तयेत् ॥

यशः प्राप्नोति विपुलं ज्ञातिप्राधान्यमेव च ।
अचलां श्रियमाप्नोति श्रेयः प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥१२६॥

यशः, प्राप्नोति, विपुलम्, ज्ञातिप्राधान्यम्, एव, च ।
अचलाम्, श्रियम्, आप्नोति, श्रेयः, प्राप्नोति, अनुत्तमम् ॥

न भयं क्वचिदाप्नोति वीर्यं तेजश्च विन्दति ।
भवत्यरोगो द्युतिमान् बलरूपगुणान्वितः ॥१२७॥

न, भयम्, क्वचित्, आप्नोति, वीर्यम्, तेजः, च, विन्दति ।
भवति, अरोगः, द्युतिमान्, बलरूपगुणान्वितः ॥

जो भक्तिमान् पुरुष सदा उठकर पवित्र और तद्गत चित्तसे भगवान् वासुदेवके इस सहस्रनामका कीर्तन करता है, वह महान् यश, जातिमें प्रधानता,

अचल लक्ष्मी और सर्वोत्तम कल्याण प्राप्त करता है। उसे कहीं भय नहीं होता, वह वीर्य और तेज प्राप्त करता है तथा नीरोग, कान्तिमान् और बल, रूप एवं गुणसे सम्पन्न होता है ॥ १२५-१२७ ॥

रोगार्तो मुच्यते रोगाद् बद्धो मुच्येत बन्धनात् ।
भयान्मुच्येत भीतस्तु मुच्येतापन्न आपदः ॥१२८॥

रोगार्तः, मुच्यते, रोगात्, बद्धः, मुच्येत, बन्धनात् ।
भयात्, मुच्येत, भीतः, तु, मुच्येत, आपन्नः, आपदः ॥

रोगी रोगसे, बँधा हुआ बन्धनसे, भयभीत भयसे और आपत्तिग्रस्त आपत्तिसे छूट जाता है ॥ १२८ ॥

दुर्गाण्यतितरत्याशु पुरुषः पुरुषोत्तमम् ।
स्तुवन्नामसहस्रेण नित्यं भक्तिसमन्वितः ॥१२९॥

दुर्गाणि, अतितरति, आशु, पुरुषः, पुरुषोत्तमम् ।
स्तुवन्, नामसहस्रेण, नित्यम्, भक्तिसमन्वितः ॥

पुरुषोत्तमकी सहस्रनामसे भक्तिपूर्वक नित्यप्रति स्तुति करनेसे पुरुष शीघ्र ही दुःखोंसे पार हो जाता है ॥ १२९ ॥

वासुदेवाश्रयो मर्त्यो वासुदेवपरायणः ।
सर्वपापविशुद्धात्मा याति ब्रह्म सनातनम् ॥१३०॥

वासुदेवाश्रयः, मर्त्यः, वासुदेवपरायणः ।
सर्वपापविशुद्धात्मा, याति, ब्रह्म, सनातनम् ॥

वासुदेवके आश्रय रहनेवाला वासुदेवपरायण मनुष्य सब पापोंसे शुद्धचित्त होकर सनातन ब्रह्मको प्राप्त होता है ॥ १३० ॥

न वासुदेवभक्तानामशुभं विद्यते क्वचित् ।
जन्ममृत्युजराव्याधिभयं नैवोपजायते ॥१३१॥

न, वासुदेवभक्तानाम्, अशुभम्, विद्यते, क्वचित् ।
जन्ममृत्युजराव्याधिभयम्, न, एव, उपजायते ॥

वासुदेवके भक्तोंका कहीं भी अशुभ नहीं होता तथा उन्हें जन्म, मृत्यु, जरा और रोगोंका भय भी नहीं रहता ॥ १३१ ॥

इमं स्तवमधीयानः श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ।
युज्येतात्मसुखक्षान्तिश्रीधृतिस्मृतिकीर्तिभिः ॥१३२॥

इमम्, स्तवम्, अधीयानः, श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ।
युज्येत, आत्मसुखक्षान्तिश्रीधृतिस्मृतिकीर्तिभिः ॥

इस स्तवका श्रद्धा, भक्तिपूर्वक पाठ करनेवाला पुरुष आत्मसुख, क्षमा, लक्ष्मी, धैर्य, स्मृति और कीर्तिसे युक्त होता है ।

भक्तिमानित्यादिना भक्तिमतः शुचेः सततमुद्युक्तस्यैकाग्रचित्तस्य श्रद्धालोर्विशिष्टाधिकारिणः फलविशेषं दर्शयति ।

श्रद्धा आस्तिक्यबुद्धिः । भक्तिर्भजनं तात्पर्यम् । आत्मनः सुखम् आत्मसुखम् । तेन च क्षान्त्यादिभिश्च युज्यते ॥ १३२ ॥

'भक्तिमान्' इत्यादि श्लोकसे भक्तियुक्त पवित्र सदा ही उद्योगशील समाहितचित्त श्रद्धालु एवं विशिष्ट अधिकारी पुरुषके लिये विशेष फलका निर्देश करते हैं ।

आस्तिकतायुक्त बुद्धिका नाम श्रद्धा है । भजना या तत्पर होना भक्ति है । आत्माके सुखको आत्मसुख कहते हैं । उस आत्मसुख और क्षान्ति आदि गुणोंसे सम्पन्न हो जाता है ॥१३२॥

नक्रोधो न च मात्सर्यं नलोभो नाशुभा मतिः ।
भवन्ति कृतपुण्यानां भक्तानां पुरुषोत्तमे ॥१३३॥

नक्रोधः, न, च, मात्सर्यम्, नलोभः, नाशुभा, मतिः ।
भवन्ति, कृतपुण्यानाम्, भक्तानाम्, पुरुषोत्तमे ॥

पुरुषोत्तम भगवान्के पुण्यात्मा भक्तोंको क्रोध, मात्सर्य (पराये गुणमें दोषदृष्टि करना), लोभ और अशुभ बुद्धि नहीं होती ।

नक्रोधो नलोभो नाशुभा मतिः इति अकारानुबन्धरहितेन नकारेण समस्तं पदत्रयम्; क्रोधादयो न भवन्ति मात्सर्यं च न भवतीत्यर्थः ॥ १३३ ॥

'नक्रोधो नलोभो नाशुभा मतिः' इन तीन पदोंमें अकारानुबन्धसे रहित नकारके साथ समास है; अर्थात् क्रोधादि नहीं होते और मात्सर्य भी नहीं होता ॥ १३३ ॥



द्यौः सचन्द्रार्कनक्षत्रा खं दिशो भूर्महोदधिः ।
वासुदेवस्य वीर्येण विधृतानि महात्मनः ॥१३४॥

द्यौः, सचन्द्रार्कनक्षत्रा, खम्, दिशः, भूः, महोदधिः ।
वासुदेवस्य, वीर्येण, विधृतानि, महात्मनः ॥

चन्द्रमा, सूर्य और नक्षत्रोंके सहित स्वर्ग, आकाश, दिशाएँ तथा समुद्र—ये सब महात्मा वासुदेवके वीर्यसे ही धारण किये गये हैं ॥ १३४ ॥

ससुरासुरगन्धर्वं सयक्षोरगराक्षसम् ।
जगद् वशे वर्ततेदं कृष्णस्य सचराचरम् ॥१३५॥

ससुरासुरगन्धर्वम्, सयक्षोरगराक्षसम् ।
जगत्, वशे, वर्तते, इदम्, कृष्णस्य, सचराचरम् ॥

देवता, असुर, गन्धर्व, यक्ष, सर्प और राक्षसोंके सहित यह सम्पूर्ण चराचर जगत् श्रीकृष्णके ही वशवर्ती है ॥ १३५ ॥

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिः सत्त्वं तेजो बलं धृतिः ।
वासुदेवात्मकान्याहुः क्षेत्रं क्षेत्रज्ञ एव च ॥१३६॥

इन्द्रियाणि, मनः, बुद्धिः, सत्त्वम्, तेजः, बलम्, धृतिः ।
वासुदेवात्मकानि, आहुः, क्षेत्रम्, क्षेत्रज्ञः, एव, च ॥

इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, अन्तःकरण, तेज, बल, धृति तथा क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ—इन सबको वासुदेवरूप ही कहा है ॥ १३६ ॥

सर्वागमानामाचारः प्रथमं परिकल्पते ।
आचारप्रभवो धर्मो धर्मस्य प्रभुरच्युतः ॥१३७॥

सर्वागमानाम्, आचारः, प्रथमम्, परिकल्पते ।
आचारप्रभवः, धर्मः, धर्मस्य, प्रभुः, अच्युतः ॥

सब शास्त्रोंमें सबसे पहले आचारहीकी कल्पना होती है । आचारसे ही धर्म होता है और धर्मके प्रभु श्रीअच्युत ही हैं ॥ १३७ ॥

ऋषयः पितरो देवा महाभूतानि धातवः ।
जङ्गमाजङ्गमं चेदं जगन्नारायणोद्भवम् ॥१३८॥

ऋषयः, पितरः, देवाः, महाभूतानि, धातवः ।
जङ्गमाजङ्गमम्, च, इदम्, जगत्, नारायणोद्भवम् ॥

ऋषि, पितर, देवता, महाभूत, धातुएँ और यह चराचर जगत् नारायणसे ही उत्पन्न हुए हैं ॥ १३८ ॥

योगो ज्ञानं तथा सांख्यं विद्याः शिल्पादि कर्म च ।
वेदाः शास्त्राणि विज्ञानमेतत् सर्वं जनार्दनात् ॥१३९॥

योगः, ज्ञानम्, तथा, सांख्यम्, विद्याः, शिल्पादि, कर्म, च ।
वेदाः, शास्त्राणि, विज्ञानम्, एतत्, सर्वम्, जनार्दनात् ॥

योग, ज्ञान तथा सांख्यादि विद्याएँ, शिल्पादि कर्म एवं वेद, शास्त्र और विज्ञान--ये सब श्रीजनार्दनसे ही हुए हैं ॥ १३९ ॥

एको विष्णुर्महद्भूतं पृथग्भूतान्यनेकशः ।
त्रींल्लोकान्व्याप्य भूतात्मा भुङ्क्ते विश्वभुगव्ययः॥१४०॥

एकः, विष्णुः, महद्भूतम्, पृथग्भूतानि, अनेकशः ।
त्रीन्, लोकान्, व्याप्य, भूतात्मा, भुङ्क्ते, विश्वभुक्, अव्ययः॥

एकमात्र विष्णुभगवान् ही महत्स्वरूप हैं, वह सर्वभूतात्मा विश्वभोक्ता अविनाशी प्रभु ही तीनों लोकोंको व्याप्त कर नाना भूतोंको तरह-तरहसे भोगते हैं ।

'द्यौः सचन्द्रार्कनक्षत्रा' इत्यादिना स्तुत्यस्य वासुदेवस्य माहात्म्यकथनेनोक्तानां फलानां प्राप्तिवचनं यथार्थकथनं नार्थवाद इति दर्शयति सर्वागमानामाचारः, इत्यनेनावान्तरवाक्येन सर्वधर्माणामाचारवत एवाधिकार इति दर्शयति ॥ १४० ॥

इन 'द्यौः सचन्द्रार्कनक्षत्रा' आदि श्लोकोंसे स्तुति किये जाने योग्य भगवान् वासुदेवका माहात्म्य बतलाते हुए दिखलाते हैं कि उपर्युक्त फलोंकी प्राप्ति बतलाना यथार्थ कथन ही है, अर्थवाद नहीं 'सर्वागमानामाचारः' इस अवान्तर वाक्यसे यह दिखलाते हैं कि सब धर्मोंका अधिकार आचारवान्को ही है ॥ १४० ॥

इमं स्तवं भगवतो विष्णोर्व्यासेन कीर्तितम् ।
पठेद्य इच्छेत् पुरुषः श्रेयः प्राप्तुं सुखानि च ॥१४१॥

इमम्, स्तवम्, भगवतः, विष्णोः; व्यासेन, कीर्तितम् ।
पठेत्, यः, इच्छेत्, पुरुषः, श्रेयः, प्राप्तुम्, सुखानि, च ॥

जिस पुरुषको श्रेय (कल्याण) और सुख पानेकी इच्छा हो, वह श्रीव्यासजीके कहे हुए भगवान् विष्णुके इस स्तोत्रका पाठ करे ।

'इमं स्तवम्' इत्यादिना सहस्रशाखाज्ञेन सर्वज्ञेन भगवता कृष्णद्वैपायनेन साक्षान्नारायणेन कृतमिति सर्वैरेव अर्थिभिः सादरं पठितव्यं सर्वफलसिद्ध्य इति दर्शयति ॥ १४१ ॥

'इमं स्तवम्' इत्यादिसे यह दिखाते हैं कि इस स्तोत्रको सहस्र शाखाओंके ज्ञाता सर्वज्ञ साक्षात् नारायण भगवान् कृष्णद्वैपायनने ही बनाया है; इसलिये सभी कामनावालोंको सब प्रकारका फल प्राप्त करनेके लिये इसे श्रद्धापूर्वक पढ़ना चाहिये ॥ १४१ ॥

विश्वेश्वरमजं देवं जगतः प्रभवाप्ययम् ।
भजन्ति ये पुष्कराक्षं न ते यान्ति पराभवम् ॥१४२॥

विश्वेश्वरम्, अजम्, देवम्, जगतः, प्रभवाप्ययम् ।
भजन्ति, ये, पुष्कराक्षम्, न, ते, यान्ति, पराभवम् ॥

जो पुरुष विश्वेश्वर, अजन्मा और संसारकी उत्पत्ति तथा लयके स्थान देवश्व पुण्डरीकाक्षको भजते हैं, उनका कभी पराभव नहीं होता ।

'विश्वेश्वरम्' इत्यादिना विश्वेश्वरोपासनादेव स्तोतारस्ते धन्याः कृतार्थाः कृतकृत्या इति दर्शयति ।

'प्रमादात् कुर्वतां कर्म
प्रच्यवेताध्वरेषु यत् ।
स्मरणादेव तद्विष्णोः
सम्पूर्णं स्यादिति श्रुतिः ॥'
'आदरेण यथा स्तौति
धनवन्तं धनेच्छया ।
तथा चेद् विश्वकर्तारं
को न मुच्येत बन्धनात् ॥'
(गरुड० पू० २३० । ५०)

इति व्यासवचनम् ॥ १४२ ॥

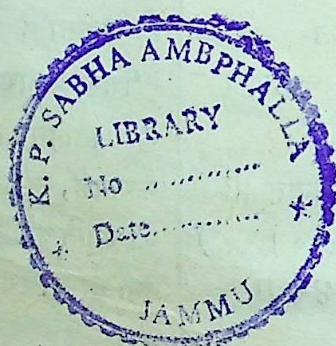
'विश्वेश्वरम्' इत्यादिसे यह दिखाते हैं कि वे स्तुति करनेवाले श्रीविश्वेश्वरकी उपासनासे ही धन्य—कृतार्थ अर्थात् कृतकृत्य हो जाते हैं ।

व्यासजीका वचन है—'यज्ञादि कर्म करनेवालोंका यज्ञमें जो कर्म प्रमादवश भ्रष्ट हो जाता है, वह श्रीविष्णुभगवान्‌के स्मरणमात्रसे पूर्ण हो सकता है—ऐसा श्रुति कहती है ।' 'जिस प्रकार मनुष्य धनकी इच्छासे धनवान्‌की आदरपूर्वक स्तुति करता है, उसी प्रकार यदि विश्वकर्ताकी स्तुति करे तो कौन बन्धनसे मुक्त नहीं हो जायगा ?' ॥ १४२ ॥

सहस्रनामसम्बन्धिव्याख्या सर्वसुखावहा ।
श्रुतिस्मृतिन्यायमूला रचिता हरिपादयोः ॥

यह सर्वसुखदायिनी श्रुतिस्मृतिन्यायानुसारिणी सहस्रनामसम्बधिनी व्याख्या श्रीहरिके चरणोंमें समर्पण की जाती है ।

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यस्य श्रीगोविन्दभगवत्पूज्यपादशिष्यस्य श्रीमच्छङ्करभगवतः कृतौ विष्णुसहस्रनामस्तोत्रभाष्यं सम्पूर्णम् ॥



ॐ

माहात्म्य

हमारे पूर्वज ऋषि-मुनियोंने हमलोगोंके कल्या
लिये ऐसे सरल साधन बना दिये हैं, जिनको क
सुगमतासे मनुष्य-जीवनका फल प्राप्त हो सकता
भगवान्के नामका जप संसारके प्रायः सभी
बहुत श्रेष्ठ और सुगम साधन माना गया
यह 'सहस्रनाम' भगवान्के हजार नामोंकी
माला है जो बिना मालाके जपी जाती है।
जपनेसे बहुत पुण्य होता है। कविता-बद्ध
कारण यह शीघ्र कण्ठस्थ हो जाता है, पाठमें
उच्चारण करनेपर बड़ा आनन्ददायक है। भ
हर नाममें उनका प्रभाव-माहात्म्य भरा प
यह समझ-समझकर पढ़नेसे बड़ा ही लाभ हो
यह ग्रन्थ सबके लिये अति उपयोगी है।

व्यवस्थापक

गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोर